यातायात का सरल अध्ययन

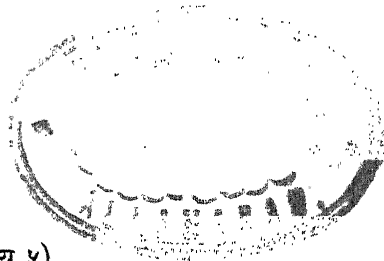
(AN APPROACH TO TRANSPORT)

प्रश्नोत्तर के रूप में एक विस्तृत अध्ययन

लेखक

ए० पी० मिश्रा, एम० ए०

सेन्ट जॉन्स कालिज, आगरा



मूल्य ५)

प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सन्स

आगरा, कानपुर, गवालियर, जयपुर

प्रकाशक
गयाप्रसाद एण्ड संस
आगरा

मूल्य
५)

मुद्रक—
जगदीशप्रसाद, एम० ए० बी० कॉम०
एजूकेशनल प्रेस, आगरा।

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक की रचना भारतीय विश्वविद्यालयों की एम० ए०, एम० काम० तथा बी० काम० के परीक्षार्थियों के लिए की गई है। पुस्तक में यातायात की विभिन्न समस्याओं का विस्तृत विवेचन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। हिन्दी में इस विषय पर पुस्तकें नहीं के बराबर हैं अतः हिन्दी माध्यम रखने वाले विद्यार्थियों को यातायात विषय की तैयारी करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस पुस्तक द्वारा विद्यार्थियों की इस कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। विषय को अधिक बोधगम्य बनाने के लिए प्रश्नोत्तरी के रूप में समझाया गया है। आगरा, इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, अलीगढ़, जयपुर, आदि विश्वविद्यालयों में यातायात के निर्धारित पाठ्यक्रम तथा तत्सम्बन्धी प्रश्न-पत्रों के आधार पर अधिक से अधिक प्रश्नों का समावेश किया गया है।

आर्थिक कठिनाइयों तथा अन्य परिस्थितियों के कारण जो विद्यार्थी यातायात पर लिखी गई अंग्रेजी की मँहगी पुस्तकों का अध्ययन नहीं कर सकते, उनके लिए यह पुस्तक परीक्षाओं की तैयारी करने में बहुत ही सहायक सिद्ध होगी।

पुस्तक को अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्राप्त सुझावों का लेखक द्वारा हृदय से स्वागत किया जायगा।

सैन्ट जोन्स कालिज,
आगरा
११ फरवरी, १९५७

—लेखक

CONTENTS

AN APPROACH TO TRANSPORT

CHAPTER I.

INTRODUCTION

Broadly conceived, the field of transportation embraces every means of conveying goods and persons, primitive and modern. It includes innumerable facilities such as airplanes, automobiles, bicycles, boats, carriages and wagons, horses and certain other pack animals, human and plant conveyers by belt, cable, rail and the like.

Effective transportation is indispensable to economic progress. Extraction, manufacturing, merchandising, and banking are also necessary, but these businesses, like most others, depend upon transportation. Without adequate facilities for moving goods and people from place to place, economic and social activities can be carried on only in a limited, local way. Under such conditions, economies have seldom, if ever, advanced very far.

The position of transportation in economics can be described by explaining its relation to the production, exchange, distribution, and consumption of wealth. Production is the creation of utilities and transportation, through providing place utility, is part thereof. Transportation influences division of labour, scale of production, concentration of population, location of industry and allocation of economic resources. Since transportation is a part of production, an increase in its efficiency obviously helps to lower the cost of producing goods and thus to reduce their prices.

Transportation is as important in the exchange of wealth as it is in production. In fact, it is through facilitating exchange, or broadening the market, that transportation exerts its greatest influence upon production. It is usually listed as a major function of marketing. As specialisation occurs and industries grow in size, transportation increases in significance. Goods must be distributed in large quantities and must generally move longer distances. Transportation affects not only the production and exchange of wealth, but also its functional distribution. It increases both the supply of and demand for capital and it raises the productivity and real wages of labour, but its relation to economic rent is most direct. Transportation is related to the consumption of wealth in that it increases the quantity and variety of consumable goods, thereby stimulating wants. A greater quantity is sold because of the decrease in the cost of production, brought about by transportation. A greater variety occurs because transportation enables a community to enjoy goods that could not be produced in the

immediate vicinity on account of some or the other reasons. Communities without transportation must be self sufficing ; and since the means of producing many commodities are not evenly distributed, the people of such a community are denied the benefits of more diversified consumption. Improvements in transportation overcome the limitaions of local production.

Socially transportation raises the standard of living, removes social barriers The spanning of a big continent in a few hours by air has brought about a new concept of time and distance, broadening the outlook of the people on a world scale. Politically, transport promotes national unity by promoting homogeneity among the people. Besides, it strengthens national defence. Transport is the agency through which the entire resources of a country can be mobilized and directed towards military ends.

Q. 1. Define transport.

"Adequate. cheap, well organised, and efficient transport facilities are of first importance in the economic and social life of a country." Discuss.

'यातायात को हम साधारण भाषा में 'आना-जाना' कह सकते हैं। मानव तथा वस्तुओं के आने-जाने से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन यातायात के अन्तर्गत किया जाता है। **प्राणियों एवं पदार्थों का स्थान-परिवर्तन-साधन विषयक अध्ययन** ही यातायात में सम्मिलित होता है। अतः यातायात के अन्तर्गत मार्ग एवं साधन तथा तत्सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। विभिन्न प्रकार के मार्ग, सड़क, रेल, जलमार्ग व वायुमार्ग, विभिन्न प्रकार के साधन पशु, गाड़ियाँ, मोटर, रेलें, नावें, जहाज आदि साधनों का निर्माण, संचालन, भाड़ा, दर-निर्धारण; यातायात के विभिन्न साधनों का पारस्परिक सम्बन्ध, प्रतिस्पर्धा, समन्वय; उनका देश पर आर्थिक, राजनैनिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आदि प्रभावों तथा अन्य इसी प्रकार की समस्याओं का अध्ययन यातायात के अन्तर्गत किया जाता है और यही यातायात विषय का क्षेत्र है। यातायात का मानव समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानवता के प्रारम्भ से ही यातायात का प्रादुर्भाव हुआ, मानव को अपनी प्रारम्भिक दशा में भी यातायात के साधनों की आवश्यकता प्रतीत हुई। जिस युग में मनुष्य घने जङ्गलों में वन-पशुओं का शिकार करके अपना जीवन-निर्वाह करता था उस समय भी शिकार में मारे हुए जानवर को जङ्गल से कुटी तक लाने का कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ता होगा। यातायात की समस्या उसके सामने थी, यद्यपि उसका हल भी सरल था। सामाजिक तथा आर्थिक विकास के साथ ही साथ यातायात भी विकसित होता गया। प्रारम्भ में मनुष्यों द्वारा ही वस्तुएं ले जाई जाती थीं, फिर पशुओं का प्रयोग होने लगा, इसके बाद विभिन्न प्रकार की गाड़ियाँ यातायात के काम में आने लगीं, बाद में इनका स्थान मोटर, रेलगाड़ी, जहाज, वायुयान आदि ने ग्रहण किया। वर्तमान काल में प्रत्येक देश में परिस्थितियों के अनुसार प्रायः सब प्रकार के यातायात के साधन पाये जाते हैं।

यातायात के साधन, समय, देश, जलवायु तथा आर्थिक व वैज्ञानिक विकास के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। सर्व प्रथम मनुष्य ही यातायात का साधन था, मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाता

था । वर्तमान समय में भी मनुष्य यातायात का साधन है । यद्यपि आजकल बोझा ढोने के कार्य में मनुष्य का उपयोग बहुत कम हो गया है, फिर भी पहाड़ी स्थानों में, जंगलों में तथा अति पिछड़ी हुई जातियों में मनुष्य बोझा ढोने का कार्य करता है । शहरों में भी कुली तथा मजदूरों के रूप में मनुष्य बोझा ढोने के कार्य को करते हुए पाये जाते हैं; जहाँ सम्भव है, वहाँ ये मनुष्य बोझा ढोने के लिये हाथ की गाड़ी तथा ठेले आदि का प्रयोग करने लगते हैं, जिससे उनकी बोझा ढोने की क्षमता बढ़ जाती है । दक्षिणी-पश्चिमी चीन, तिब्बत, अफ्रीका, हिमालय प्रदेश में मनुष्य अब भी बोझा ढोने का काम करता है, क्योंकि वहाँ अन्य साधन कार्य में नहीं लाये जा सकते । भारतीय ग्रामों में भी निर्धन कृषक अपनी उपज अपने सिरों द्वारा ही खेतों से घरों में डाल लेते हैं तथा हाटों में बेचने के लिए थोड़ा सामान सिरों पर ही लाद कर ले जाते हैं । कहीं-कहीं पर कहार, धीमर, काछी आदि बँहगियों द्वारा माल एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाते हैं । बँहगी एक लम्बी तराजू के आकार की होती है, जिसके दोनों पलड़ों पर सामान भर लेते हैं, फिर लकड़ी को कन्धे पर रख कर उसे दूर-दूर तक ले जाते हैं ।

मनुष्य के पश्चात् पशु का स्थान आता है । गधे, खिच्चर, हाथी, ऊंट, बैल, भैंसे तथा रेंडियर आदि पशु बोझा ढोने के काम में लाये जाते हैं । शीतोष्ण प्रदेशों में बैल, मरुस्थलों में ऊँट, पथरीली भूमि में गधे तथा खच्चर, जंगलों में हाथी बोझा ढोने के काम में लाये जाते हैं । बर्फीले स्थानों पर याक, भेड़ें तथा रेंडियर आदि बोझा ढोने के काम में लाये जाते हैं । कहीं-कहीं यह काम कुत्तों से भी लिया जाता है । जहाँ सड़कों आदि का प्रबन्ध होता है, वहाँ ये जानवर पहिये वाली गाड़ियों में जोते जाते हैं, जिनसे वे अधिक माल ढो सकते हैं ।

पशुओं के पश्चात् यंत्र संचालित आधुनिक यातायात के साधनों का स्थान आता है—मोटर, बसें, रेलगाड़ी, ट्रामवेज, जहाज आदि । इस प्रकार से यातायात के साधन तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं:—(१) मनुष्य, (२) पशु, (३) यांत्रिक । यातायात के मार्ग भी तीन प्रकार से विभाजित किये जा सकते हैं :—(१) स्थल-मार्ग, (२) जल-मार्ग, (३) वायु-मार्ग ।

यातायात का देश के आर्थिक विकास में पर्याप्त महत्व होता है । कृषि और उद्योग व्यवसाय यदि देश के आर्थिक व्यवस्था रूपी शरीर का अस्थिपंजर है तो यातायात उस आर्थिक व्यवस्था की स्नायु-प्रणाली समझी जानी चाहिए । बिना यातायात के देश का आर्थिक विकास भलीभाँति नहीं हो सकता । प्राचीन समय में भी जब उद्योग-धन्धे विकेन्द्रित तथा स्थानिक थे, समाज ने लघुमात्रोत्पादन को अपनाया । उस समय भी यातायात के साधन आवश्यकीय थे, यद्यपि वे मनुष्यों अथवा पशु द्वारा ही संचालित होते थे । वे तीव्र गति गामी नहीं थे, फिर भी समयानुसार यातायात के साधनों की कमी नहीं थी । आधुनिक काल में उद्योगों के केन्द्रीकरण तथा महामात्रोत्पादन के कारण यातायात का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है । आजकल हमारा आर्थिक जीवन इस प्रकार का बन गया है कि यातायात के साधनों के बिना हम लोगों का कार्य चल ही नहीं सकता । हमारे आजकल के दैनिक उपभोग में ऐसी वस्तुएँ सम्मिलित हो गई हैं, जो अन्य देशों में बनती हैं, जहाँ से वे हम लोगों के बाजार में आधुनिक यातायात के साधनों द्वारा ही लाई जाती हैं । आधुनिक यातायात-साधनों के फलस्वरूप ही सारा संसार एक बाजार के रूप में परिणत हो गया है ।

यातायात के साधनों का प्रभाव कृषि, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार, राजनीति तथा सभ्यता आदि मानव-समाज के प्रत्येक अंग पर पड़ता है। यदि मनुष्य में आसुरी शक्ति जागृत न हो तो यातायात के आधुनिक साधनों के बल पर इस पृथ्वी पर रहने वाला सारा मानव समाज एक कुटुम्ब के रूप में परिणत हो सकता है। इनके सहारे दूरस्थ मनुष्यों के सुख-दुख में एक कुटुम्ब की भाँति हम सब सुख-दुख का अनुभव कर सकते है।

आधुनिक सस्ते, सरल, संगठित एवं शीघ्रगामी यातायात के साधनों से निम्न-लिखित लाभ हैं :—

(१) नवीन यातायात साधनों ने कृषि को जीवन-यापन-व्यवसाय के स्थान पर एक व्यापारिक व्यवसाय बना दिया है। कृषक लोग अब खेती में केवल उन्हीं वस्तुओं को उत्पन्न नही करते जिनका वे स्वयं उपयोग करते हैं, वरन् दूर बाजार में बेचने के लिये कृषि-पदार्थों को पैदा करते हैं। उनको बेचकर जो रुपया प्राप्त होता है उससे अपने उपभोग की वस्तुएँ खरीदते हैं। इस प्रकार के कृषि-पदार्थों का व्यापार विस्तृत हो गया है। कृषक लोग शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ फल, शाक, भाजी आदि पर्याप्त मात्रा में उगाने लगे है, क्योंकि अब उनकी उपज यातायात-साधनों की सहायता से दूर शहरों में भेजी जा सकती है। इस प्रकार वर्तमान काल के यातायात के साधनों के कारण कृषक लोग अधिक रुपया कमाने में समर्थ हुए हैं और शहरी मनुष्य के अधिकाधिक संसर्ग से अधिक ज्ञान प्राप्त किया है।

(२) यातायात के साधनों का उद्योगों तथा व्यवसायों पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। वर्तमान काल में यातायात के आधुनिक साधनों ने उद्योगों के स्थानीयकरण तथा केन्द्रीकरण में अधिक-से-अधिक सहायता प्रदान की है। शीघ्रगामी साधनों के कारण दूर दूर से कच्चा माल औद्योगिक केन्द्रों तक सरलता से लाया जाता है और तैयार किया हुआ माल भी आसानी से सुदूर स्थानों को भेजा जा सकता है। महामात्रोत्पादन भी यातायात के कारण ही सफल हो सका है। अब मानव-समाज अत्यधिक केन्द्रीकरण की हानियों से अवगत हो गया है, अतः यही साधन विकेन्द्रीकरण में भी सहायक हो रहे हैं। संक्षेप में, यातायात के आधुनिक साधनों ने छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धों को समाप्त करके बड़े पैमाने पर उत्पत्ति को प्रोत्साहित किया है।

(३) व्यापार की वृद्धि यातायात के साधनों पर ही निर्भर होती है। आज स्थानीय व्यापार बढ़ते-बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में परिणत हो गया है, यह यातायात के साधनों की ही महिमा है। व्यापार और यातायात के साधनों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस देश में यातायात के साधन जितने अच्छे होते हैं उस देश के व्यापार-परिमाण में भी वृद्धि होती है और साथ-ही-साथ उस देश का व्यापार-क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता है।

(४) अच्छे यातायात के साधनों से शासन-प्रबन्ध में शिथिलता नहीं रहती। सरकारी कर्मचारी प्रत्येक स्थान पर आसानी से जा सकते हैं और प्रत्येक कार्य का भली-भाँति निरीक्षण कर सकते हैं, जिससे शासन-प्रबन्ध में भाग लेने वाला प्रत्येक कर्मचारी सजग रहता है और अपने उत्तरदायित्व को भली-भांति पूरा करता है।

(५) सुव्यवस्थित तथा शीघ्रगामी यातायात के साधनों से रक्षा-व्यय भी कम हो जाता है। पुलिस तथा सेना एक केन्द्रीय स्थान पर रखी जा सकती है, वहाँ से वह

प्रत्येक समय यातायात के साधनों द्वारा संकट-ग्रस्त स्थान को भेजी जा सकती है। यदि यातायात के साधन उपयुक्त न हों तो स्थान-स्थान पर सेना व पुलिस रखनी पड़े जिससे खर्च बहुत बढ़ जाय।

(६) शीघ्रगामी यातायात के साधनों का जाल देश के विभिन्न भागों को दुर्भिक्ष आदि आपत्ति काल में अधिक-से-अधिक सहायता पहुँचाना है। भारत-विभाजन के समय यदि देश में रेलें, मोटर तथा वायुयान न होते तो विभाजन में और भी अधिक नर-संहार होता। भारत के विभिन्न भागों में दुर्भिक्ष की भीषणता रेलों के न होने से कहीं अधिक बढ़ जाती।

(७) आधुनिक युग के नवीन यांत्रिक यातायात तथा संवाद-वाहन के साधनों का सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि भिन्न-भिन्न देशों के लोग एक दूसरे के अधिक निकट हो गए हैं। जो देश पहले एक दूसरे से अधिक दूर थे, वे आज एक दूसरे के प्रति पड़ोसी के समान हो गए हैं। विभिन्न देश वासियों का एक दूसरे से सम्बन्ध प्रगाढ़ होता चला जा रहा है। मानव-समाज में अन्तर्राष्ट्रीय विचार-धारा का प्रादुर्भाव आजकल के यातायात एवं सम्वाद-वाहन के साधनों का ही फल है। अनेकानेक अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ इन्हीं साधनों के बल पर स्थापित की गई है।

(८) आधुनिक साधनों ने वर्तमान काल में मानव समाज को विशेष कर पिछड़े हुए भू-भागों को सभ्य बनाने में अधिक सहयोग दिया है। इन साधनों के कारण समाज-सुधारक लोग सरलता के साथ दूर-दूर जाकर मनुष्यों को उपदेश देकर तथा उनसे संसर्ग स्थापित करके उन्हें सभ्य बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि संसार आज एक अन्धकारमय युग से निकल कर प्रकाशमय युग में आया है, तो इसका अधिकांश श्रेय यातायात तथा संवाद-वाहन के आधुनिक साधनों को ही है।

संसार का वर्तमान कायाकल्प, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रगति अधिकांश में आधुनिक यातायात के साधनों के कारण ही हुई है। यातायात के सुगम, शीघ्रगामी, सस्ते तथा सुखदायक साधन ही आधुनिक जीवन के आवश्यक अङ्ग हैं। बिना इन साधनों के मानव-समाज इतनी उन्नति न कर सकता, जितनी कि उसने उन्नति की है। असीमित प्राकृतिक साधनों का उपयोग, प्रकृति-प्रदत्त पदार्थ तथा मानव-निर्मित पदार्थों का पर्याप्त परिमाण में स्थानान्तर आधुनिक यातायात के साधनों के द्वारा ही सम्भव हो सका है। स्थानान्तर द्वारा विभिन्न वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता में यातायात के साधनों के द्वारा ही वृद्धि हो पाती है। बड़ी मात्रा का उत्पादन, विस्तृत बाजार, व्यापार की उन्नति आदि सारी बातें यातायात की सुविधाओं के कारण ही सम्भव हैं। आधुनिक साधनों ने दूरी की बाधा को तो प्रायः दूर ही कर दिया है। उत्पादक संसार के किसी भी देश से कच्चा माल, कोयला आदि मँगा सकता है, मशीनरी प्राप्त कर सकता है; उपभोक्ता किसी भी विदेश से अपनी आवश्यक वस्तु को मँगा सकता है। प्राकृतिक तथा भौगोलिक कारणों से विभिन्न क्षेत्रों के औद्योगिक विशेषीकरण के लाभों को सारे मानव-समाज को प्राप्त करवाना यातायात के आधुनिक साधनों का ही कार्य है। चक्करदार उत्पादन प्रणाली की सफलता यातायात के साधनों के ऊपर ही निर्भर होती है; उत्पादन-प्रणाली जितनी अधिक केन्द्रित तथा फेरदार (indirect) होती जाती है, यातायात के साधनों का महत्व भी उतना अधिक बढ़ता जाता है। यान्त्रिक शक्ति के प्रयोग के कारण यातायात के साधन बहुत ही सस्ते पड़ते हैं, इसी कारण से वस्तुएँ दूर-दूर देशों को अधिक परिमाण में भेजी जा सकती हैं, जिससे बड़ी

मात्रा का उत्पादन सम्भव हुआ है। यातायात के आधुनिक साधनों ने अनेक पदार्थों के बाजार का क्षेत्र विश्व-व्यापी बना दिया है। ताजे फल, हरी तरकारी, दूध आदि शीघ्र नष्ट होने वाले पदार्थ भी शीघ्रगामी यातायात-साधनों के कारण अधिक दूर-दूर भेजे जाते हैं। इससे वस्तुओं के मूल्य में अधिक स्थिरता और समता रहती है। किसी वस्तु का बाजार जितना अधिक विस्तृत होता है, उतनी ही अधिक उसमें प्रतिस्पर्धा होती है. जिसके फलस्वरूप उस वस्तु की कीमत बाजार भर में समान रहती है। क्योंकि सस्ते यातायात के साधनों के कारण कम कीमत वाले भागों से वस्तुएँ अधिक कीमत वाले भागों को स्थानान्तरित होने लगेंगी, इसके फलस्वरूप पहले स्थानों में वस्तुओं के दाम ऊँचे होने लगेंगे तथा दूसरे स्थानों में कम और धीरे-धीरे दोनों में समता आ जावेगी। अधिकाधिक जनसंख्या वाले बड़े-बड़े नगरों का प्रादुर्भाव आजकल के यातायात के साधनों के कारण ही हुआ है। बड़े-बड़े नगरों में खाद्यान्न, पेयपदार्थ, दूध, फल, तरकारियाँ आदि दैनिक आवश्यकीय वस्तुएं दूर-दूर के स्थानों से सस्ते तथा शीघ्रगामी यातायात के साधनों की सहायता से ही आ पाती हैं।

यदि हम यातायात के साधनों का प्रभाव विभिन्न आर्थिक कार्यों पर देखें तो पता चलता है कि उनका प्रभाव सर्व-व्यापी है। धनोत्पादन के क्षेत्र में आधुनिक यातायात के साधनों के कारण ही विभिन्न प्रकार के कच्चे माल का प्रयोग, श्रम का विभाजन, मशीन का प्रयोग, महामात्रोत्पादन, केन्द्रीकरण, स्थानीयकरण, सम्भव हो सका है। उपभोग के क्षेत्र में उच्च जीवन-स्तर, अधिकतम उपभोक्ता की बचत की प्राप्ति, अधिकाधिक तथा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उपभोग अच्छे यातायात के साधनों के द्वारा ही हो सकता है। विनिमय के क्षेत्र में, यह यातायात के सरल तथा शीघ्रगामी साधनों की ही कृपा है, कि हम व्यक्तियों तथा वस्तुओं का स्थानान्तर बड़ी सरलता से कर सकते हैं, बड़े-बड़े व्यापक बाजारों का लाभ प्राप्त कर सकते हैं। आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में पर्याप्त उन्नति कर सकते हैं, मूल्यों में समानता स्थापित कर सकते हैं। मुद्रा, साख का सृजन तथा उनका उपयोग व बैंकों का कार्य सरलता से किया जा सकता है। वितरण के क्षेत्र में पारिश्रमिक के समान वितरण, उनकी दर में समानता तथा विभाजनीय धन के अधिकतम परिमाण आदि पर यातायात के आधुनिक साधनों का अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार यातायात के साधनों की सुलभता राजस्व पर अनुकूल प्रभाव डालती है। यातायात की सुविधाओं के कारण आर्थिक उन्नति के फलस्वरूप सरकार की आय में पर्याप्त वृद्धि होती है, प्रबन्ध व शासन का केन्द्रीकरण होने के कारण शासन की कार्य-क्षमता बढ़ती है और साथ ही साथ शासन का व्यय कम हो जाता है। शान्ति-व्यवस्था के लिए थोड़ी पुलिस तथा सुरक्षा के लिए अपेक्षाकृत थोड़ी सेना की आवश्यकता रहती है। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यातायात की यथेष्ट सुविधाओं का सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यातायात की सुविधाओं का मनुष्य के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। मोटर-रेल, जलपोत तथा वायुयान द्वारा विभिन्न देश-वासियों का पारस्परिक सम्पर्क निकटतम हो गया है। विभिन्न देश के नेता व समाज-सुधारक एक स्थान पर मिलकर बहुत सी जटिल समस्याओं का हल सरलता से निकाल लेते हैं। हमारी धार्मिक गोष्ठियों, प्रवचनों, तथा समाज-सुधारक व सांस्कृतिक

सम्मेलनों का क्षेत्र बराबर व्यापक होता चला जा रहा है, जिससे संसार के व्यक्ति एक दूसरे के अधिक निकट होते चले जा रहे हैं। "पहले जो यात्रायें महीनों में पूरी होती थीं वे आज कुछ घंटों में समाप्त हो जाती हैं। आज एक देश के ही नहीं सारे विश्व के लोग एक परिवार की भाँति रहते हैं। पारस्परिक सम्पर्क द्वारा आचार-विचारों के प्रसार व सूचना के संचार से सुधार की भावना बलवती हो गई है। देश-काल की सीमाओं को लांघ कर आज का मानव विश्व-व्यापी वातावरण में भ्रमण करता है, उसका दृष्टिकोण व्यापक हो गया है और उसका ज्ञान विस्तृत हो चला है।" विश्व में हम जो समता तथा भ्रातृ-भाव देखते है वह सब यातायात के आधुनिक कारणों के द्वारा ही सम्भव हुआ है।

आधुनिक यातायात के साधनों के कारण ही सम्पूर्ण व्यक्तिगत विरोधी भावों के होते हुए भी विभिन्न देशवासियों की अन्तरात्मा में समभाव और आत्मीयता की प्रधानता दृष्टिगोचर हो रही है। यद्यपि इसके अनेक कारण हो सकते हैं, परन्तु यातायात की सुविधा भी इसका एक मुख्य कारण है। वर्तमान समय में राष्ट्रीय विशेष कर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का सद्भावना-संयुक्त संचालन शीघ्रगामी यातायात के कारण ही हो सकता है। युद्धोत्तर काल में संसार के अधिकांश देशों के नेता व प्रशासक यदि एक दूसरे के इतने निकट आ सके हैं तो इसका बहुत-सा श्रेय आजकल के यातायात के साधनों को ही दिया जा सकता है। गत दो-तीन वर्षों में भारतवर्ष ने विश्व राजनैतिक क्षेत्र में जो प्रतिभा पाई है उसका मुख्य कारण नेहरूजी का प्रयत्न तो है ही परन्तु वे भी यातायात तथा संवाद-वाहन-साधनों के बिना इस कार्य में सफल न होते। वास्तव में हमारे देश के प्राचीन आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को आधुनिक काल में चरितार्थ करने में नवीन यातायात के साधन पर्याप्त मात्रा में सहयोग दे सकते हैं। इस प्रकार आधुनिक यातायात के साधन आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति करने के लिए बहुत ही आवश्यक हैं। अब तो ऐसा ज्ञान होता है कि मानव-समाज का अस्तित्व यातायात के साधनों पर ही निर्भर है।

यद्यपि आधुनिक शीघ्रगामी यातायात के अनेक लाभ हैं, परन्तु यदि इनको मनुष्य विध्वंसकारी कार्यों में प्रयोग करने लगे तो ये मानव-समाज को शीघ्र नष्ट करने में भी समर्थ हो सकते हैं। परन्तु यह दोष नवीन यातायात के साधनों का कोई स्वाभाविक दोष नहीं है, यह तो मनुष्य के द्वारा इनके प्रयोग किये जाने की विधि का दोष है। आजकल के सभ्य शिक्षित मानव समाज के द्वारा इन यातायात के साधनों को उन्नति-कार्यों के लिए ही प्रयोग में लाना चाहिये।

CHAPTER II

Railway Capital and Expenditure : Laws of Returns.

For starting a railway a large amount of capital is required. Very little of the capital invested in a railway undertaking can be withdrawn. The major portion of the capital is sunk once for all. It is irrecoverable and immobile. Much of the capital of railways has to be incurred without any reference to the amount of traffic. In order to keep the capital equipment in working order, an annual expenditure has to be incurred.

Railway expenditure is independent of income. The major portion of the expenditure must be incurred irrespective of whether the traffic to pay for it is attracted or not. A considerable amount of annual expenditure is required in the shape of the general charges, maintenance charges and operating expenses. Authorities on Railway Economics have divided the working expenses of the railway undertaking into the following four catagories :—

1. General charges (maintaining the organisation).

2. Maintenance of way and works (maintaining the fixed plant).

3. Maintenance of rolling stock (maintaining the moving plant.)

4. Traffic expenses (Provision of the actual service).

In connection with railway capital and expenditure two points should always be kept in mind. In the first place, "the major portion of rilway expenditure is incurred for the traffic as a whole and can not be allocated between goods and passenger traffic, much less against individual items of passenger and goods traffic. Secondly expenses increase as traffic increases, but by no means in direct proportion. Accordingly the burden of expenditure decreases per unit of traffic with every increase in traffic.

Q. 2. Discuss the characteristics of railway capital. What is the relation between investment & volume of traffic ?

रेल यातायात प्रारम्भ करने के पहले बहुत पूँजी की आवश्यकता पड़ती है, इसके लिए प्रारम्भिक पूँजी पर्याप्त परिमाण में चाहिए। रेलवे लाइन-निर्माण के पहले पैमाइश survey की आवश्यकता पड़ती है. और यह कार्य बड़ी दक्षतापूर्वक करना पड़ता है, यदि गलत पैमाइश survey के आधार पर पहले रेल लाइन बन जावे और [illegible] जिससे उस लाइन पर रेलगाड़ियाँ न चलाई जा सकें तो सारी

पूँजी व्यर्थ हो जायगी, अतः निर्माण से पहले दक्ष पैमाइश की अधिक आवश्यकता है। सर्वे के फलस्वरूप रास्ता निश्चित होने पर जमीन खरीदनी पड़ती है, मार्ग का निर्माण करना पड़ता है, रेलवे लाइन डालनी पड़ती है, स्टेशन, प्लेटफार्म, पुल, सुरङ्ग आदि बनाने पड़ते हैं, सिगनल आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है, इसके पश्चात् इञ्जिन, डिब्बे आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है, इस कार्य में काफी खर्च हो जाता है।

रेलवे पूँजी के बारे में दूसरी विशेषता यह है कि इसमें लगी हुई पूँजी का अधिकांश भाग लौटाया नहीं जा सकता, वह तो सदैव के लिए लग जाता है। वह वापिस नहीं हो सकता। सर्वे करने में बहुत रुपयों का खर्च होता है, पर यह ऐसा खर्च है जो और किसी काम में नहीं आ सकता, यदि सर्वे की हुई लाइन न निकाली जाय तो यह खर्च बिल्कुल बेकार हो जाता है, इसी प्रकार रेलवे लाइन, स्टेशन, प्लेटफार्म, पुल आदि निर्माण करने का सारा व्यय और किसी मतलब का नहीं रहता। आकवर्थ के अनुसार, 'अधिक पूँजी लगा कर बनाई गई रेलवे लाइन, यदि रेलवे लाइन के रूप में प्रयोग में न लाई जा सके तो फिर यह और किसी काम में नहीं लाई जा सकती'।

रेलवे में लगी हुई अधिकांश पूँजी का लदान के परिमाण अथवा यात्री संख्या से कोई सम्बन्ध नहीं होता। रेल-मार्ग, स्टेशन, सिगनल-प्रणाली, प्लेटफार्म, साइडिंग, शैड्स आदि बनने में पहले बहुत खर्च हो जाता है और जो कुछ खर्च हो जाता है, वह रेल-सेवा मांग की घटा-बढ़ी के साथ घटता-बढ़ता नहीं, वह तो पहले से ही स्थिर है। उदाहरण के लिए आगरा से कानपुर तक रेलवे लाइन बिछाने, स्टेशन, प्लेटफार्म आदि बनवाने में जो कुछ खर्च हो गया, वह तो स्थिर है, अब आगरा से कानपुर तक चाहे १००० यात्री आवें या जावें अथवा केवल ५०० ही यात्रा करें या ३००० यात्रा करें, उस खर्च में कोई कमी-बेशी नहीं होगी। इसी प्रकार दोनों शहरों के बीच में चाहे १०० मन सामान भेजा जाय या १००० मन, उपर्युक्त मदों के खर्च में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इसीलिए यह कहा जाता है कि रेलवे में लगी हुई पूँजी के अधिकांश भाग का यातायात-मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि यातायात के बढ़ने से या घटने से रेलवे की इस पूँजी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं करना पड़ता।

रेलवे में लगी हुई पूँजी को ठीक दशा में रखने के लिए इस पर प्रतिवर्ष कुछ न कुछ खर्च करना पड़ता है। रेलवे लाइन, इञ्जिन, गाड़ियों आदि से बराबर काम लेने के लिए, उन्हें अच्छी हालत में रखने के लिए तथा टूट-फूट की मरम्मत करने के लिए कुछ व्यय करना पड़ता है। इस प्रकार रेलवे उद्योग में भी दो प्रकार का खर्च होता है, (१) पूँजीगत व्यय (२) वार्षिक व्यय। पूँजीगत व्यय एक बार करना पड़ता है, परन्तु वार्षिक व्यय बार-बार करना पड़ता है। रेलवे लाइन निर्माण तथा सुसज्जित करने के लिये जो पूँजी लगाई जाती है वह पूँजीगत व्यय कहलाता है। परन्तु रेलवे लाइन तथा अन्य रेल-सामग्री को कार्य करने के योग्य बनाये रखने के लिए जो व्यय करना पड़ता है वह वार्षिक व्यय कहलाता है। रेल-उद्योग के महान् आकार, उसकी अपार पूँजी और व्यय के स्थिर होने के महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं। इसके कारण रेल कम्पनियों को अधिक-से-अधिक यातायात पाने की लालसा रहती है और इसके लिए उन्हें सतत प्रयत्न करना पड़ता है, क्योंकि जितना ही यातायात अधिक होगा, रेल-व्यवसाय उतना ही अधिक सफल होता है।

अधिकतम यातायात का परिणाम अधिक लाभ तथा सस्ती सेवा होती है, जिसमें रेलवे कम्पनियों, जनता तथा सरकार सब को लाभ ही रहता है।

रेलवे में इतनी अधिक पूँजी लगती है कि उसका उपयोग करना ही देश के हित में होता है, इसलिए रेल-लाइन-निर्माण करते समय उस स्थान की वर्तमान तथा भविष्य में आर्थिक विकास की सम्भावनाएं जान लेना आवश्यक है, क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है इसमें लगाई गई पूँजी लौटाई नहीं जा सकती।

Q. 3. Is it possible to determine the actual cost of a single item of traffic transported by means of a railway? Give reasons.

यातायात-सेवा का मूल्य तथा उसका लागत व्यय

किसी रेलवे द्वारा सेवा-पूर्ति का लागत व्यय एक-सा नहीं होता, क्योंकि यातायात-सेवा-पूर्ति में विभिन्न उपकरण तथा विभिन्न परिस्थितियों का ध्यान रखना पड़ता है। रेलवे कम्पनी को कभी-कभी वस्तुओं का केवल स्थानान्तरण ही करना पड़ता है और कभी-कभी वस्तुओं का एकत्रित करना, लादना, उतारना, बाँटना, बन्द अथवा खुले डिब्बों में भेजना आदि अनेक कार्य करने पड़ते हैं। स्थानान्तरण में भी व्यय में विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत काफी अन्तर पड़ सकता है। उदाहरण के लिए वस्तु तेज अथवा मन्द गाड़ी द्वारा लेजाई जावेगी, किस प्रकार के डिब्बे में लेजाई जावेगी, कितनी मात्रा में भेजी जावेगी, उसका जोखम किस पर रहेगा, वह लगातार भेजी जाती है या कभी-कभी, वह वस्तु कितनी दूर भेजी जाने वाली है, इसी प्रकार की अन्य बातें यातायात-संचालन-व्यय को प्रभावित करती हैं, जिनके कारण यह व्यय एक-सा नहीं रहता। इसके अतिरिक्त पूँजीगत व्यय भी भिन्न-भिन्न होता है। किसी-किसी रेलवे लाइन के निर्माण में अपेक्षाकृत कम व्यय करना पड़ता है। किन्तु रेलवे लाइनों के निर्माण में व्यय तो कम होता है, परन्तु उस पर यातायात इतना कम रहता है कि प्रति इकाई पर व्यय अधिक पड़ जाता है। इस कारण किसी विशेष वस्तु के भेजने में कितना व्यय पड़ता है, यह ज्ञात करना कठिन हो जाता है।

रेल द्वारा वस्तुओं के स्थानान्तरण करने में ठीक-ठीक व्यय का पता लगाना निम्न कारणों से कठिन होता है :—

१—विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न दूरी पर भेजी जाती हैं। इस प्रकार इसमें ठीक-ठीक व्यय का पता लगाना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त रेलवे सेवाएँ संयुक्त उत्पादित वस्तुओं के समान हैं। जिस प्रकार गेहूँ उत्पादन करने में यह पता लगाना कठिन है कि कितना व्यय गेहूँ उत्पादन में तथा कितना व्यय भूसा उत्पादन में हुआ, इसी प्रकार रेलवे में भी बहुत तरह की वस्तुएँ एक साथ ही भेजी जाती हैं। यही नहीं जो वस्तुएँ किसी एक दिशा की ओर भेजी जाती हैं रेलगाड़ियाँ उन्हें वहाँ पहुँचा कर उधर से अन्य वस्तुएँ ले आती हैं। इस प्रकार से दोनों दिशाओं की यातायात-सेवा एक प्रकार से संयुक्त उत्पादन का रूप है। उदाहरणार्थ यदि आगरा से कोई वस्तु कानपुर को भेजी गई और उधर से वह रेलगाड़ी आगरे को फिर वापस आवे, और यदि दोनों का संचालन व्यय ८००) हो, और दूसरी तरफ से भी कुछ वस्तुएँ लदकर आवें तो यह निर्धारित करना कठिन हो जायगा कि कितना लागत-व्यय किस वस्तु पर डाला जाय। यदि

दोनों दिशाओं से यातायात बराबर है तो व्यय लगभग बराबर-बराबर बाँटा जा सकता है। किन्तु यदि एक दिशा का यातायात बहुत कम है तो व्यय का अधिकांश भाग अधिक यातायात के जिम्मे ही पड़ेगा।

कभी-कभी ऐसा होता है कि निर्मित वस्तुओं तथा खनिज पदार्थों का यातायात विपरीत दिशाओं को होता है। ऐसी परिस्थिति में लागत-व्यय के हिसाब से भाग-निर्धारण कठिन हो जाता है। इसी प्रकार, यात्रियों के यातायात में भी यह कठिनाई आती है कि प्रति यात्री पर भाड़ा किस प्रकार से निश्चित किया जाय। एक दिशा में यात्रा करने वालों की संख्या विपरीत दिशा के यात्रियों से बहुत अधिक या कम हो सकती है।

२—दूसरी कठिनाई जो कि मूल्य-निर्धारण में सामने आती है, वह रेलवे सेवा-पूर्ति की विभिन्न परिस्थितियों के बारे में है। व्यक्तियों तथा व्यापारियों को यातायात-सेवा विभिन्न परिस्थितियों में दी जाती है। इनमें से कुछ व्यय तो सबके लिए बराबर होता है, और कुछ किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों या व्यापारियों के लिए विशेष रूप से करना पड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि यात्रियों का यातायात बढ़ जाय तो वस्तुओं तथा खनिज पदार्थों आदि का यातायात न बढ़े। इन परिस्थितियों में यह पता लगाना कठिन है कि कितना विशेष व्यय किस विशेष मद के जिम्मे लगाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के यातायात में एक लाभ यह अवश्य होता है कि इसके कारण रेल-उद्योग द्वारा विभेदात्मक नीति का पालन करने के लिए आवश्यक क्षेत्र मिल जाता है।

भाड़ा-दर पर लागत-व्यय का प्रभाव निश्चित करने को रेलवे-व्यय की प्रकृति का जानना आवश्यक है। साधारण तौर पर दो प्रकार के व्यय होते हैं। (१) सामान्य और (२) विशेष व्यय। सामान्य व्यय में वह सब व्यय सम्मिलित होता है जो सब प्रकार के यातायात में एक-सा रहता है। इसके विपरीत विशेष व्यय कहलाते हैं, जो किसी निश्चित ट्रैफिक के यातायात में किये जाते हैं। सामान्य व्यय और विशेष व्यय का अन्तर स्थिरता व अस्थिरता से जाना जाता है। जो व्यय यातायात के परिवर्तन के होने पर भी प्रायः एक-से रहते हैं, वे सामान्य व्यय कहलाते हैं; और विशेष व्यय वे होते हैं, जो यातायात की घटा-बढ़ी के साथ घटते-बढ़ते रहते हैं। इस प्रकार के व्यय को अनुमानित करने में यातायात के बारे में निश्चित ज्ञान होना चाहिए।

सामान्य व्यय को यातायात की इकाइयों में कैसे बाँटा जाय, यह एक कठिन समस्या है। साधारणतः जितना अधिक यातायात होगा विशेष व्यय उतना ही अधिक होगा और साधारण व्यय कम। यद्यपि विशेष व्यय का यातायात की इकाइयों में वितरण और भी कठिन है। सिद्धान्त रूप से यह कह देना कि साधारण व्यय को समानता के आधार पर या वस्तुओं की भुगतान-क्षमता के आधार पर विभाजित कर लिया जाय तो सरल है, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह सिद्धान्त कठिन प्रतीत होता है। यही नहीं किन्हीं-किन्हीं गाड़ियों में यात्री और माल दोनों साथ-साथ ढोये जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में साधारण व विशेष व्यय का यातायात की विभिन्न इकाइयों में वितरित करना और भी कठिन हो जाता है। और यदि इसमें दूरी का भी ध्यान रक्खा जाय तो कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

यदि हम सामान्य व्यय को इस तरह बाँटें कि ट्रैफिक ढोने वाली भिन्न परिस्थितियों का विचार न करें, दूरी का ध्यान न करें, तो आर्थिक दृष्टि से यह

विभाजन त्रुटिपूर्ण माना जा सकता है । और यदि यह विभाजन यातायात की भिन्न-भिन्न इकाइयों में समता के आधार पर किया जाय तो यह विभाजन विशेष व्यय के अनुपात से किया जा सकता है। परन्तु यह प्रणाली विवादपूर्ण ही है और विशेषज्ञों के मतानुसार यह न तो न्यायोचित है, न व्यवहार में लाने योग्य । साथ-ही-साथ, किसी भी ट्रैफिक का वास्तविक व्यय का पता लगाना बहुत ही कठिन काम ज्ञात होता है । अभी तक ऐसा कोई भी वैज्ञानिक उपाय दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिसके सहारे सामान्य व्यय को यातायात की विभिन्न इकाइयों में उचित रूप में बाँटा जा सके ।

Q. 4. Describe the different items included in railway expenditure. Mention peculiarities about them.

रेल-व्यय में विशेषकर निम्नांकित मदें सम्मिलित होती हैं:—

१ – सामान्य व्यय (General Charges) :—इस व्यय में संचालकगण को दिया जाने वाला वेतन, सामान्य प्रबन्धक, सेक्रेटरी, एकाउण्टेण्ट, आडीटर्स तथा हैड क्वार्टर्स के क्लर्क आदि अन्य कर्मचारियों का वेतन सम्मिलित रहता है । इसी में कानूनी व्यय, प्रबन्ध सम्बन्धी व्यय, बीमा खर्च, हिस्सेदारों तथा अन्य लोगों के साथ पत्र-व्यवहार आदि का व्यय सम्मिलित किया जाता है । इसके अन्तर्गत आने वाला सम्पूर्ण व्यय इस प्रकार का होता है कि इसका रेल की आय तथा रेल-सेवा की माँग से कोई सम्बन्ध नहीं होता, अतः यदि यातायात अधिक रहे तो रेलवे कम्पनी को लाभ होने लगता है, क्योंकि इस व्यय में वृद्धि नहीं करनी पड़ती और यदि यातायात कम हो जाय तो रेल कम्पनी को हानि होने लगती है, क्योंकि इस व्यय में कमी नहीं की जा सकती ।

२—मार्ग और भवनों पर व्यय (Maintenance of way and works) :—यह व्यय भी ऐसा होता है कि ट्रैफिक की घटती व बढ़ती के साथ इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता । यद्यपि मार्ग व भवनों के अधिकाधिक उपयोग से उनकी रक्षा अथवा मरम्मत का व्यय बढ़ जाता है, परन्तु इतना नहीं बढ़ता जितना कि ट्रैफिक बढ़े । इस व्यय की वृद्धि के मुख्य कारण वास्तव में प्राकृतिक होते हैं । जलवायु, वर्षा आदि के कारण इन वस्तुओं को जो क्षति पहुँचती है, उसको ठीक करने के लिए यह व्यय आवश्यकीय होता हैं । यह व्यय स्थायी मार्ग के जीर्णोद्धार और नव-करण करने में, मकानों, गोदामों तथा स्टेशनों की मरम्मत करने में, पुल, सुरंग, सिगनल आदि को ठीक रखने में और मार्ग की देख-रेख रखने में किया जाता है । इस प्रकार यह व्यय प्रायः वही रहता है चाहे ट्रैफिक कम हो या अधिक । यह अवश्य है कि अधिक ट्रैफिक होने से इनमें घिसावट आ जाती हैं । कभी-कभी मार्ग की सफाई का व्यय बढ़ सकता है, गाड़ियों के चलने से जोड़ ढीले पड़ सकते हैं, सड़क की रोड़ी आदि हट सकती है, परन्तु इन सब में, इस अनुपात से व्यय अधिक नहीं होता जिस अनुपात से ट्रैफिक बढ़ता है । इसी प्रकार वर्षा ऋतु के उपरान्त मार्ग साफ तथा ठीक करने में जो व्यय होता है उसका ट्रैफिक की मात्रा से कोई सम्बन्ध नहीं । अतः यह व्यय भी ऐसा ही है कि जिसके कारण अधिक ट्रैफिक के बढ़ने से रेल कम्पनी को लाभ होता है और क्रमागत वृद्धि नियम का लाभ प्राप्त होता है ।

३—(Maintenance of Rolling stock) :—इस मद के अन्तर्गत उस माल पर व्यय की गई धनराशि सम्मिलित होती है, जो अंग्रेजी में rolling stock के नाम से समझा जाता है, जिसमें विभिन्न प्रकार के डिब्बे, इंजन इत्यादि सम्मिलित होते

है और इस धनराशि में घिसावट का व्यय, घिसावट के फलस्वरूप मरम्मत का व्यय, जीर्ण वस्तुओं के बदलने का व्यय सम्मिलित होता है। और आनुपातिक व्यय कम करने के लिये अधिक ट्रैफिक की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, यदि एक गाड़ी लम्बी हो उसमें बहुत से डिब्बे हों, हर डिब्बा पूरी तरह ,भरा हो तो इससे कम्पनी की अतिरिक्त आय बहुत अधिक होगी जितना उसे रौलिंग स्टाक की मरम्मत में व्यय नहीं करना पड़ेगा। अत: व्यय की यह मद भी ऐसी है, जिसके कारण रेल कम्पनियों को क्रमागत उत्पादन-वृद्धि नियम का लाभ मिलता है।

४—यातायात-व्यय (Traffic Expenses) :—इस प्रकार के व्यय में विशेषकर श्रम, तथा कोयले का मूल्य सम्मिलित रहता है, और इस व्यय में भी ट्रैफिक का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है कि जिससे ट्रैफिक के बढ़ने के साथ-साथ में व्यय भी बढ़ जाय। वास्तव में इस व्यय में २ मदें सम्मिलित हो सकती है। प्रथम, स्टेशन-सेवा का व्यय, जिसके अन्तर्गत स्टेशन-कर्मचारियों का वेतन, सिगनल-संचालकों का वेतन तथा अन्य इसी प्रकार का व्यय सम्मिलित रहता है। यह व्यय भी ट्रैफिक के अनुसार नहीं बढ़ता। द्वितीय मद, वास्तविक गाड़ी के चलाने की है, जिसके अन्तर्गत गाड़ी के साथ चलने वाले कर्मचारियों का वेतन, तथा कोयले आदि का व्यय सम्मिलित रहता है। और यह व्यय भी किसी हद तक ट्रैफिक की वृद्धि के साथ नहीं बढ़ता। उदाहरण के लिए, यदि एक ६ डिब्बे की गाड़ी में २ डिब्बे और जोड़ दिए जायँ तो कम्पनी की आय तो बहुत बढ़ जायगी, खर्च लगभग उतना ही बना रहेगा। हाँ, यदि दूसरी गाड़ी ही चलाई जाय तो व्यय अवश्य दुगना हो जायगा, लेकिन, वही खर्च दुगना होगा जो पूर्ण रूप से दूसरी गाड़ी से सम्बन्धित है अर्थात् गार्ड, ड्राइवर, फोरमैन, टिकट चैकर आदि का वेतन और कोयले आदि का व्यय।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कुछ कर्मचारियों तथा कोयला आदि पर होने वाले व्यय का ही ट्रैफिक से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह यातायात की वृद्धि व न्यूनता के साथ घटता-बढ़ता रहता है, शेष व्यय प्राय: वही रहता है, और उसमें परिवर्तन प्राय: कम होता है। इस प्रकार रेल-व्यय सम्बन्धी निम्न बातों को हम सारांश रूप में लिख सकते हैं।

१—रेल-व्यय का अति अधिकांश भाग प्राय: स्थायी रहता है, विशेषकर सम्पूर्ण पूँजीगत व्यय, आधे से अधिक वार्षिक व्यय स्थिर ही रहता है। वार्षिक व्यय का आधे से भी कम भाग परिवर्तनशील होता है, जो ट्रैफिक के साथ घटता-बढ़ता रहता है। इस प्रकार कुल व्यय का दो-तिहाई से भी अधिक भाग स्थिर होता है और एक-तिहाई से कम भाग परिवर्तनशील होता है। और यह बात रेल-उद्योग में क्रमागत उत्पादन-वृद्धि अथवा व्यय-ह्रास नियम के लागू होने के लिये उत्तरदायी है।

२—रेल-व्यय यातायात-परिवर्तन के साथ परिवर्तित होता है, परन्तु उस अनुपात से नहीं।

३—रेल के व्यय का वैज्ञानिक ढंग से कोई ठीक-ठीक विभाजन सम्भव नहीं।

४—रेल के अधिकतर व्यय स्थायी रहते हैं और उनका ट्रैफिक की इकाइयों में विभाजन ठीक प्रकार से संभव नहीं होता, क्योंकि रेल-उद्योग में अतिरिक्त सेवा सुविधाओं की आवश्यकता होती है। अचल सम्पत्ति, पूंजी आदि में वृद्धि बहुत समय के बाद होती है। उदाहरण के लिए यदि आगरा से कानपुर तक २४ घण्टों

के मध्य केवल एक ही गाड़ी प्रतिदिन ले जानी है, तो उसके लिए उतना ही रेलमार्ग, स्टेशन आदि पर व्यय करना पड़ेगा जितना १० गाड़ियों या २० गाड़ियों या ५० गाड़ियों पर। और इसी कारण से यातायात की वृद्धि के साथ लागत-व्यय प्रति इकाई कम होता जाता है। हाँ, यदि ट्रैफिक इतना अधिक बढ़ जाय कि रेल-सेवा की माँग को एक लाइन पूर्ति न कर सके तो दूसरी लाइन निकाली जा सकती है। परन्तु इसका प्रथम लाइन से विशेष सम्बन्ध न होने के कारण, उसके व्यय का सम्बन्ध प्रथम लाइन से कुछ नहीं होता। ऐसी अवस्था में वास्तव में प्रथम लाइन में पूर्ण रूप से क्रमागत उत्पादन-वृद्धि नियम का लाभ उठा लिया और उस पर ट्रैफिक का आवागमन, उसकी पूर्ण क्षमता के अनुसार हो रहा है। इसके पश्चात् रेलगाड़ी बढ़ाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि उसी लाइन पर रेलगाड़ियाँ और बढ़ाने से टूट-फूट, दुर्घटनाएँ आदि ही अधिक होंगी, जिससे कम्पनी व जनता दोनों को हानि उठानी पड़ेगी। ऐसी परिस्थिति में दूसरी लाइन डालना ही श्रेयस्कर प्रतीत होता है।

संक्षेप में रेल-व्यय निम्न प्रकार से होता है :—

१—प्रारम्भिक व्यय—कानूनी भूमि की नाप-तौल आदि पर किया गया व्यय।

२—भूमि का मूल्य—रेल-लाइन बिछाने तथा अन्य कार्यों के लिए भूमि मोल लेने अथवा भूमि स्वामियों को मुआवजा आदि देने का व्यय।

३—रेल मार्ग तथा अन्य इमारत निर्धारण व्यय।

४—चल सम्पत्ति व्यय—रेल के डिब्बे, इन्जिन-डिब्बों आदि पर व्यय।

५—विविध सम्पत्ति व्यय—टेलीफोन, बिजली-घर, जलपान गृह, अस्पताल, गोदामों आदि पर व्यय।

६—संचालन व्यय—रेलगाड़ियों के चलाने पर खर्च की हुई धनराशि। इस संचालन व्यय में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित होते हैं :—

१. विभिन्न निधियों में जमा की जाने वाली धनराशि।
२. भवनों, मार्गों, तथा इसी प्रकार की अन्य सामग्री को ठीक हालत में रखने पर व्यय की जाने वाली धनराशि।
३. चालन-शक्ति-पूर्ति-व्यय।
४. सवारी एवं मालगाड़ी के डिब्बों को ठीक हालत में रखने पर व्यय की जाने वाली धनराशि।
५. यातायात व्यय।
६. प्रशासन व्यय।
७. अन्य व्यय

रेलवे कम्पनियाँ अपनी सुविधा के लिए संचालन व्यय उपर्युक्त प्रकार से, विभिन्न मदों में बाँटती हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा में संचालन व्यय निम्न प्रकार से बाँटा जा सकता है :—

१—अचल व चल सम्पत्ति को ठीक रखने पर व्यय की जाने वाली धनराशि—इसमें, इमारतों, मार्गों, तथा डिब्बों आदि का मरम्मत व्यय सम्मिलित होता है।

२—प्रशासन एवं प्रबन्ध पर व्यय की जाने वाली धनराशि।

३—वास्तविक संचालन व्यय, कर्मचारियों, ईंधन आदि पर व्यय की जाने वाली धनराशि ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रेल के कुल व्यय में संचालन व्यय तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम होता है, और इस संचालन व्यय में भी यातायात के साथ घटने व बढ़ने वाले व्यय का भाग बहुत कम होता है, और इसी कारण रेल-उद्योग में क्रमागत उत्पादन-वृद्धि नियम विशेषकर लागू होता है ।

Laws of Returns in Transport.

If the traffic is light, the capital charges per unit of traffic upto the normal carrying capacity of the line will be accompanied by a decrease in the capital charges per unit of traffic. General charges grow less rapidly than the traffic expands ; consequently the heavier the traffic, the lighter the general charges per unit of traffic. The expenditure on maintenance of way and works also does not increase in direct proportion to the traffic. The cost of maintenance of way does not increase as rapidly as the traffic increases and that consequently, the heavier the traffic, the lower the cost of maintenance per unit of traffic. The expenditure on maintenance of rolling stock consisting of provision for wear and tear and provision for obsolescence, also upto a certain limit, does not increase in the same proportion as traffic increases. "It is improbable that the repair bill will increase in the same proportion as the loads, and it is certain that a heavy load involves no more obsolescence than a light load. Consequently, well-filled wagons and long trains imply a lower charge for maintenance in respect of wagons and locomotives per units of traffic than the partially filled wagons and short trains. Traffic expenses consisting of cost of coal also follow the same course. There are at least two ways in which it is possible for traffic to grow without involving a proportionate increase in traffic expenses. (1) The cost of station service including salaries, wages, materials—and the cost of watching and signalling on the open line should not increase proportionately as the number of trains run is increased. (2) The cost of running locomotives and other train expenses should increase at a lower rate than the traffic carried, if the additional traffic is conveyed in better filled wagons and longer trains and better filled wagons imply less dead weight to be hauled in proportion to paying load. Well filled wagons and long trains render possible economies in capital charges, economies in maintenance and economies in working. All these factors described above are responsible for the operation of the law of increasing returns in railways.

The greatest economy of large scale production so far as railways are concerned is the possibility of utilizing more fully the plant and establishment as the traffic increases ; or in other words, of reducing the fixed charges per unit of output. The larger a railway undertaking, the more specialised the labour employed can be, the more specialised the machinery and plant which can be introduced, the greater the development of subsidiary industry thinly rendered

[illegible] and the greater the opportunities for buying and selling on favourable terms. All these economies lead to increasing returns in railways.

Q. 5. Explain fully how 'increasing returns' manifest themselves in the operation of a railway. (A. U. 1943).

Q. 6. 'Expenses increase as traffic increases, but by no means in direct proportion.' Explain fully the above statement pointing out to what extent it applies in the working of a railway enterprise'. (A. U. 1946)

Q. 7. Justify the statement that the railways are an increasing returns industry. (A. U. 1951).

Q. 8. 'Observation of the various expenses of a railway show that many of these do not increase in direct proportion to an increase in traffic.' Examine the different expenses of railway undertaking, with a view to verify this fact.

रेल यातायात तथा उत्पादन वृद्धि नियम

अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को यह विदित है कि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ प्रति इकाई लागत कम होती जाती है। रेलवे उद्योग भी एक वृहद मात्रा का उद्योग है और इस कारण से इसमें कुशलतम श्रम तथा नवीनतम मशीनरी का प्रयोग भली प्रकार से किया जा सकता है। इसी प्रकार सहायक धन्धों का विकास, कि जिसमें रेल के डिब्बे, इन्जन इत्यादि की मरम्मत कम लागत में हो सके, अधिक मात्रा में किया जा सकता है। अधिक परिमाण में वस्तुएँ बेची व खरीदी जा सकती है। इन सब कारणों से और उद्योगों की भाँति इस उद्योग में भी क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम के लाभ प्राप्त होने लगते हैं।

रेल-उद्योग के सम्बन्ध में वृहद मात्रोत्पादन की सबसे बड़ी (economy) यह है कि रेलगाड़ी का अधिक-से-अधिक उपयोग तभी हो सकता है जबकि उसके द्वारा अधिकाधिक मनुष्यों एवं वस्तुओं का स्थानान्तर किया जाय। यदि ट्रैफिक बढ़ता जाय तो उसके लिए व्यय बहुत अधिक नहीं करना पड़ता, क्योंकि रेलवे में लगी हुई पूँजी का अधिकांश भाग प्रायः स्थिर होता है। साथ ही साथ रेल-संचालन के लागत-व्यय का भी अधिकांश भाग ट्रैफिक के अनुपात में नहीं घटता-बढ़ता। उदाहरणार्थ — रेल मार्ग, स्टेशन, सिगनल, ड्राइवर, गार्ड इत्यादि पर जो व्यय किया जाता है वह उतना ही रहता है, चाहे उस गाड़ी द्वारा दो सौ आदमी यात्रा करें या चार सौ। इस प्रकार जितना ही अधिक ट्रैफिक होगा, उसका प्रति इकाई लागत-व्यय कम होता चला जायगा। उदाहरण के लिए, मान लीजिए किसी रेलगाड़ी की वहन-शक्ति ५०० यात्रियों की है, और उस पर एक निश्चित स्थान से दूसरे तक जाने में ४००) व्यय होता है। यदि उसमें एक डिब्बा और जोड़ कर ६०० आदमियों के जाने का प्रबन्ध कर दिया जाय तो उसके व्यय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा। परन्तु लागत-व्यय प्रति इकाई काफी कम हो जायगा। इसी प्रकार से यदि एक डिब्बा और लगाकर ७०० यात्रियों के स्थानान्तर का प्रबन्ध कर दिया जाय तो लागत-व्यय प्रति इकाई और भी कम हो जायगा।

यदि हम दूसरे उदाहरण को लें जिसमें किसी रेलवे मार्ग पर २४ घण्टों में केवल १२ रेलगाड़ियाँ इधर से उधर आती-जाती हैं, यदि संयोगवश रेलवे यातायात-सेवा

की माँग बढ़ जाय और १५ गाड़ियों के स्थान पर २० गाड़ियाँ चलने लगें तो लागत व्यय प्रति इकाई कम ही रहेगा क्योंकि व्यय की मदों में, थोड़े सी ही मदों में परिवनर्त होगा अधिकांश व्यय की मदें वैसी ही बनी रहेंगी। रेल-मार्ग, स्टेशन, प्लेटफार्म, सिगनल रूम, ब्याज आदि पर वही व्यय बना रहेगा। केवल अतिरिक्त गाड़ियों के चलाने का व्यय ही बढ़ेगा। इस प्रकार लागत व्यय प्रति इकाई कम ही होता जाता है। और यदि २० गाड़ियों के स्थान पर २५ या ३० चलाई जावें तो लागत व्यय प्रति इकाई और भी कम होता जायगा और इस प्रकार रेलवे अधिकारियों को क्रमागत उत्पादन वृद्धि अथवा क्रमागत व्यय ह्रास नियम के फलस्वरूप लाभ प्राप्त होता जायगा।

उपर्युक्त वर्णन से, यह निष्कर्ष न निकाल लेना चाहिए कि क्रमागत व्यय ह्रास नियम के लागू होने के लिए रेलवे उद्योग में अपरिमित क्षेत्र है। इसके विपरीत और उद्योगों की भाँति इसकी भी सीमा है। प्रत्येक रेलमार्ग की एक वहन शक्ति होती है (carrying capacity) यदि इस शक्ति से अधिक उस मार्ग के द्वारा ट्रैफिक ढोया जायगा तो दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। पूँजी में घिसावट, तोड़-फोड़ अधिक हो सकती हैं। मरम्मत में रुपया अधिक व्यय हो सकता है। पुराने डिब्बे व इंजनों के स्थान पर नये-नये का प्रतिस्थापन शीघ्र करने की आवश्यकता हो सकती है और इस सबके फलस्वरूप व्यय पहिले से भी अधिक हो सकता है, जिससे क्रमागत व्यय ह्रास नियम के स्थान पर क्रमागत व्यय-वृद्धि लागू हो सकती है। अन्य उद्योगों से रेलवे उद्योग में इस सम्बन्ध में केवल अन्तर यह है कि और उद्योगों में क्रमागत व्यय ह्रास नियम अधिक देर में प्रारम्भ होता है, और इसकी गति मंद होती है। रेल यातायात में यह नियम लागू भी शीघ्र होने लगता है और गति तीव्र होती है। दूसरा, अन्तर इस कहावत से प्रकट होता है कि "Law of increasing return in railway is more due to physical conditions, rather than financial operations."

इसमें कोई भी संदेह नहीं कि रेल क्रमागत-उत्पादन वृद्धि नियम वाला उद्योग है अर्थात रेल-सेवा की माँग की वृद्धि के साथ-साथ जब इसकी पूर्ति अधिक की जाती है तो लागत व्यय प्रति इकाई कम होता जाता है। यद्यपि प्रारम्भ में भूमि के खरीदने, रेल-मार्ग बनाने, स्टेशन, प्लेटफार्म, पुल सुरंग आदि के निर्माण करने, सिगनलों का प्रबन्ध करने तथा डिब्बे और इंजनों के प्रबन्ध करने में बहुत पूँजी लगानी पड़ती है, परन्तु जहाँ एक बार रेलवे लाइन का निर्माण कर दिया गया तो फिर उससे अधिक-से-अधिक उपयोगिता ली जा सकती है। यह सम्भव है कि आरम्भ में जब एक रेलवे-मार्ग किसी जगह खोला जाय तो शायद उसे कुछ समय तक काफी ट्रैफिक न मिले परन्तु धीरे-धीरे उस लाइन पर ट्रैफिक वृद्धि होती चली जायगी और लागत व्यय प्रति इकाई कम होता जायगा। बहुत समय तक जो कुछ व्यय किया जा चुका है उसके अतिरिक्त व्यय करने की कोई भी आवश्यकता नहीं परन्तु आय में बराबर वृद्धि होती जायगी। कुछ समय बाद यह भी हो सकता है कि ट्रैफिक की वृद्धि के कारण नई गाड़ियाँ चलानी पड़ें। तो ऐसा करने के लिए रेलवे कं० को केवल रेलगाड़ियाँ ही नहीं लेनी पड़ेंगी, उनके चलाने का व्यय वहन करना पड़ेगा। पूँजीगत व्यय लाइन, स्टेशन आदि निर्माण में जो लगाया गया है उसमें किसी परिवर्तन की जरूरत नहीं पड़ती। इस प्रकार के पूँजी का भार ट्रैफिक वृद्धि के साथ कम होता जाता है। और जब तक रेलवे लाइन की सामान्य वहन शक्ति की सीमा तक ट्रैफिक बढ़ता जाता है पूँजीगत व्यय कम होता चला जाता है।

इस प्रकार रेलवे का दैनिक व्यय भी ट्रैफिक की वृद्धि के अनुसार नहीं बढ़ता। सामान्य व्यय भी ट्रैफिक की वृद्धि की अपेक्षा कम बढ़ता है। इसी प्रकार गाड़ी, इंजन इत्यादि को ठीक दशा में रखने के लिए जो व्यय किया जाता है वह भी आनुपातिक दृष्टि से कम बढ़ता है। इस प्रकार ट्रैफिक की प्रत्येक इकाई की वृद्धि के साथ नित्यप्रति के व्यय का बोझ बराबर कम होता चला जाता है। विशेषज्ञ तथा अधिक कुशल श्रमिकों की सेवाओं का प्रयोग ट्रैफिक वृद्धि के साथ अधिकतम सीमा तक किया जाता है। इस कारण प्रति इकाई लागत व्यय कम हो जाता है।

आन्तरिक तथा बाह्य बचतों के कारण भी लागत व्यय कम होता जाता है। रेल उद्योग एक वृहत् मात्रा का उद्योग है। इसलिए वृहत् मात्रा की जितनी बाह्य और आन्तरिक बचत संभव होती है वह सब रेल उद्योगों को ही प्राप्त होती है। जब रेलों में यातायात की मात्रा बढ़ जाती है तो विशेषज्ञों और श्रम विभाजन से प्राप्त लाभों से रेलवे उद्योग में लागत व्यय कम होता जाता है। इसी प्रकार से मरम्मत करने का कार्य तथा और भी टेकनीकल काम विशेषज्ञों के द्वारा ही किए जाते हैं। अच्छी से अच्छी मशीनों तथा औजारों के प्रयोग से व्यय कम होता जाता है। डिब्बों में सामान लादने और उतारने आदि में भी आधुनिक मशीनों के प्रयोग से काफी समय व रुपये की बचत होती है। इसी प्रकार से रेल के डिब्बों इंजनों आदि से अधिक से अधिक कार्य लिया जाता है और इस कारण लागत व्यय कम हो जाता है। बृहत्मात्रोत्पादन में सहायक उद्योगों मे भी अधिक लाभ होता है। रेलवे उद्योग के लिए भी यह बात सत्य है। एन्जिन डिब्बे इत्यादि बनाने तथा मरम्मत करने के लिए जो कारखाने खोले जाते हैं उनकी उपयोगिता बड़े पैमाने पर कार्य करने से ही अधिक होती है और तभी उनका व्यय कम होता है। इसी प्रकार से बड़े पैमाने पर रेलें चलाने के कारण कोयला आदि आवश्यक वस्तुओं की खरीद अधिक परिमाण में की जाती है और ये सारी चीजें सस्ती मिल जाती हैं। इन सब कारणों से रेल सेवा की पूर्ति का मूल्य कम ही होता चला जाता है।

उपर्युक्त बातों को सिद्ध करने के लिए भारतीय रेलों का उदाहरण दिया जा सकता है। प्रारम्भ मे जब देश में रेलवे लाइनें निकाली गई थीं तो बहुत समय तक रेल की विभिन्न कम्पनियों को हानि रही थी। सन् १९०० ई० के बाद ही भारतीय रेलों को लाभ होना प्रारम्भ हुआ। उत्तर पश्चिमी रेलवे इसका एक अच्छा उदाहरण है। जब इस रेलवे लाइन का निर्माण हुआ था उस समय बंगाल का प्रान्त बिलकुल अविकसित क्षेत्र था। इससे उस समय रेल के लिए ट्रैफिक बहुत कम था और रेलवे को बहुत हानि सहनी पड़ी। परन्तु नहरों का जाल बिछ जाने के कारण पंजाब में गेहूँ और कपास के खेत लहलहाने लगे और वह प्रान्त एक समृद्धिशाली क्षेत्र बन गया। इसके फलस्वरूप यात्रियों और वस्तुओं का यातायात रेलवे द्वारा अधिक होने लगा और जिस रेलवे को पहिले हानि हुआ करती थी उसे थोड़े ही वर्षों के बाद लाभ होने लगा और उस रेल में क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम प्रारम्भ हो गया।

यहाँ यह बात ध्यान रखने की है, कि क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम सदा के लिए लागू नहीं होता। जिस प्रकार साधारण उद्योग में जब किसी कारखाने का पैमाना बढ़ाया जाता है, एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि अधिक उत्पादन क्रमागत ह्रास नियम के आधार पर होने लगता है। और यह तब होता है जबकि स्थिर पूँजी का पूर्ण उपयोग होने लगता है। और उद्योगों के समान रेलवे उद्योग में भी क्रमागत उत्पादन वृद्धि अथवा क्रमागत व्यय ह्रास नियम सदैव के लिए लागू नहीं होता।

जब तक कि ट्रैफिक रेलवे लाइन की अधिकतम वहन शक्ति तक नहीं पहुँच जाता तब तक तो प्रति इकाई व्यय कम होता जाता है, परन्तु जब ट्रैफिक इस स्थिति को पार कर जाता है तो फिर प्रति इकाई व्यय कम होने के स्थान पर अधिक होने लगता है। विशेष कर यातायात की गतिविधि में काफी रुकावटें पड़ने लगती हैं, रेलगाड़ियों को जगह-जगह पर अधिक देर के लिए रुकना पड़ता है, साइडिंग आदि अधिक बनवाने पड़ते हैं। कर्मचारियों को अधिक समय तक रुकने के लिए भत्ता अधिक देना पड़ता है, चल सम्पत्ति अनावश्यक रूप से बहुत देर तक निष्क्रिय रहती है। दुर्घटनाएँ अधिक होने लगती हैं जिससे टूट-फूट अधिक होती है और इसके कारण कम्पनियों को मरम्मत आदि पर प्रतिदिन अधिक खर्च करना पड़ता है, इन्हीं कारणों से रेल जैसे क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम वाले उद्योग में अन्ततोगत्वा क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम लागू होने लगता है।

Q. 9 Discuss fully the ways in which the law of diminishing returns applies to railways. Illustrate your answer by suitable illustrations drawn from the working of the railways in India in particular since 1942 (A u. 1946)

रेल उद्योग में क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम

साधारण तौर पर रेल उद्योग एक ऐसा उद्योग है जिसमें क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम ही लागू होता है। उत्तरोत्तर ट्रैफिक की वृद्धि के साथ, लागत व्यय क्रमशः कम होता जाता है और इस प्रकार रेलवे कम्पनी को इसी में लाभ होता है कि ट्रैफिक बराबर बढ़ता चला जाय। बढ़ते हुए ट्रैफिक को सुविधापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने के लिए अधिक पूँजी लगानी पड़ती है, पर कुछ समय के बाद, जिस समय तक अतिरिक्त पूँजी नहीं लगानी पड़ती तब तक तो वृद्धि नियम लागू होता ही है। इसके बाद यदि ट्रैफिक बढ़ता जाय और अतिरिक्त पूँजी लगानी पड़े तब भी अतिरिक्त ट्रैफिक को ले जाने की क्षमता बढ़ाने के लिए बहुत अधिक पूँजी नहीं लगानी पड़ती। थोड़ी सी अतिरिक्त पूँजी से काम चल जाता है। उदाहरणार्थ—डिब्बों को भली-भाँति भरा जा सकता है, लम्बी गाड़ियाँ चलाई जा सकती हैं, अधिक शक्तिशाली एन्जिन का प्रयोग किया जा सकता है। गाड़ियों की चाल बढ़ाई जा सकती है, शन्टिग आदि में कम समय लिया जा सकता है, कन्ट्रोल सिस्टम आदि में सुधार किया जा सकता है और यदि इनसे भी काम न चले तो एक के स्थान पर दो लाइन की जा सकती है। किसी हद तक भीड़-भाड़ भी सहन की जा सकती है; लेकिम इन सब बातों की भी एक सीमा है। ऐसा भी हो सकता है कि अत्यधिक भीड़ के कारण टाइमटेबिल के अनुसार रेलें आ जा न सकें, बहुत सी गाड़ियाँ बहुत देर तक स्टेशनों पर खड़ी रहें जिससे कर्मचारियों को बहुत अतिरिक्त वेतन देना पड़े, कोयले का व्यय बढ़ जाय, अधिक देर होने के कारण यात्रियों अथवा व्यापारियों को हानि पहुँचे, वे उसका मुआवजा कम्पनी से माँगने लगें, अत्यधिक कार्य करने से रेल कर्मचारियों का स्वास्थ्य खराब हो जाय, दुर्घटनाएँ अधिक होने लगें इत्यादि इस प्रकार की बहुत सी ऐसी बातें आ सकती हैं जिनके कारण ट्रैफिक के बढ़ने के साथ ही साथ संचालन व्यय भी बढ़ता चला जाय और अतिरिक्त ट्रैफिक को सफलतापूर्वक स्थानान्तरित करने के लिए बड़े-बड़े स्टेशन, बड़े-बड़े मालगोदाम बनाने पड़ें। बहुत सी लाइनें निकालनी पड़ें। यदि ऐसा करना पड़े तो फिर पूँजीगत व्यय बढ़ जायगा और यदि भूमि की कमी हुई तो इस पर और भी अधिक व्यय करना पड़ेगा और इसके कारण लागत व्यय अधिक बढ़ जायगा व

प्रारम्भ में इतना अधिक ट्रैफिक, सम्भव है न मिले कि जो नये स्टेशनों, नये माल-गोदामों तथा नई लाइनों की कार्यक्षमता के अनुसार हो। तो ऐसी दशा में रेल उद्योग में भी क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम का लागू होना सम्भव है। और जब यह स्थिति आ जाती है तो रेल कम्पनियाँ अधिक विस्तार करने में कुछ हिचकने लगती है। साथ ही साथ यात्रियों तथा व्यापारियों को बहुत प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। और रेल सेवा से लोग कुछ असन्तुष्ट से हो जाते हैं। इससे यातायात के अन्य साधनों को अवसर मिल जाता है। विशेषकर सड़क यातायात, रेल से प्रतिस्पर्धा करने लगती है।

राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भी यही उपयुक्त ज्ञात होता है कि जब रेल उद्योग में क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम लागू होने लगे और यातायात की माँग बढ़ती जाय तो दूसरे प्रकार के यातायात को प्रोत्साहन देना चाहिए। वास्तव में देश के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के यातायात साधनों का समुचित समन्वय ही यातायात उद्योग में क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम न लागू होने देने का एकमात्र उपाय है।

ज्यों ही ट्रैफिक की मात्रा रेलवे लाइन की सामान्य वहन शक्ति के बराबर हो जाती है, ट्रैफिक के प्रति इकाई के लागत व्यय का कम होना समाप्त हो जाता है। फिर ट्रैफिक की वृद्धि और पूँजीगत व्यय व्यय-वृद्धि का कारण बन जाती है। जिस प्रकार कृषि योग्य भूमि के बारे में यह नही कहा जा सकता कि यही उसकी उत्पादन शक्ति है. वह बढ़ सकती है यद्यपि उसके बढ़ाने में व्यय अधिक करना पड़ेगा। इसी प्रकार किसी रेलवे लाइन की यातायात वहन शक्ति में वृद्धि की जा सकती है, यदि उसके प्रबन्ध अथवा संचालन में कुछ परिवर्तन किया जाय या उस पर अधिक व्यय किया जाय। जिस प्रकार कृषि योग्य भूमि में अच्छे खाद, अच्छे बीज तथा परिष्कृत कृषि प्रणाली द्वारा क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम कुछ समय को हटाया जा सकता है उसी प्रकार रेलवे उद्योग में भी क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम का लागू होना रेलवे लाइन की सामान्य वहन शक्ति में परिवर्तन करके कुछ समय को स्थगित किया जा सकता है। यदि नये ट्रैफिक को सुचारू रूप से संचालन करने के लिए पूँजी का व्यय भी ठीक प्रकार किया जाय तो हो सकता है कि बहुत समय तक किसी विशेष रेलवे लाइन को क्रमागत ह्रास नियम का सामना न करना पड़े। रेलवे लाइन की वहन शक्ति में वृद्धि करने के बहुत से उपाय हैं। गाड़ियों की चाल को अधिक तेज किया जा सकता है जिससे रेल की प्रत्येक पूँजी से अधिक काम लिया जा सकेगा और अधिक ट्रैफिक थोड़े ही समय में एक से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकेगा। यद्यपि इञ्जन और डिब्बों आदि के अधिक प्रयोग से घिसावट तथा मरम्मत व्यय अधिक हो जायगा परन्तु बढ़े हुए ट्रैफिक से आय भी अधिक हो जायगी। परन्तु अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक प्रकार के उपाय की एक सीमा होती है। गाड़ियों की चाल किसी विशेष सीमा से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। बहुत बड़ी तथा अधिक बोझा ढोने वाली गाड़ियों का प्रयोग किया जा सकता है पर किसी सीमा तक। क्योंकि अधिक तेज चाल, बड़ी व भारी गाड़ियों से घिसावट, टूट-फूट, अधिक होने की सम्भावना होती है और रेलवे मार्ग व पुलों आदि को मजबूत कराने की भी आवश्यकता हो जाती है। फिर बड़ी तथा बोझीली गाड़ियाँ बहुत तेज चाल से नहीं चलाई जा सकतीं। ऐसी तेज गाड़ियों को रास्ता देने को बार-बार बहुत देर तक साइडिंग में खड़ा करना पड़ेगा। इससे उनके अधिकतम प्रयोग में बाधा होगी, ट्रैफिक के नियन्त्रण के लिए अधिक कर्मचारियों

की आवश्यकता पड़ेगी। इसी प्रकार और भी विभिन्न उपायों से रेलवे लाइन की वहन शक्ति बढ़ाई जा सकती है, परन्तु इन सब उपायों के लिए सीमा है। इसके बाद रेलवे की वहन शक्ति बढ़ाने के लिए ये सारे उपाय आर्थिक दृष्टि से उचित नहीं रहते और एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि जब रेलवे लाइन की वहन शक्ति को नहीं बढ़ाया जा सकता। ट्रैफिक वृद्धि से यात्रियों की भीड़ वस्तुओं का अधिकाधिक स्थानान्तर तथा अन्य असुविधाएँ सामने आ जाती हैं। ट्रैफिक की हर इकाई को स्थानान्तर करने का व्यय बढ़ जाता है। गाड़ियों को यथा समय पहुँचाना कठिन हो जाता है। एंजिन तथा गाड़ियों पर चलने वाले कर्मचारियों के अतिरिक्त काम करने के लिए अधिक वेतन देना पड़ता है। एंजिन को लाइन पर बहुत देर रहना पड़ता है जिससे कोयले का व्यय बढ़ जाता है। वस्तुओं के अधिक परिमाण के कारण गोदामों में, डिब्बों में वस्तुओं का सम्भालना कठिन हो जाता है। टूट-फूट अधिक होती है। देरी तथा मुआवजे के रूप में रेलों को बहुत व्यय करना पड़ता है। साइडिंग और शन्टिग का व्यय भी बढ़ जाता है। कभी-कभी माल के उतारने व चढ़ाने के व्यय में भी वृद्धि हो जाती है। चढ़ाने-उतारने में देर भी काफी लगती है जिससे माल गाड़ियों को बहुत देर तक एक स्थान पर रुकना पड़ता है। इन सब कारणों से ट्रैफिक व्यय प्रति इकाई बढ़ जाता है। जब इस प्रकार की स्थिति हो जाती है कि ट्रैफिक की वृद्धि के साथ-साथ उपर्युक्त कारणों से वहन व्यय प्रति इकाई बढ़ने लगे तो क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम अथवा क्रमागत व्यय वृद्धि नियम रेलों में लागू हो जाता है। यदि कोई रेलवे कम्पनी इस स्थिति पर ध्यान न दे और क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम के लागू होने के बाद भी ट्रैफिक की वृद्धि बराबर होती रहे तो रेल सेवा के टूट जाने का भी डर रहता है। रेलवे लाइनों, डिब्बों, इंजनों तथा प्रबन्ध में इस प्रकार की गड़बड़ी होने लगती है जिससे रेलों द्वारा यात्रियों तथा वस्तुओं का स्थानान्तर एक जटिल समस्या बन जाती है। और फिर यदि बड़े-बड़े स्टेशन बनवाने पड़ें बड़े-बड़े गोदाम बनवाने पड़ें, दोहरी लाइनें डालनी पड़ें, नये-नये पुलों या फाटकों को बनवाना पड़े, नये इन्जन व नये डिब्बे मँगाने पड़ें तो ये सब व्यय थोड़े से अधिक ट्रैफिक के लिए करना पड़ता है जिससे प्रति इकाई व्यय बढ़ जाता है और इस वृद्धि के अनुसार आय में वृद्धि नहीं होती, और इसके फलस्वरूप क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम अथवा क्रमागत व्यय वृद्धि नियम आरम्भ हो जाता है।

CHAPTER III

Competition, Combination and Monopoly.

Probably the strongest motive which leads railway companies to establish understandings among themselves is connected with the financial organisation of railway undertakings. Railway companies are practically compelled, in self-defence, to enter into arrangements to secure equal rates between competitive points. During recent years various causes have operated to raise the cost of railway working and to meet their growing expenses, railway companies can not easily charge higher prices because of legal restrictions and also because of potential competition and therefore instead of or in addition to, attempting to increase their revenues by raising their charges railway companies may seek to redeem their expenditure in various directions—by restricting competition by forming combinations, which are also formed for securing economies of large scale of production and reducing administrative expenses.

Combinations and agreements among railway companies fall into two classes :—(1) agreeing parties have one management (2) each party has independent management. Thus, there may be a complete amalgamation, or working unions, having a common administration. In some cases arrangements are made either to restrict competition, or to divide traffic earnings between companies on agreed basis. Agreements may be established for securing some rights. There is some monopolistic nature in railways.

Q. 10. "Public Regulation of Railways was imposed quite as much to cure the ills of unrestrained competition as to curve tha exactions of monopoly." Examine this statement. (A. U. 1945)

आधुनिक काल में अधिक प्रतिस्पर्द्धा फैलने से अन्त में जनता को हानि होती है और एकाधिकारी उद्योग से भी जनता को हानि पहुँचती है। यह बात रेल उद्योग के लिए भी सत्य है। यदि रेल उद्योग में प्रतिस्पर्धा की छूट दे दी जाय तो ऐसा हो सकता है कि अनेक रेल कम्पनियाँ एक ही क्षेत्र में अपना कार्य करने लगें अथवा रेल यातायात व सड़क यातायात में प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ जाय कि उनका लागत व्यय भी न निकले, और यदि रेलों को यातायात क्षेत्र में एकाधिकार मिल जाय तो भी वह यात्रियों तथा व्यापारियों से मनमाना भाड़ा वसूल कर सकती है। इस प्रकार जनहित में रेलवे का राज्य द्वारा नियन्त्रण ही उचित हैं। इस नियन्त्रण से एक तो प्रतिस्पर्धात्मक बुराइयाँ दूर होती हैं और दूसरे एकाधिकारात्मक शोषण भी समाप्त होता है।

यातायात उद्योग में अति प्रतिस्पर्धा हानिप्रद होती है। इसके फलस्वरूप यातायात के साधन बढ़ जाते हैं जिनका उपयोग जनता पूरी तरह नहीं कर सकती

और इसका लागत व्यय भी बढ़ता जाता है, परन्तु पारस्परिक स्पर्धा के कारण भाड़ा-दर अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इसलिए अधिक लागत व्यय में जो अधिक व्यय होता है उसकी पूर्ति होना कठिन हो जाता है। इसमें रेलों को तथा यातायात के अन्य साधनों को कठिनाई उठानी पड़ती है। यातायात के साधनों में जब प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है और यातायात सेवा की इतनी माँग नहीं होती तो किसी साधन को पूरा कार्य नहीं मिलता। और प्रत्येक साधन अपनी ओर ट्रैफिक आकर्षित करने का प्रयत्न करता है। रेल यातायात के लिए ये बात विशेष सत्य है। क्योंकि रेल निर्माण में इतनी अधिक पूँजी लग जाती है कि रेलों को सिवाय काम प्राप्त करने के अन्य चारा नहीं रह जाता। और रेलें उस हद तक ट्रैफिक ढोने को तैयार हो जाती हैं जहाँ तक उन्हें सामान्य व्यय में कुछ न कुछ मिलता रहे। रेलों में जब यह प्रतिस्पर्धा अधिक हो जाती है तो या तो कुछ ट्रैफिक किसी विशेष लाइन के हाथ से निकल जाता है या अधिक ट्रैफिक आकर्षित करने को भाड़ा दर कम कर दिया जाता है, जिसके फलस्वरूप जनता को भली-भाँति यातायात की सुविधाएँ नहीं मिलती। इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा रोकने के लिए राज्य का नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।

इस नियन्त्रण के द्वारा एक क्षेत्र में एक से अधिक रेलवे कम्पनियों को कार्य करने का अधिकार नहीं दिया जाता और साथ ही साथ भाड़ा दर निर्धारित कर दिया जाता है जिसके अनुसार ही रेलवे कम्पनियाँ भाड़ा ले सकती हैं। सरकार द्वारा भाड़ा निर्धारण के फलस्वरूप भाड़ा लेने में गलाघोंट प्रतिस्पर्धा को अवसर नहीं मिलता। इस तरह की प्रतिस्पर्धा से हानि देख साधारणतः रेलवे कम्पनियाँ मिल कर अपना एक गुट्ट बना लेती हैं। और आपस में मिल कर एक प्रकार का एकाधिकार पा लेती हैं। एकाधिकार मिलने पर रेलें मन चाहा भाड़ा ले सकती है और इसमें जनता को किसी से शिकायत करने की गुंजाइश नहीं रहती। क्योंकि इस सम्बन्ध की शिकायत तो तभी दूर हो सकती है जब या तो यातायात का अन्य साधन हो या सरकार के पास कोई ऐसा उपाय हो जिससे रेलों को अधिक भाड़ा लेने से रोका जाय। यह तभी सम्भव है जब रेलों पर राज्य का नियन्त्रण हो जाय।

वास्तव में यातायात के साधनों के लिए एकाधिकार तथा प्रतिस्पर्धा दोनों ही हानिकारक हैं। प्रतिस्पर्धा से यातायात में लगी पूँजी द्वारा आय कम हो जाती है। पूँजी से वांछित प्रतिफल नहीं मिलता। देश की बहुत सी पूँजी अनार्थिक ढंग से नियोजित कर दी जाती है। पारस्परिक गलाघोंट स्पर्धा के फल से कभी-कभी रेलवे कंपनी को बहुत हानि होती है, जिससे सारे समाज का अहित होता है। इन सब दोषों का निराकरण राज्य नियन्त्रण द्वारा हो सकता है। इसी प्रकार यदि रेलवे कम्पनियों को एकाधिकार मिल जाय तो भी वह जनता से मनमाना भाड़ा लेकर उसको उचित सुविधाएँ न देकर देश को हानि पहुँचा सकती हैं। इसलिए प्रतिस्पर्धा तथा एकाधिकार दोनों के दोषों को दूर करने के लिए राज्य नियन्त्रण ही एक सरल उपाय है। राज्य नियन्त्रण से न तो रेलवे कम्पनियां मनमाना भाड़ा ले सकती हैं न यात्रियों को अधिक असुविधाएँ दे सकती हैं और न रेलों में लगी हुई पूँजी का शीघ्र ही नष्ट होना सम्भव है। इस प्रकार रेलों का राज्य-नियन्त्रण देश के हित में ही होता है।

Q. 11. Competition leads to railway combination. Discuss. Trace the effects of such combinations on the general public. (1950).

Q. 12. Explain the causes which bring about the combination of different railway companies and outline the main features of the principal forms which combination assume. (A. U. 1944).

प्रत्येक उद्योग की भाँति रेल उद्योग में प्रतिस्पर्धा अत्यधिक होने पर रेल कम्पनियों को हानि होने लगती है, वास्तव में रेल उद्योग तो एक ऐसा उद्योग है कि इसमें प्रतिस्पर्धा होना ही मुश्किल है, एक रेलवे लाइन के पास समानान्तर दूसरी रेल लाइन यथासम्भव बनाई ही नहीं जायगी।

क्योंकि अति अधिक परिमाण में पूँजी लगने के कारण लोग निकट समानान्तर लाइन डालने में हिचकेंगे, इसके विपरीत दूसरा कारखाना पहिले कारखाने के पास खोला जा सकता है, और इससे दोनों को लाभ भी हो सकता है, पर दो निकट समानान्तर रेलवे लाइनों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि साधारण उद्योगों का उत्पादन क्षेत्र तो सीमित होता है, पर उनके लिए बाजार विस्तृत व असीमित। रेल उद्योग में यातायात की सेवा की पूर्ति व माँग प्रायः एक सीमित क्षेत्र में ही होती है। उदाहरण के लिए कानपुर में एक शक्कर मिल के स्थान पर दो चीनी की मिलें हो जायँ तो एक अपनी चीनी दिल्ली व दूसरी इलाहाबाद भेज सकती हैं, परन्तु मान लीजिये कि एक रेल मार्ग दिल्ली और कानपुर को मिलाता है, और दूसरा रेल मार्ग भी ठीक इसी के समानान्तर और पास ही बना दिया जाय तो इस दूसरे रेल-मार्ग से इलाहाबाद वालों की यातायात की माँग पूरी नहीं हो सकती, इसमें तो दिल्ली तथा कानपुर के बीच केवल उसी मार्ग के आस-पास रहने वाले व्यक्ति लाभ उठा सकेंगे, इस प्रकार रेल की ऐसी प्रतिस्पर्धा तो बिलकुल ही अभीष्ट नहीं है। हाँ, ऐसा हो सकता है कि एक रेलमार्ग दिल्ली व कानपुर को सीधा मिलाये व दूसरा दिल्ली आगरा व झाँसी होता हुआ मिलाए, तो इन रेल मार्गों के क्षेत्र विभिन्न हो जायँगे, अतः उपर्युक्त प्रकार की प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकती, हाँ, यह हो सकता है कि प्रत्येक कम्पनी माल व यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करे उनमें भाड़ा युद्ध प्रारम्भ हो जाय अथवा सुविधाएँ देने में होड़ हो जाय तो दोनों कम्पनियों को हानि उठानी पड़ेगी, क्योंकि भाड़ा कम करते-करते, आय उत्पादन व्यय से बहुत कम हो सकती है अथवा अधिक सुविधाएँ देने से व्यय आय से बहुत बढ़ सकता है, दोनों दशाओं में कम्पनियों को आर्थिक हानि सहनी पड़ेगी, जो बहुत समय तक नहीं सही जा सकती। अन्त में इन दोनों कम्पनियों को आपस में भाड़ा व सुविधाओं के बारे में समझौता करना पड़ेगा। रेलवे में लगी हुई पूँजी कहीं अन्यत्र नहीं लगाई जा सकती, इसलिए लगी हुई पूँजी से उचित लाभ उठाने के लिए विभिन्न कम्पनियों को समझौता, सम्मेलन व सहयोग द्वारा प्रतिस्पर्धा समाप्त करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। यही नहीं यदि अथवों को यातायात के दूसरे साधनों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़े तो भी कुछ लागत; पश्चात रेलवे कम्पनी को समझौता करने के लिये बाध्य होना पड़ेगा क्योंकि रेलवे कम्पनी मैदान छोड़ कर भाग नहीं सकती, जो अन्य साधनों के लिए सम्भव ही नहीं वरन् सुगम है। रेलवे कम्पनियां निम्नलिखित बातों के लिए विभिन्न प्रकार से समझौता कर सकती हैं :—

भी

(१) साधारण समझौता—क्षेत्र का बटवारा, एक से भाड़ा दर का निर्धारण, मिल कर कार्य करना, आमदनी आपस में बाँट लेना, एक जैसी नियमावली रखना आदि।

(२) विशेष समझौता—एक कम्पनी अपनी रेल को दूसरी कम्पनी को पट्टे पर अथवा और किसी आधार पर दे दे और उसके बदले में कुछ निश्चित धनराशि लेती रहे।

(३) पूर्ण समझौता—इसमें सब कम्पनियाँ मिलकर एक कम्पनी के रूप में परिणत हो जाती हैं।

रेलवे कम्पनियों में सहयोग (Combinations among Railway Companies)

सहयोग तथा प्रतिस्पर्धा की भावनाएँ वैसे तो विरोधात्मक हैं, परन्तु वर्तमान औद्योगिक संगठन के अन्तर्गत यह एक विचित्र बात है, कि अधिकांश परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धा सहयोग का कारण बन जाती है। जब कुछ उद्योगपतियों में कटु प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो जाती है, जिसे गलाघोंट प्रतिस्पर्धा कहते हैं, जिसके कारण उद्योगपतियों को एक दूसरे को क्षेत्र से भगाने के लिए अपनी वस्तुओं की कीमत लागत व्यय से भी कम करके हानि उठानी पड़ती है। हानि सहन की सीमा होती है और जब हानि सहन शक्ति से अधिक हो जाती है तो प्रतिस्पर्धी उद्योगपति प्रतिस्पर्धात्मक भावनाओं को दूर करने का प्रयत्न करने लगते हैं और पारस्परिक सहयोग प्राप्त करने के मार्ग खोजने लगते हैं। चूँकि ये उद्योगपति अपने लाभ हेतु ऐसा करते हैं इसलिए कोई न कोई मार्ग मिल ही जाता है और कुछ ही समय में सहयोग स्थापित हो जाता है। यही बात रेल उद्योग में भी लागू है। पहिले तो विभिन्न रेलवे कम्पनियों में प्रतिस्पर्धा बहुत कम होती है क्योंकि रेलवे कम्पनियाँ कानून द्वारा स्थापित की जाती हैं और अधिकारी यथासम्भव ऐसी ही व्यवस्था रखते हैं जिससे इन कम्पनियों में प्रतिस्पध न होने पावे। फिर भी किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में विभिन्न रेलवे कम्पनियों में प्रतिस्पर्धा हो सकती है। यह प्रतिस्पर्धा अधिक से अधिक ट्रैफिक प्राप्त करने की होती है, अधिकतम ट्रैफिक आकर्षण हेतु विशेष सुविधायें देना तथा भाड़ा दर कम करना, ये ही दो मार्ग हैं। यदि विशेष सुविधाएँ देने में ही प्रतिस्पर्धा हो जाय तो प्रत्येक कम्पनी यात्रियों एवं व्यापारियों को सुविधा देने में दूसरी कम्पनी से होड़ करेगी। इसके फलस्वरूप लागत व्यय बढ़ता जायगा और हर कम्पनी को आर्थिक हानि होने लगेगी। यदि इस प्रतिस्पर्धा ने भाड़ा कम करने का रूप ग्रहण कर लिया तो विभिन्न कम्पनियाँ कम से कम भाड़ा लेने पर उतारू हो जायँगी और प्रतिस्पर्धा में एक कम्पनी दूसरी की अपेक्षा भाड़ा दर कम रखने का सतत् प्रयत्न करती रहेगी। इस प्रतिस्पर्धात्मक दौड़ में सब कम्पनियों की आय कम होती चली जायगी। आर्थिक हानि बढ़ती जायगी। इस प्रकार दोनों मार्गों से प्रतिस्पर्धा में भाग लेने वाली कंपनी को हानि ही उठानी पड़ेगी। रेलवे उद्योग में लगी हुई पूँजी किसी दूसरे उद्योग में नहीं लगाई जा सकती। इसलिए कोई भी रेलवे कंपनी रेलवे उद्योग को सदैव के लिए या बहुत दिनों को न तो हानि पर चला सकती है न बन्द कर सकती है। इसलिए विवश होकर रेलवे कम्पनियों को आपस में सहयोग करने को विवश होना पड़ेगा, इसके अतिरिक्त प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों में रेलों को और भी विभिन्न व्यय करने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए वे चुंगी टैक्स आदि स्वयं वहन करने का निर्णय कर सकती हैं। ऐसा करने में भी उनका व्यय बढ़ जायगा। ट्रैफिक आकर्षण करने को उन्हें प्रचार आदि पर अधिक से अधिक व्यय करना पड़ेगा। इस प्रकार भी उन्हें आर्थिक हानि उठाने के कारण सहयोग के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, सहयोग से बहुत सी आर्थिक

बचत व लाभ होने की भी संभावना है। उनसे प्रभावित होकर भी रेलवे कम्पनियाँ सहयोग के लिए प्रोत्साहित हो सकती हैं। उदाहरण के लिए यदि २, ३ रेलवे कम्पनियाँ मिल जायँ तो मरम्मत के कारखानों पर, प्रधान कार्यालय पर, प्रधान कर्मचारियों आदि पर व्यय बहुत कम हो जायगा। इस प्रकार प्रतिस्पर्धा से आर्थिक हानि बचाने के लिए तथा संगठन से आर्थिक बचत के लाभ पाने के लिये रेलवे कम्पनियों को पारस्परिक सहयोग प्राप्त करना वांछित ही होता है।

एकाकी प्रबन्ध—विभिन्न रेलवे कम्पनियों के मध्य संगठन, सहयोग अथवा एकीकरण विभिन्न प्रकार से हो सकता है। साधारण तौर पर इस भाँति का सहयोग-संगठन दो प्रकार का होता है। प्रथम, विभिन्न कम्पनियाँ एक संगठन में सम्मिलित होने के लिए सहमत हो जाती हैं।

पृथक प्रबन्ध—दूसरा, विभिन्न कम्पनियाँ अपना-अपना प्रबन्ध पृथक रखती हैं।

निम्नलिखित परिस्थितियों में रेलवे कम्पनियाँ एकाकी प्रबन्ध रखती हैं:—

(१) विभिन्न कम्पनियाँ अपनी रेलवे लाइनों को एक ही लाइन समझ लेती हैं। वे एक दूसरी की पूरक बन जाती हैं।

(२) रेलवे कम्पनियाँ आपस में बिल्कुल संगठित हो जाती हैं।

(३) एक बड़ी कम्पनी छोटी-छोटी कम्पनियों को मोल ले लेती हैं।

(४) कम्पनियाँ अलग-अलग बनी रहती हैं, पर प्रशासन सम्बन्धी कार्यों में वे अपना एक संगठन कर लेती हैं। पूँजी आदि का हिसाब अलग-अलग रखती हैं।

(५) छोटी-छोटी कम्पनियाँ अपनी लाइन को बड़ी कम्पनी को पट्टे पर दे देती हैं।

(६) एक अधिक शक्तिशाली कम्पनी और कम्पनियों का प्रबन्ध अपने ऊपर ले लेती है और बदले में आय में से कुछ भाग उन कम्पनियों को दे देती है।

निम्नलिखित परिस्थितियों में विभिन्न कम्पनियाँ अपना-अपना प्रबन्ध अलग रखती हैं।

(१) प्रतिस्पर्धा की सीमा कम करने के विचार से कम्पनियों के अधिकारी विचार-विनिमय द्वारा प्रतिस्पर्धात्मक समस्याओं का हल निकाल लेते हैं।

(२) कम्पनियों से प्राप्त आय इकट्ठी करके आपस में किसी आधार पर विभाजित कर लेते हैं।

(३) प्रतिस्पर्द्धा कम करने के लिये क्षेत्र का विभाजन कर लेते हैं।

(४) थ्रू ट्रैफिक की सुविधा प्राप्ति के लिए आपस में समझौता कर लेते हैं जिसके अनुसार एक कम्पनी अपनी गाड़ियों को दूसरी कम्पनी के मार्ग पर चला सकती है। अथवा एक रेलवे क्लियरिंग हाउस का निर्माण किया जा सकता है।

इस प्रकार के सहयोगी संगठन से उन कम्पनियों को हानि होती है जो इस संगठन में सम्मिलित नहीं होतीं। यद्यपि कानून द्वारा इस प्रकार की कम्पनियों की रक्षा की जाती है। प्रत्येक देश में रेलवे कम्पनियाँ देश के कानून के अनुसार ही ऐसा संगठन स्थापित कर सकती हैं। जब तक उन्हें सरकार द्वारा स्वीकृति न मिल जाय तब तक इस प्रकार के संगठन अवैध ही रहते हैं।

इस प्रकार के संगठनों का साधारण जनता पर आर्थिक दृष्टि से अच्छा प्रभाव पड़ता है। जनता को अच्छी प्रकार की गाड़ियाँ डिब्बे प्रयोग के लिए मिल जाते हैं।

भाड़ा-दर में समानता आ जाती है। एक स्थान से दूसरे स्थान को आने-जाने में अथवा सामान भेजने में परिवर्तन करने की कठिनाई मिट जाती है। एक से अधिक कम्पनियों से बातचीत करने या सम्बन्ध स्थापित करने की कठिनता भी दूर हो जाती है। प्रत्येक सम्बन्धित कंपनी के स्टेशन, मालगोदाम अन्य कार्यालय इत्यादि जनता के प्रयोग में अतिरिक्त व्यय के बिना आने लगते हैं। भाड़ा दर में कमी कराने में आसानी होती है। एक कंपनी का टिकिट दूसरी कंपनी की लाइन पर भी प्रयोग में लाया जा सकता है।

यदि कम्पनियों के ये संगठन केवल स्वार्थवश हों तो सम्भव है कि साधारण जनता को कुछ हानि भी हो जाय, उदाहरणार्थ विभिन्न कम्पनियों के संगठन से उन कम्पनियों का यातायात पर एक प्रकार का एकाधिकार हो जायगा, जिससे व्यापारी लोग एक कंपनी के विरुद्ध दूसरी कंपनी से भाड़ा दर में किसी प्रकार की रियायत नहीं पा सकते, उन्हें वही भाड़ा देना पड़ेगा जो कि संगठन ने निश्चित कर लिया है। फिर भी प्राय: इस प्रकार के संगठनों से जनता को लाभ ही हुआ है। विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में जहाँ यातायात के अन्य साधन भी उपस्थित हैं।

Q. 13. In transportation competition tends to give way to controlled monopoly." Examine this statement in connection with railway road and sea transport. (A. U. 1945.)

'यातायात में प्रतिस्पर्धा नियन्त्रित एकाधिकार स्थापित करती है' उपर्युक्त कथन सत्य है। वास्तव में प्रत्येक वस्तु का आधिक्य उसके विघटन का कारण बन जाता है, एक तालाब में एकत्रित जल, जब पूरा भर जाता है, तब वह इधर-उधर फैलने लगता है, बांध टूट जाते हैं और वे 'अबांध' हो जाते हैं, प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है, जब वह अपनी सीमा से पार हो जाती है, जब मर्यादा का उल्लंघन होने लगता है, तब वस्तुएँ नाशोन्मुख हो जाती हैं, जो बात किसी वस्तु के लिए है वह प्रत्येक तत्व के लिए भी सत्य है। यही बात उपर्युक्त कथन के बारे में भी है। अति प्रतिस्पर्धा सब जगह अपने को नाश करती है, प्रतिस्पर्धा के स्थान पर एकाधिकार स्थापित हो जाता है, अधिकांश स्थानों में प्रतिस्पर्धा प्रतिस्पर्धा करने वाले कुछ व्यक्तियों अथवा कुछ संस्थाओं को क्षेत्र से निकाल देती है, जिससे सारा क्षेत्र बचे हुओं के हाथ में रह जाता है और वे मिलकर एक प्रकार का एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं। उत्पादन के क्षेत्र में, उदाहरण के लिए, यदि उत्पादकों में घोर प्रतिस्पर्धा हो जावे, तो वे अपनी उत्पादित वस्तुओं के भाव गिराने लगते हैं और एक दूसरे को क्षेत्र से भगा देने के लिए गलाघोंट प्रतिस्पर्धा करने लगते हैं, जिसके फलस्वरूप अकुशल, पूँजीहीन, एवं कमजोर उत्पादक तो इस क्षेत्र से हटकर दूसरी वस्तुओं का उत्पादन करने लगते हैं, शेष उत्पादक आपस में समझौता कर लेते हैं, यदि इन उत्पादकों की संख्या थोड़ी ही हुई तो वे मिलकर एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं और यदि संख्या काफी हुई तो ऐसा समझौता तो कर ही लेते हैं कि जिससे कीमतें अधिक न गिरा सकें।

यातायात में प्रतिस्पर्धा करने वालों की संख्या थोड़ी होती है, अत: उन्हें समझौता करने में सरलता होती है, एक मार्ग पर पाँच, दस व्यक्ति ही मोटर चलाते हैं। यदि वे भाड़े में प्रतिस्पर्धा करने लगें तो सब को हानि होगी, जो अधिक दिनों तक नहीं सही जा सकती और सब मोटर मालिक मिलकर अपनी यूनियन बना लेते हैं, जिसका उस मार्ग पर एकाधिकार हो जाता है। ये संगठन मोटर यातायात सेवा

प्रदान करने में एक प्रकार का एकाधिकार स्थापित कर लेते हैं, और किराया, भाड़ा, तथा अन्य सुविधाएँ अपनी इच्छानुसार नियत कर लेते हैं, पर ये सब कार्य उन्हें क्षेत्रीय यातायात अधिकारी की स्वीकृति के अनुसार करने पड़ते हैं अतः मोटर मालिकों के संगठन जनता का शोषण नहीं कर सकते, और न आजकल के वातावरण में इस प्रकार के संगठन बहुत समय तक सफल हो सकते हैं क्योंकि मनमानी करने से सरकार के नियन्त्रण, जनता में असन्तोष तथा आपसी फूट का डर रहता है अतः वे संगठन पूर्ण रूप से एकाधिकारी नहीं हो सकते, इनको नियन्त्रित एकाधिकारी कहा जा सकता है। मोटर यातायात में एकाधिकार की समस्या राष्ट्रीय-करण के कारण और भी जटिल हो गई है। बहुत सी सड़कों पर राज्य स्वयं अपनी मोटरें चलाने लगे हैं और उनको एक प्रकार का एकाधिकार प्राप्त हो गया है, पर जनतंत्रीय सरकारें इस एकाधिकार का दुरुपयोग नहीं कर सकती। अनुभव से भी देखा गया है कि सरकारी मोटरों के चलने से जनता की बहुत सी असुविधाएँ दूर हो गई हैं। हाँ, भीड़ की समस्या अभी तक हल नहीं हो पाई है तथा बस स्टैण्ड व बस स्टाप के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर यात्रियों को स्थान न मिलने के कारण कुछ कठिनाई का सामना करना पड़ता है पर यह प्रशासनात्मक असुविधा हैं जो अधिकारियों द्वारा दूर की जा सकती है, आवश्यकतानुसार इस असुविधा को दूर करने के लिये, अतिरिक्त गाड़ियाँ चलाई जा सकती हैं। जहाँ तक सामान ढोने वाले ट्रकों का सम्बन्ध है विभिन्न कम्पनियों को लाइसेन्स दिये जाते हैं, जो आपसी समझौते के अन्तर्गत कार्य करती हैं, इनमें न तो बहुत दिनों तक गलाघोंट प्रतिस्पर्धा चल सकती है और न ये शोषक एकाधिकार प्राप्त कर सकती हैं। ये कम्पनियाँ प्रायः क्षेत्र तथा व्यापारियों का आपस में बँटवारा कर लेती हैं। फिर भी इन कम्पनियों में एकाधिकार की अपेक्षा प्रतिस्पर्धा की भावना ही अधिक होती है। पर यह अधिक प्रबल नहीं हो पाती।

समुद्रीय यातायात में भी यही बात सत्य है कि प्रतिस्पर्धा के पश्चात् एकाधिकारी अवस्था आ जाती है। जब विभिन्न जहाजी कम्पनियों में आपस में प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक हो जाती है कि उन्हें किराया व भाड़ा लागत व्यय से भी कम करना पड़े तो उन्हें हानि सहनी पड़ती है और बाद में कुछ कम्पनियाँ मिलकर एक समझौता कर लेती हैं, वे एक निश्चय के अनुसार किराया व भाड़ा लेने लगती हैं, पर समझौते के पश्चात् ये कम्पनियाँ बहुत अधिक भाड़ा दर नहीं ले सकतीं क्योंकि ऐसा करने से समझौते से बाहर की कम्पनियाँ इस अवसर से लाभ उठाकर सारा ट्रैफिक अपनी ओर खींच सकती हैं, जिससे समझौते वाली कम्पनियों को बेकारी का सामना करना पड़ सकता है और बाद में सरकार द्वारा नियन्त्रण भी लागू हो सकता है अतः आजकल के वातावरण में समुद्रीय यातायात में भी एकाधिकार की असुविधाएँ नहीं आ सकतीं।

रेलवे यातायात के सम्बन्ध में एकाधिकार का प्रश्न, सड़क तथा समुद्रीय यातायात के एकाधिकार से भिन्न है। रेल यातायात में एकाधिकार सरलता से स्थापित किया जा सकता है। वास्तव में जब कोई कम्पनी किसी क्षेत्र में रेलवे लाइन बिछाती है तो प्रथम ही उसे एक प्रकार का एकाधिकार प्राप्त होता है क्योंकि उस क्षेत्र में विशेषकर किन्हीं दो स्थानों को मिलाने के लिए समीपवर्ती दो रेलवे लाइनें नहीं बिछाई जा सकतीं। रेलवे लाइन के निर्माण तथा इसके संचालन में इतना अधिक व्यय होता है कि मोटर लारियों अथवा जहाजों की भाँति एक ही मार्ग से बहुत सी कम्पनियाँ अपनी

रेलें नहीं चला सकतीं, प्रत्येक कम्पनी को अपनी निजी रेलवे लाइन बनानी पड़ेगी, जिसका व्यय इतना अधिक होता है कि यह बहुत सी कम्पनियों की शक्ति के बाहर है। अतः स्वभाव से ही रेलवे यातायात एक एकाधिकारी उद्योग है, फिर भी किन्हीं दो व्यापारिक अथवा औद्योगिक केन्द्रों को विभिन्न मार्गों द्वारा दो रेलवे लाइन सम्बन्धित कर सकती हैं और इनमें प्रतिस्पर्धा हो सकती है पर प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप कोई भी रेलवे कम्पनी क्षेत्र से भाग नहीं सकती, एक मोटर वाला अपनी लारी दूसरी सड़क पर चला सकता है, पर रेलवे कम्पनी अपनी रेलवे लाइन को दूसरी जगह नहीं ले जा सकती। अतः इनमें प्रतिस्पर्धा कुछ ही दिन चलेगी और बाद में समझौता हो जायगा और दोनों मिलकर एकाधिकारी की दशा स्थापित कर सकती हैं, पर सरकारी नियन्त्रण तथा मोटर लारियों से प्रतिस्पर्धा का डर रहता है जिससे रेलवे कम्पनियाँ एकाधिकार का दुरुपयोग नहीं कर सकतीं। वास्तव में आजकल एक रेलवे कम्पनी को थोड़ी दूर के यातायात के लिए सड़क यातायात से प्रतिस्पर्धा का डर है, धनी तथा अधिक दूर जाने वाले यात्रियों के लिए कारों अथवा वायु यातायात का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है, इधर रेलों का राष्ट्रीयकरण हो जाने से वे एकाधिकारी परिस्थितियों का दुरुपयोग नहीं कर सकतीं। और यदि सड़क, वायु तथा रेल एवं जलमार्ग में आपस में प्रतिस्पर्धा होने लगे तो यह स्थिति बहुत दिनों तक सहन नहीं की जा सकती ये सब स्वयँ अथवा सरकार इस प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने का प्रयत्न करेगी न कि एकाधिकार स्थापित करने का।

अतः वर्तमान वातावरण में यह कथन कि यातायात के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा नियन्त्रित एकाधिकार की जननी बन जाती है, इतना सत्य नहीं प्रतीत होता जितना यह कथन कि यातायात के क्षेत्र में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, सहयोग तथा समन्वय (co-ordination) को जन्म देती है वास्तविकता को संकेत करता है।

CHAPTER IV

RATES AND FARES.

The theory of railway rates involves three main proporsitions. The first is that the motive to discriminate in the sense of charging less-than-cost rates is to be found in the large mass of constant expenses. If all expenses were variable there would be no-less-than-cost-rates. The second is that discriminating rates would not continue under real competition, and that therefore an element of monopoly or absence of real competition is further essential in the explanation of discriminating rates. It is essential to note that although discriminating railway rates would not exist under real competition, the presence of monopoly is not a sufficient explanation of discriminating rates, since in the absence of overhead costs there would be no downward discrimination in rates, although there might be discrimination upward. The third proposition is that even under monopoly conditions and in the presence of overhead costs discrimination could not be practised if the demand prices for different transport services were not independent of the price at which other transport services are sold.

Discriminatory rates are based on the demand for the service rather than on the cost of the service. The term 'value of service is sometimes used in the sense of the highest charge that can be levied without diverting traffic to some other trsnsportation agency. The value of service determines the maximum rates that can be charged for the service of transport. There is an intimate relation between value of service and value of commodity. Valuable articles are quite generally charged higher transportation rates than less valuable commodities.

The value of the service sets the upper limit beyond which the traffic will not move. Prime or variable costs, on the other hand, fix the lower limit below which the rate must not fall. But, where between the upper and lower limits, will the rate be fixed ! The answer is summed up in the phrase "charging what the traffic will bear," which may also be mentioned as "not charging what the traffic will not bear." This generally results in price discrimination, which may be locational discrimination, personal discrimination, class discrimination.

The different systems of charging are Flat or Equal Mileage charging, Tapering charges, Zone system of charging.

The practice of charging what the traffic will bear also leads to monopoly profits. By exacting the most profitable rate from each class of traffic, the railroad may secure large profits and absorb an unnecessarily large share of the social income.

Cost of service (cost incurred by the railway undertakings in providing the service, the cost of operating a railway) can be divided into (1) Fixed charges, (2) interest on capital (3) out of pocket expenses and value of service. (It lays emphasis on the demand side). It seeks to base the charges on the value of service rendered by the railways. The ability to pay has to be taken into consideration. There are three important principles determining the railway rates.

Rates of goods traffic.

There has always been a tendency on the part of Indian railways to increase rates from time to time. There has been many a times a general lift in the level of charges to ensure increased earnings to cope with the mounting operating costs. These rates generally fall into 3 catagories. I—One, standard telescopic class rates—under this system all commodities have been divided into 15 classes and the basis of the calculation of rate is telescopic that is declining with increasing distance.

II—Standard telescopic wagon load scale rates—These rates are quoted when the traffic is moved in wagon loads. They are applicable to certain commodities moving in bulk and they are lower than the standard telescopic class rates. III—Station to Station rate—which is a special rate for the total distance between two specific points. For commodities, like coal, coke and patent fuel separate rates have been introduced. Inspite of the efforts made by the Govt. to simplify and rationalise the pate rates, the trading community is not satisfied yet and it still presses for further simplification and rationalization. There is a keen demand now for the establishment of a central rate fixing authority, whether the demand is met or not one thing should be clear that the charges should be just enough to attract the maximum amount of traffic, without introducing unjustifiable discrimination between different classes of customers.

Railway Rates and Fares in India.

In the beginning Indian railways depended almost entirely on goods traffic for their income. The rates however were fixed to facilitate the movement of the countries raw produce to the port. In 1862 the Govt. decided to approve a scale of maximum rates rather than to fix the actual rates and fares. But the principle of fixing maximum *rates* was adopted in the year 1865 on the Bombay line. The Railway companies *enhanced* the charges without increasing facilities. Therefore efforts were again made for the fixation of maximum rates by the local Govt. In 1899 the Secretary of State insisted on the enhancement of the maxima for the Madras Railway and increased the rates on the Audh and Rohelkhand Railway. Railway rates and fares during the years 1869—1882, were enhanced. In the year 1823—74 lump sum station to station fares, rates and fares irrespective of distance were introduced on state lines. But they were withdrawn within two years

and mileage rates were introduced. In 1883 the principle of cost of service and charging what the traffic will bear were accepted in general to determine the minimum and maximum limit of railway charges. In the year 1887 a new schedule of maxima and minima mileage rates and fares was laid down. From 1901 the railways became a paying concern. In the year 1916 there was a general enhancement of rates and fares with the concurrence of the Railway Board. Uptil now the railway rates policy was designed to facilitate the export of raw materials and imports of finished merchandise.

During the I World War the rates and fares were increased to meet the high expenses and a surcharge of one pie per maund for coal and two pies for other goods were imposed from April 1917. During all these periods there was no uniformity in the rates policy and classification on different railway systems. After the first world war the Govt. of India had to revise the maximum rates and classification and by the year 1922 the increases in the rates varied from 15 to 25 per cent. In the year 1923 the maxima of the passenger fare was increased. In 1924 upper class fares were reduced while III class fares remained at the same level. During the period 1930—39 traffic receipts declined due to the depression, but the operating expenses continued to increase, and the charges had to be increased to meet the expenses. By the end of 1930 rates and fares were increased by all the Railway lines. After the year 1934 the receipts increase for the first time and the concessional rates were quoted by many railway companies. The classification of goods was also revised in the year 1936.

Railway rates policy during 1940—47 was more or less influenced by the conditions of the II world war. Specially to increase the railway contribution to the central revenue the Govt. of India raised the rates and fares with effect from 1st March 1940, and the increment varied from 12 to 20 per cent for goods and 1 anna per rupee for passengers.

The rating system of Indian railways is very complicated, Efforts have been made from time to time to simplify it. There were complaints against the multiplicity of schedule and exceptional class rates, the application of discontinuous mileage system and the wide margin between owner's risk and railway risk rates In 1944, the Indian Railways Conference Association decided to conduct an investigation for the simplification and standardisation of the railway rating structure. This investigation was complete in 1947. By the middle of 1948, the Post war Rating Advisory Committee finished its work and produced a complete set of telescopic class rates and wagon schedule rates. After the approval by the cabinet, the new rate structure became applicable from 1st October 1948. There was a general lift in the level of charges to ensure increased earnings to cope with rising working expenses. The rates fell into three catagories (1) Standard Telescopic class rates—under this all commodities have been divided into 15 classes. (2) Standard Telescopic Wagon load scale rates—which are quoted only when

traffic is moved in wagon loads. They are applicable to certain commodities only. (3) A station to station rate—a special rate for the total distance between two specific points. The change has resulted in ensuring rating accuracy and reliability in rate quotations. Rate registers are now maintained. The most important new change has been the adoption of telescopic basis of rates on continuous mileage both for class and wagon schedule rates.

Important changes have been introduced in passenger fares also. There had been a general complaint against the preference given to First and Second class Traffic. A number of changes were made from time to time in the classification of passengers with the ultimate result that now we have a uniform three points classification—I, II and III. It is intended to abolish first class altogether gradually. There has been, however, a general increase in fares for all classes.

Q. 14. Explain the 'Cost of Service' and the 'Value of Service' principles. Which of the two in your opinion, is the more equitable and practicable in fixing railway freights? (A. U. 1943, 1952).

Q. 15. Comment on the statement—

'The cost of service principle' and the 'value of service principle' are both equally necessary for the complete problem of the determination of prices of railway services. (A. U. 1949).

रेल भाड़ा सिद्धान्त के बारे में यदि यह कहा जाय कि यह मूल्य के साधारण नियम का ही विशेषीकरण है तो इसमें किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। रेल भाड़ा से तात्पर्य है रेल द्वारा यातायात की सेवा का मूल्य, अतः रेल भाड़ा सिद्धान्त, रेल सेवा मूल्य सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त इस बात का अध्ययन करता है कि रेल यातायात जनता को जो सेवा प्रदान करती है उसका मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जाय। रेलवे कम्पनियाँ जनता से भाड़ा किस प्रकार लें। रेल कम्पनी रेलों को चलाकर समाज को यातायात की सेवा प्रदान करती हैं, इस सेवा के प्रदान करने में रेलों को चलाने में कम्पनी को काफी व्यय करना पड़ता है, अर्थात् रेल सेवा की पूर्ति करने में व्यय होता है इसी को हम इस प्रकार से कह सकते हैं कि रेल सेवा उत्पादन करने में कम्पनी को कुछ व्यय करना पड़ता है यही रेल यातायात का पूर्ति पक्ष है जिसका उत्पादन व्यय होता है। जिस प्रकार कोई भी उत्पादक अपनी वस्तु का मूल्य उत्पादन व्यय से कम नहीं ले सकता, क्योंकि ऐसा करने से उसे हानि होगी, इसी प्रकार रेल-सेवा-उत्पादक कोई भी रेल कम्पनी अपनी रेल-सेवा का मूल्य उत्पादन व्यय से कम नहीं ले सकती यही निर्णय उत्पादन-व्यय सिद्धान्त (cost of service principle) के नाम से विख्यात है।

जिस प्रकार किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण में पूर्ति पक्ष के साथ ही साथ माँग पक्ष का भी हाथ रहता है, इसी प्रकार रेल-सेवा-मूल्य-निर्धारण में भी माँग पक्ष का हाथ रहता है। माँग पक्ष वस्तु के खरीदने वालों से बनता है। रेल-सेवा, जनता के लोग विशेष कर यात्री तथा व्यापारी वर्ग द्वारा खरीदी जाती है अतः ये ही वर्ग रेल-सेवा की माँग पक्ष को बनाते हैं। साधारण मूल्य निर्धारण सिद्धान्त के अनुसार माँग पक्ष द्वारा वस्तु की उपयोगिता के आधार पर वस्तु का मूल्यांकन किया जाता

है। यही बात रेल-सेवा मूल्य निर्धारण में भी है, रेल-सेवा क्रेता अथवा उपभोक्ता रेल-सेवा की उपयोगिता आंक लेते हैं और वे उस उपयोगिता से अधिक मूल्य देने को साधारण परिस्थितियों में तैयार नहीं होते क्योंकि वे अधिक-से-अधिक रेल-सेवा की उपयोगिता के बराबर ही मूल्य दे सकते हैं। यही सेवा मूल्य सिद्धान्त (value of service principle) कहलाता है अतः यह न कहकर कि रेल भाड़ा निर्धारण पूर्ति तथा माँग पक्षों के द्वारा किया जाता है अर्थशास्त्री यही कहते हैं कि रेल भाड़ा निर्धारण सेवा उत्पादन व्यय (cost of sevrvice) तथा सेवा-मूल्य (value of service) सिद्धान्तों के द्वारा किया जाता है। जहाँ तक मूल्य निर्धारण तथा भाड़ा निर्धारण के सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, दोनों प्रायः एक ही हैं, यद्यपि इन सिद्धान्तों के आधारों के नाम भिन्न हैं। साधारण वस्तु के मूल्य निर्धारण सिद्धान्त के आधार पूर्ति और माँग हैं। रेल भाड़ा निर्धारण सिद्धान्त के आधार सेवा-उत्पादन-व्यय तथा सेवा-मूल्य हैं। परन्तु ये सिद्धान्त जिन परिस्थितियों में लागू किये जाते हैं वे सर्वथा भिन्न हैं। सर्व प्रथम वस्तु मूल्य निर्धारण में पूर्ति तथा माँग पक्ष पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों में मूल्य को प्रभावित करते हैं, इसके लिए इन परिस्थितियों का अभाव अपवाद के रूप में होता है, पर रेल-भाड़ा-निर्धारण करने में सेवा-उत्पादन-व्यय तथा सेवा-मूल्य-सिद्धान्त प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों के अभाव में ही लागू होते हैं क्योंकि प्रत्येक रेल कम्पनी को सेवा प्रदान करने में कुछ एकाधिकार प्राप्त होता है। द्वितीय, अधिकांश वस्तुओं का उत्पादन समान तथा साधारण परिस्थितियों में होता है अतः उनका उत्पादन व्यय मालूम करना सरल होता है। रेल सेवा की पूर्ति असमान तथा जटिल परिस्थितियों में होती है इससे किसी एक यात्री अथवा एक वस्तु को प्रदान की हुई रेल सेवा का उत्पादन व्यय का ठीक-ठीक अनुमान लगाना प्रायः कठिन होता है। तृतीय, साधारण वस्तु का उत्पादक पूर्ण प्रतिस्पर्धा के कारण माँग पक्ष से अपनी वस्तु का एक ही मूल्य प्राप्त कर सकता है, परन्तु एक रेल कम्पनी एकाधिकारी होने के कारण अपने माँग पक्ष से भिन्न-भिन्न भाड़ा प्राप्त कर सकती है क्योंकि इसी में उसे अधिक से अधिक लाभ होता है।

इन विभिन्नताओं के होते हुए भी, जिस प्रकार एक उत्पादक अपनी वस्तु का मूल्य निर्धारण करने में पूर्ति व माँग दोनों पक्ष का ख्याल रखता है इसी प्रकार एक रेलवे कम्पनी को भी सेवा उत्पादन व्यय तथा सेवा मूल्य दोनों सिद्धान्तों का ध्यान रखना पड़ता है। किसी एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि कोई भी रेलवे कम्पनी उत्पादन व्यय से कम भाड़ा नहीं ले सकती; क्योंकि ऐसा करने से कम्पनी को हानि होगी और बहुत समय तक इस प्रकार की हानि नहीं सही जा सकती। मान लीजिये एक रेलवे कम्पनी को आगरा से कानपुर तक एक सवारी गाड़ी चलाने का १००० रु० खर्च करना पड़ता है तो आगरा से कानपुर तक जाने वाले यात्रियों के सब मिला कर ४०० रु० तो देने ही चाहिए इसके अतिरिक्त कुछ रुपया और भी देना चाहिए जो कम्पनी को खर्च करना पड़ता है चाहे वह सवारी गाड़ी चले या न चले। मान लीजिये इस प्रकार का खर्च १५००रु० पड़ता है इस प्रकार कुल व्यय २५०० रु० हुए। अतः सेवा उत्पादन व्यय के आधार पर इन सवारी गाड़ी में चलने वाले यात्रियों से २५०० रु० वसूल कर लिये जाने चाहिए। यदि कम्पनी लाभ प्राप्त करना चाहे तो अधिक रुपया वसूल कर सकती है, वरना कम से कम २५०० रु० तो वसूल करना ही चाहिए और मान लीजिये कि कम्पनी ने ५ रु० प्रति यात्री भाड़ा निर्धारित कर लिया और उसे ५०० यात्री मिल गये

है। पर इसमें सेवा मूल्य का कोई ध्यान नहीं रक्खा गया। इन ५०० यात्रियों में से कुछ यात्री ऐसे भी हो सकते हैं जो आगरे से कानपुर तक यात्रा करने के लिए ५ रु० से अधिक दे सकते हैं, यदि उन्हें कुछ सुविधाएँ अधिक दे दी जावें। कुछ ऐसे भी होंगे जिन्होंने ५ रु० बड़ी कठिनाई से दिए। इनके अतिरिक्त कुछ व्यक्ति ऐसे भी हो सकते हैं जो ५ रु० न दे सकने के कारण यात्रा करने से वंचित रह गये। यात्रियों को रेल सेवा की उपयोगिता भिन्न-भिन्न है, किसी को उसकी उपयोगिता १५ रु० के बराबर किसी को १० रु० के बराबर कुछ को ५ रु० के बराबर तथा कुछ को केवल ४ रु० के बराबर। अर्थात् यदि रेलवे कम्पनी चाहे तो कुछ यात्रियों से १५ रु० कुछ से १० रु० कुछ से ५ तथा कुछ से ४ रु० प्राप्त कर सकती है। मान लीजिये कम्पनी ने ये चार शुल्क निर्धारित कर लिये तो हो सकता है कि १५ रु० देने वाले २० यात्री मिल जायँ, १० रु० देने वाले ८० यात्री मिल जायँ शेष ४०० यात्री ५ रु० ही देने वाले रहें परन्तु ४ रु० देकर जाने वाले ६०० यात्री और मिल गये।

नीचे की तालिका उपर्युक्त विवरण को स्पष्ट करती है—

	यात्री	भाड़ा प्रति यात्री रु० में	कम्पनी की आय रु० में
	२०	१५	३००
	८०	१०	८००
	४००	५	२०००
	६००	४	२४००
योग	११००		५५००

उपर्युक्त तालिका से प्रत्यक्ष है कि सेवा मूल्य सिद्धान्त के आधार पर ११०० यात्रियों ने यात्रा की और कम्पनी को ५५०० रु प्राप्त हुए जब कि सेवा उत्पादन व्यय सिद्धान्त के आधार पर केवल ५०० यात्री तथा २५०० रु० ही प्राप्त हुए थे। सेवा मूल्य सिद्धान्त का अनुसरण करने से अधिक यात्रियों ने यात्रा की तथा कम्पनी को भी अधिक रु० मिला, यदि मान लिया जाय कि १५ रु० तथा १० रु० भाड़ा देने वाले यात्रियों को विशेष सुविधाएँ देने में कम्पनी ने १५०० रु० व्यय कर दिया तो भी कम्पनी को पहिले से १५०० रु० का लाभ रहा। अतः स्पष्ट है कि सेवा उत्पादन व्यय सिद्धान्त तथा सेवा मूल्य सिद्धान्त में दूसरा सिद्धान्त ही श्रेयस्कर है। इसमें रेल-सेवा का प्रयोग जनता के अधिक से अधिक व्यक्ति कर सकते है, रेल कम्पनी को अधिक से अधिक लाभ हो सकता हैं।

इसके अतिरिक्त यही सिद्धान्त (सेवा-मूल्य) अधिक समान तथा व्यावहारिक है। इसके अनुसार भाड़े का बोझ यात्रियों की आर्थिक क्षमता अथवा वस्तुओं के मूल्य के अनुसार पड़ता है जो किसी को असह्य नहीं होता। एक धनवान यात्री १५ रु० व्यय करके कानपुर जा सकता है, एक निर्धन केवल ४ रु० देकर, दोनों प्रकार के यात्रियों का काम बनता है और किसी को इस भाड़े का बोझ असह्य नहीं है। इसी प्रकार यदि आगरा से कानपुर तक के लिए १ मन सोने से १०० रु० लिए जाँय और १ मन कोयले से भी १०० रु० लिए जायँ तो यह समान भार नहीं रहेगा। सोना मूल्यवान वस्तु है वह १०० रु० के स्थान पर २०० रु० भी भाड़े के सहन कर सकता है, कोयला १ या २ रु० ही सहन कर सकता है यहीं अधिक व्यावहारिक भी है कि सोने से २०० रु० वसूल किये जायँ तथा कोयले से २ रु० और इसी नीति से दोनों पर भाड़े का बोझ भी समान पड़ेगा। यह तभी हो सकता है कि भाड़ा सेवा

मूल्य सिद्धान्त के आधार पर लिया जाय न कि सेवा उत्पादन व्यय सिद्धान्त के आधार पर। कम्पनी के लिए भी इस सिद्धान्त के आधार पर किसी यात्री के लिए भाड़ा निर्धारित करना सरल है, इसके विपरीत सेवा उत्पादन व्यय के आधार पर भाड़ा निर्धारित करना कठिन है। उदाहरण के लिए आगरे से कानपुर जाने वाली सवारी गाड़ी पर यात्री भिन्न-भिन्न दूरी के होंगे, कितनी दूरी के लिए कितना उत्पादन व्यय का कितना भाग प्रत्येक यात्री के ऊपर डाला जाय, इसका निर्धारित करना कठिन है। हो सकता है कि वास्तविक व्यय (working expenses) का अनुमान कुछ लगाया भी जा सके, पर स्थिर व्यय (permanent expenses) उन कर्मचारियों का वेतन, पूँजी पर व्याज, स्टेशन, सिगनल, रेलवे लाइन आदि पर किये गये खर्च का कौनसा भाग एक यात्री पर पड़ना चाहिए यह ज्ञात करना कठिन है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से भी सेवा मूल्य का सिद्धान्त अधिक उपयुक्त है। यह केवल अधिक उपयुक्त ही है, इसका तात्पर्य यह नहीं कि सेवा उत्पादन व्यय सिद्धान्त की अवहेलना की जा सकती है। उत्पादन व्यय का तो ध्यान रखना ही पड़ेगा। मान लीजिये कि कानपुर जाने वाले सारे यात्री निर्धन हैं और वे ३ रु० ही भाड़ा दे सकते हैं और सब मिला कर ७०० यात्री ही कठिनता से हो पाते हैं तो कुल आमदनी २१०० रु० ही होगी जबकि कुल व्यय २५०० रु० है। यह स्थिति बहुत दिनों तक सहन नहीं की जा सकती। कोई भी कम्पनी आर्थिक हानि से नहीं चलाई जा सकती। यद्यपि यातायात के साधन जनता के लिए कल्याणकारी तथा उपयोगी हैं परन्तु वे आर्थिक हानि से नहीं चलाये जा सकते, कम से कम व्यय के बराबर आमदनी होनी ही चाहिए, इस प्रकार रेल भाड़ा निर्धारण में सेवा मूल्य का सिद्धान्त श्रेयस्कर होते हुए भी सेवा उत्पादन व्यय का सिद्धान्त भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

Q. 16. What are the peculiar difficulties associated with analysing railway transport's 'cost of production' with a view to determining the price of the service (A. U. 1951)

Q. 17. What are the peculiar difficulties in the way of analysing transports 'cost of production' of joint supply of transport units. Discuss. (A. U. 1953)

रेलवे सेवा की यह विशेषता है कि यह जानना कि किसी रेलवे यातायात सेवा की पूर्ति में कितना व्यय हुआ, कठिन है। कुछ रेलवे सेवा संयुक्त उत्पादन के समान है जिसके अनुसार एक वस्तु के उत्पादन में दूसरी वस्तु अपने आप उत्पन्न हो जाती है। दो या अधिक वस्तुएँ संयुक्त उत्पादन कहलाती हैं जबकि वे एक ही कार्य प्रणाली में उत्पन्न हो जाती हैं और जबकि उनके उत्पादन का पृथक व्यय का अनुमान लगाना कठिन होता है। उदाहरण के लिए गेहूँ पैदा करते समय गेहूँ और भूसा साथ साथ होते हैं। यह हिसाब लगाना कठिन है कि कितना रु० केवल गेहूँ उत्पन्न करने में व्यय हुआ और कितना भूसा उत्पादन में। जब एक रेलवे लाइन किन्हीं दो स्थानों के बीच निर्मित हो जाती है तो इस लाइन के द्वारा यात्री और माल दोनों ढोये जाते हैं। यात्री भी विभिन्न प्रकार के और माल भी तरह-तरह का और उन सब का व्यय एक साथ ही होता है। यह पता लगाना कि कितना व्यय माल ढोने का अथवा यात्री ढोने का हुआ, कठिन है। यही नहीं बहुत सी रेल गाड़ियाँ भी मिली जुली गाड़ियाँ होती हैं जो विभिन्न प्रकार के यात्रियों व सामान को एक साथ ले जाती हैं। इस प्रकार से ये रेल गाड़ियाँ यातायात सेवा की पूर्ति करने में संयुक्त सेवार्पण

का कार्य करती हैं। इस प्रकार की गाड़ियों का पूरा व्यय तो आसानी से मालूम किया जा सकता है पर किसी विशेष माल या यात्री के ढोने का व्यय अलग से ठीक-ठीक मालूम नहीं किया जा सकता। यदि सवारी और मालगाड़ियाँ अलग-अलग भी हो जायँ तो भी इनका अलग-अलग सम्पूर्ण व्यय ठीक-ठीक नहीं निकाला जा सकता। यह हो सकता कि प्रत्येक गाड़ी का संचालन व्यय (working expenses) मालूम कर लिया जाय; परन्तु वर्किंग एक्सपेंसिज तो पूरा व्यय नहीं होता, अधिकांश व्यय रेलवे लाइन, स्टेशन तथा सिगनल आदि पर होता है जो और भी बहुत सी ट्रेनों के काम आते हैं। प्रत्येक गाड़ी को इस प्रकार के व्यय का कुछ भाग सहना पड़ता है। और इस भाग का अनुमान ही लगाया जा सकता है। मान लीजिये अनुमान के द्वारा ही किसी माल गाड़ी या सवारी गाड़ी का पूरा व्यय ज्ञात कर लिया जाय तो फिर भी यह ज्ञात करना, कि किसी विशेष माल या यात्री को एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजने में कितना व्यय हुआ है, बहुत कठिन है। यह कठिनता और भी अधिक बढ़ जाती है जब कि एक ही गाड़ी द्वारा माल और सवारी दोनों स्थानान्तरित की जायँ। वास्तव में प्रत्येक प्रकार की गाड़ी का संचालन व्यय तो पूर्ण व्यय का बहुत छोटा सा भाग होता है। इस व्यय का अधिकांश भाग तो ब्याज तथा रेल मार्ग, स्टेशन आदि वस्तुओं पर व्यय होता है जिसके बारे में बिल्कुल ठीक पता लगाना कि कितना हिस्सा किस गाड़ी पर व्यय हुआ अत्यन्त कठिन है।

टासिंग के मतानुसार एक ही रेलमार्ग विभिन्न प्रकार के यात्रियों व असबाबों को स्थानान्तरित करने के कार्य में आता है। यदि इस रेल मार्ग पर जितना व्यय किया गया है वही सब व्यय गाड़ी संचालन में होता तब तो यह बिल्कुल ही संयुक्त व्यय का उदाहरण हो जाता, परन्तु इस प्रकार के व्यय के अतिरिक्त संचालन व्यय भी होता है। और इसलिए संचालन व्यय के जोड़े जाने पर यह पूर्ण रूप से संयुक्त व्यय का उदाहरण नहीं रहता। लेकिन यदि इस पर विचार किया जाय तो संचालन व्यय स्वयं भी किसी सीमा तक संयुक्त व्यय ही है क्योंकि एक ही गाड़ी विभिन्न प्रकार के यात्रियों व सामान को ढोती है। इससे स्पष्ट है कि व्यावहारिक दृष्टि से सामान तथा यात्रियों के लिए की गई रेलवे सेवा संयुक्त व्यय का ही उदाहरण है। और माल तथा यात्रियों के बीच में इस संयुक्त व्यय का विभाजन एक कठिन कार्य है।

रेलवे उद्योग द्वारा यातायात की सेवा पूर्ति करने में जो व्यय होता है उसमें एकरूपता का अभाव सा रहता है क्योंकि यह सेवा विभिन्न परिस्थितियों में की जाती है और कुछ परिस्थितियों में दूसरी परिस्थितियों की अपेक्षा अधिक व्यय होता है। बहुत से सामान के भेजने में यातायात सेवा के अतिरिक्त और भी बहुत सी सेवाएँ करनी होती हैं। सामान को एकत्रित करना, लादना, उतारना, ढकना या खोलना इत्यादि ऐसी सेवाएँ हैं कि जिनका व्यय निर्धारित करते समय ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि हम केवल यातायात सेवा की ओर ध्यान दें तो इस सेवा का व्यय भी विभिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग होगा। उदाहरण के लिए यातायात की सेवा तेज गाड़ी अथवा धीमी गाड़ी द्वारा की गई है। किस प्रकार के डिब्बों का प्रयोग किया गया है। सामान थोड़ा भेजा गया है या अधिक, सामान के बोझ, आकार व कीमत में क्या सम्बन्ध है। लदान कभी-कभी होता है या हर समय, कितनी दूरी के लिए सामान भेजा जा रहा है। सामान के ले जाने की जोखम कम्पनी पर है या मालिक पर। इन सब बातों का ध्यान यातायात सेवा लागत व्यय निकालने में करना पड़ता है और इन्हीं विभिन्न परिस्थितियों के कारण किसी यातायात सेवा का वास्तविक व्यय निकालना कठिन होता है।

उपर्युक्त विभिन्न परिस्थितियों के कारण तो ठीक लागत व्यय का पता लगाना कठिन है ही इसके अतिरिक्त किसी विशेष ट्रैफिक पर कितना वास्तविक व्यय हुआ इसका हिसाब लगाना और भी मुश्किल है। क्योंकि यदि किसी एक गाड़ी का वास्तविक व्यय मालूम किया जाय तो उसका संचालन व्यय तो आसानी से मालूम हो सकता है पर पूरा व्यय जिसमें कि स्थिर व सामान्य व्यय भी शामिल है, का पता लगाना मुश्किल है। और यदि किसी एक वस्तु के यातायात का लागत व्यय जानने का प्रयत्न किया जाय तो यह और भी कठिन हो जाता है क्योंकि उसमें तो एक गाड़ी के संचालन व्यय का भी कितना भाग उस विशेष वस्तु की यातायात में लगाया जाय, यह एक और कठिन समस्या आ जाती है। ऐसा हो सकता है कि यदि एक गाड़ी एक से दूसरे स्थान को जाय और उसे लौटते समय खाली आना पड़े तो लागत व्यय अधिक पड़ जायगा और यदि दूसरी तरफ से भी उसे ट्रैफिक मिल जाय तो लागत व्यय कम हो जायगा। यही नहीं लागत व्यय का कम और अधिक होना ट्रैफिक की प्रकृति पर निर्भर होता है। और उसी के अनुसार व्यय घटता बढ़ता भी रहता है।

ट्रैफिक को किसी विशेष इकाई को स्थानान्तरित करने में कुल कितना व्यय पड़ेगा इसका पता लगाना इस कारण से और भी कठिन हो जाता है कि रेलवे का अधिकांश व्यय ऐसा होता है जो बहुत समय तक और बहुत सी वस्तुओं व यात्रियों को सेवा प्रदान करने में उपयोग में लाया जाता है। बहुत सी परिस्थितियों में यातायात की सेवा बिल्कुल संयुक्त उत्पादन के सिद्धान्त के आधार पर नहीं होती। उदाहरण के लिए संयुक्त उत्पादित वस्तुओं में तो यह बात होती है कि यदि उनमें से किसी एक वस्तु की पूर्ति बढ़ जाय तो दूसरी वस्तु की पूर्ति भी बढ़ जायगी। गेहूँ उत्पादन की वृद्धि के साथ ही साथ भूसे का उत्पादन भी अधिक हो जायेगा। परन्तु रेल यातायात सेवा के बारे में यह सत्य नहीं है। यदि यात्रियों का नम्बर बढ़ जाय तो यह आवश्यक नहीं है कि माल का परिमाण भी बढ़ जायगा और इससे यात्रियों पर खर्च का बोझा कम हो जायगा। इसके विपरीत यह हो सकता है कि यात्रियों की अधिकता से यातायात की सेवा में कुछ कठिनाइयाँ पड़ जायें, जिससे समय अधिक लगे, और व्यय कम होने के बजाय बढ़ जाय। इस प्रकार यह ज्ञात करना कि किस ट्रैफिक पर कितना व्यय होता है, बहुत ही कठिन है और व्यय के अनुसार भाड़ा निर्धारित करना कठिन हो जाता है। इन सब कठिनाइयों के अलावा एक व्यावहारिक कठिनाई और भी है कि कुछ वास्तविक व्यय तो यातायात सेवा अर्पण करने के बाद मालूम हो सकता है परन्तु भाड़ा पहिले ही लिया जाता है। सेवा अर्पण करने से पहिले व्यय नहीं जाना जा सकता। इससे वास्तविक व्यय के आधार पर भाड़ा निर्धारित करना तो असम्भव ही है। भाड़ा निर्धारण में तो अनुभव, अनुमान तथा कुछ मान्यताओं के सहारे से ही किया जाता है। यदि ये मान्यताएँ गलत हो जायँ तो इनके आधार पर निर्धारित भाड़ा दर भी गलत हो सकती है। इन सब के कारण यातायात सेवा का मूल्य निर्धारित करने के लिए यातायात सेवा व्यय के प्रयोग करने में बहुत सी कठिनाइयाँ सामने आती हैं।

Q. 18. 'Passenger and weight transport by railway can not properly be classed and joint products, which constitute an extreme case of production with heavy over head costs !'

Carefully examine the statement. (A.U. 1945.)

Q. 19. The economic law of joint costs is no more than this, that it is the demand for each service rather than its cost that

finally determine the chargeable rate. This underlying principle which pervades in all the ordinary affairs of life is one not of extortion but of remission and alleviation. Discuss. (A.U. 1950)

Q. 20. The principle of joint costs on the railways is applicable both to rates and fares and underlies the practice of charging what the traffic will bear. Explain. (A.U. 1951)

कुछ वस्तुएँ संयुक्त उत्पादित होती हैं। एक वस्तु के उत्पादन के साथ ही साथ दूसरी वस्तु अपने आप उत्पादित हो जाती है, उसके लिए कोई पृथक से प्रयत्न नहीं करना पड़ता। चीनी के कारखाने से चीनी के साथ ही साथ शीरा भी प्राप्त होता है, कपास से रुई व बिनौला दोनों एक साथ निकलते हैं। गेहूँ उत्पादन करने में भूसा स्वयं उत्पादित हो जाता है, इस प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन संयुक्त उत्पादन (joint production) कहलाता है और इस प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में जो व्यय होता है वह संयुक्त व्यय कहलाता है। इस प्रकार की प्रत्येक वस्तु के उत्पादन में कितना व्यय हुआ, यह ज्ञात करना कठिन होता है यद्यपि संयुक्त व्यय सरलता से ज्ञात हो जाता है। उदाहरण के लिए मान लो कि १० मन गेहूँ का उत्पादन व्यय १६० रु० है, और साथ में १० मन भूसा भी हो गया तो यही कहा जायगा कि १० मन गेहूँ तथा १० मन भूसा का संयुक्त उत्पादन व्यय १६० रु० है, पर यह बतलाना अति कठिन है कि इन १६० रुपयों में से कितने रुपये १० मन गेहूँ के उत्पादन में व्यय हुए और कितने १० मन भूसा के। हाँ, यह स्पष्ट है कि उत्पादक को दोनों वस्तुओं के बेचने से कम से कम १६० रु० तो मिल ही जाने चाहिए। इतने रुपये प्राप्त करने के लिए गेहूँ व भूसा किन कीमतों पर बेचा जाय, यह उनकी उपयोगिता तथा माँग पर निर्भर होगा, न कि इस बात पर कि इन दोनों पर पृथक-पृथक कितना उत्पादन व्यय हुआ है, क्योंकि सम्पूर्ण अथवा संयुक्त व्यय को संयुक्त रूप से उत्पादित पदार्थों पर वैज्ञानिक ढंग से बाँटना व्यावहारिक दृष्टि से असम्भव होता है। इस प्रकार के संयुक्त व्यय को संयुक्त वस्तुओं की माँग और उनके मूल्य के अनुसार अनुमानतः ही बाँटा जा सकता है, उसका ठीक-ठीक वैज्ञानिक विभाजन सर्वथा असम्भव है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार रेल यातायात में भी यह समस्या उपस्थित होती है। रेल यातायात की सुविधा को संयुक्त रूप में समाज को प्रदान करती है। एक रेलगाड़ी विभिन्न वर्गों के यात्रियों तथा विभिन्न प्रकार के माल को एक ही साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचा देती है। अतः इन सब यात्रियों तथा माल के लिए इस सेवा की पूर्ति संयुक्त रूप से हुई और इनके स्थानान्तरित करने के लिए रेलवे कम्पनी को जो व्यय करना पड़ा वह संयुक्त व्यय हुआ। जिस प्रकार संयुक्त उत्पादन व्यय वाले पदार्थों की कीमत उत्पादन पक्ष का अधिक ध्यान न रखते हुए माँग पक्ष के आधार पर ही प्रधानतः निर्धारित की जाती है, इसी प्रकार रेलवे भाड़ा निर्धारण में भी संयुक्त व्यय का अधिक सहारा नहीं लिया जा सकता।

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को, विभिन्न वर्गों के यात्रियों को एक साथ ले जाने के कारण, इनमें से प्रत्येक का पृथक से यातायात व्यय का अनुमान न लगा सकने के कारण, तथा रेलगाड़ी के एक दिशा को जाकर उधर से लौटने के कारण, रेल यातायात के सम्बन्ध में भी संयुक्त उत्पादित वस्तुओं के मूल्य निर्धारण की समस्या उपस्थित होती है। टासिग के मतानुसार भी रेलवे व्यवसाय में संयुक्त उत्पादन व्यय की समस्या महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उसके कथनानुसार जिस व्यवसाय में एक

स्थिर पूँजी विभिन्न कामों के लिए प्रयोग में आती है, उस व्यवसाय में संयुक्त व्यय की समस्या अपना प्रभाव दिखलाती है अर्थात् विभिन्न प्रयोगों का वास्तविक व्यय अलग-अलग से नहीं निकाला जा सकता। रेलवे कम्पनी में इतनी अधिक अचल पूँजी होती है और वह इतने अधिक कार्यों में लाई जाती है कि प्रत्येक कार्य का व्यय, कुल व्यय से ठीक-ठीक प्रकार से अलग नहीं किया जा सकता। यह बतलाना कि सिगनल मैन की मजदूरी तथा रेल की घिसावट का कितना भाग किसी एक यात्री अथवा किसी विशेष यात्रा पर डाला जाय, असम्भव ही है। हाँ यह बतलाना सरल है कि किसी यातायात सेवार्पण ये कुल व्यय कितना हुआ, और जितना व्यय हुआ वह सब विभिन्न वर्गों से वसूल किया जाता है, यदि किसी वर्ग से अधिक तो दूसरे से कम। यदि यात्रियों से भाड़ा कम लिया जायगा तो माल पर अधिक भाड़ा लगाया जायगा, यदि यात्रियों से अधिक भाड़ा ले लिया जाय तो माल सस्ते दामों में ढोया जा सकता है। विभिन्न वर्गों से भाड़ा किसी प्रकार से लिया जाय पर कुल मिलाकर सब वर्गों से इतना धन प्राप्त हो जाना चाहिए, जितना उस यातायात सेवार्पण का संयुक्त व्यय है। यही बात संयुक्त उत्पादित वस्तु के लिए होती है। चाहे गेहूँ तेज बेचा जाय और भूसा सस्ता बेचा जाय, पर हर प्रकार से दोनों वस्तुओं को बेचकर कुल धन संयुक्त उत्पादन व्यय के बराबर होना चाहिए। यह समस्या रेल यातायात में भी इसी प्रकार की होती है इसीलिए रेल द्वारा यातायात सेवार्पण को संयुक्त उत्पादन वाला व्यवसाय ही माना गया है।

इस सम्बन्ध में पीगू का मत दूसरा है, वह रेल द्वारा विभिन्न वर्गों के यात्रियों तथा माल को एक साथ ले जाने के कार्य को संयुक्त उत्पादन का उदाहरण नहीं मानता क्योंकि उसमें अनिवार्यता नहीं है। गेहूँ के उत्पादन में भूसा अपने आप अनिवार्य रूप से पैदा हो जाता है, यह नहीं हो सकता कि खेत में गेहूँ पैदा हो जाय भूसा पैदा न हो। रुई पैदा हो जाय बिनौला न हो, तेलमिल में तेल निकल आवे खल न निकले। इन वस्तुओं के उत्पादन में एक के साथ दूसरी वस्तु जुड़ी हुई है। एक के बिना दूसरी उत्पन्न ही नहीं हो सकती। रेल सेवार्पण में यह बात नहीं है। यात्रियों के साथ माल का जाना अनिवार्य नहीं है। निम्न वर्ग के यात्रियों के साथ उच्च वर्ग के यात्रियों का जाना अथवा सोने के साथ कोयले का ढोया जाना अनिवार्य नहीं है। इसलिए रेल सेवार्पण का व्यवसाय संयुक्त उत्पादन वाले व्यवसायों अथवा ऐसी वस्तुओं के अन्तर्गत नहीं आता। यदि कोई रेलवे कम्पनी अधिक यात्री ले जाने के लिए अधिक साधनों का प्रयोग करे तो यह आवश्यकीय नहीं है कि उसे अधिक माल ढोने के लिए भी अधिक साधनों को जुटाना पड़ेगा। परन्तु यदि कोई कृषक अधिक गेहूँ उत्पादन करे तो भूसा अधिक अपने आप उत्पन्न हो जायगा। रेल सेवार्पण में इस प्रकार की कोई अनिवार्यता नहीं है। हाँ, रेलगाड़ियों का विपरीत दिशाओं में आना-जाना संयुक्त व्यय की समस्या से सम्बन्धित हो सकता है। मान लीजिये कि एक रेलगाड़ी कानपुर से इलाहाबाद को गई, उसका व्यय ८०० रु० हुआ और इलाहाबाद से कानपुर वापिस आने में फिर ८०० रु० व्यय हुआ। कुल १६०० रु० व्यय हुए। यदि कानपुर से इलाहाबाद को जाने वाले यात्री मिले और इलाहाबाद से कानपुर को आने वाले यात्री न मिले, उधर से गाड़ी को खाली आना पड़े तो १६०० रु० का कुल व्यय एक तरफ के यात्रियों को ही उठाना पड़ेगा, परन्तु यदि कुछ यात्री उधर से भी मिल जाय तो कानपुर से जाने वाले यात्रियों को कम भाड़ा देना पड़ेगा। यद्यपि व्यय तो उतना ही पड़ता है, परन्तु अब रेल सेवा की माँग दूसरी ओर से भी हो गई है, इसलिए, भाड़ा कम हो गया है। इससे स्पष्ट है कि अन्य संयुक्त

उत्पादित पदार्थों की भाँति रेल भाड़ा भी उत्पादन व्यय के अनुसार निर्धारित नहीं किया जा सकता।

यह तो यातायात सेवा की मांग तथा मूल्य के आधार पर ही निर्धारित होता है और ऐसा करने में किसी का शोषण नहीं होता वरन् इससे लोगों को कुछ छूट मिल जाती है, उन्हें सावधानी हो जाती है तथा सेवा उपभोक्ताओं का बोझ हल्का हो जाता है जैसा कि ऊपर के प्रश्न में (सेवा मूल्य के) सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए समझाया गया है। निर्धन यात्रियों, तथा कम मूल्यवान वस्तुओं के लिए सेवा मूल्य सिद्धान्त द्वारा भाड़ा निर्धारण हितकर होता है, क्योंकि इसके अनुसार प्रत्येक यात्री अथवा वस्तु से उसकी शक्ति—सहन शक्ति (कितना खर्च कर सकता है) के अनुसार भाड़ा लिया जाता है।

भाड़ा निर्धारण तथा रेलवे सेवा की माँग

साधारणतया अन्य वस्तुओं के मूल्य के समान रेल सेवा का भाड़ा भी माँग पक्ष द्वारा निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक यात्री तथा व्यापारी को रेल सेवा की उपयोगिता होती है और वह उस उपयोगिता के अनुसार भाड़ा दे सकता है। लेकिन माँग पक्ष में रेल कर्मचारियों को भी यह ध्यान रखना पड़ता है कि भाड़ा इस प्रकार लिया जाय कि जिससे अधिकाधिक आय हो सके। यदि भाड़ा दर अधिक होगी, तो यात्री भी अपनी यात्रा कम कर देंगे, चाहे वह शौकिया हो या कार्यवश। इसी प्रकार यदि वस्तु भाड़ा भी अधिक होगा तो व्यापारी लोग भी कम माल भेजेंगे। इन दोनों कारणों से रेल की आय कम हो जायगी। इसलिए रेलवे कम्पनियों को भाड़ा निर्धारण करते समय माँग पक्ष का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। और ऐसा भाड़ा निर्धारण करने के लिए जिससे अधिकतम आय प्राप्त हो सके यात्रियों और व्यापारियों की भुगतान क्षमता का ध्यान रखना पड़ता है। यह भाड़ा देने की शक्ति वस्तुओं के सम्बन्ध में उनकी कीमत पर निर्भर होती है। मूल्यवान वस्तुएँ अधिक भाड़ा सहन कर सकती हैं अन्य वस्तुएँ कम। यात्रियों के सम्बन्ध में यह नीति उनकी आय के ऊपर निर्धारित की जाती है। यदि ऐसा न किया जाय तो या तो कम मूल्यवान वस्तुएँ तथा कम आय वाले व्यक्ति रेलवे यातायात सुविधा का लाभ ही न उठा पावें, और यदि भाड़ा कम लिया जाय तो रेलवे कम्पनी को हानि रहे। इन कठिनाइयों का निवारण 'charging what the traffic will bear' सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है और इस सिद्धान्त के फलस्वरूप, विभेदात्मक भाड़ा नीति का सहारा लेना पड़ता है। 'charging what the traffic will bear' का सिद्धान्त यातायात को कई श्रेणियों में बाँट देता है। यात्रियों व वस्तुओं का वर्गीकरण करना पड़ता है और फिर भाड़ा इस प्रकार निश्चित किया जाता है कि हर वस्तु अधिक से अधिक रुपया, सामान्य व्यय की मद में दे सके। इस समय ट्रैफिक का परिमाण निश्चित नहीं किया जा सकता। वल्कि व्यावहारिक दृष्टि से यथासंभव अधिक से अधिक ट्रैफिक आकर्षित किया जाता है, इस आधार पर कि प्रत्येक से परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न भाड़ा लिया जाय। जिस प्रकार एक एकाधिकारी अपनी वस्तु की विभिन्न कीमत ले सकता है उसी प्रकार रेलवे कम्पनियाँ भी कर सकती हैं।

विभेदात्मक नीति का पालन एकाधिकार की परिस्थिति में ही अधिक हो सकता है। और किन्ही अंशों में रेलवे पूर्ण प्रकार का एकाधिकार प्राप्त नहीं करती। कानूनी प्रतिबन्ध, यातायात के अन्य साधनों से प्रतिस्पर्धा भाड़ा निर्धारण के लिए रेलवे एकाधिकार को सीमित कर देते हैं। इसके अतिरिक्त कम कीमत वाली वस्तुओं

के ऊपर अधिक भाड़ा दर प्रतिस्पर्धा के डर से नहीं लगाई जा सकती इस प्रकार एकाधिकार प्राप्त करने वाली रेलवे कम्पनी अधिकाधिक वह भाड़ा लगा सकती है जिससे उसे अधिकाधिक आय हो। और कम से कम भाड़ा दर का निर्धारण उसका वास्तविक व्यय करता है। साधारण तौर पर भाड़ा दर निम्नतम स्तर पर नहीं होता इससे कुछ न कुछ अधिक ही होता है जिससे उस भाड़े से सामान्य व्यय का कुछ अंश भी पूर्ण हो सके।

रेलवे भाड़ा निर्धारण सम्बन्धी निम्नांकित बातें ध्यान देने के योग्य हैं। किसी भी रेलवे कम्पनी का भाड़ा दर किसी साधारण सिद्धान्त पर निर्धारित नहीं होता, वरन् वह समयानुसार अनुभव के आधार पर तथा व्यवहार की दृष्टि से निर्धारित किया जाता है। सदैव ध्यान इस बात का रक्खा जाता है कि निर्धारित भाड़ा दर से अधिकाधिक आय प्राप्त हो सके। और इसके लिए उसे विभेदात्मक नीति का पालन करना पड़ता है। किसी वस्तु के स्थानान्तर करने में कितना वास्तविक व्यय होता है इसका ठीक-ठीक पता न लगा सकने के कारण भी विभेदात्मक नीति अपनानी पड़ती है। कहीं-कहीं पर विभेदात्मक नीति का पालन तुलनात्मक व्यय के आधार पर भी किया जाता है परन्तु यह सार्वभौम आधार नहीं बनाया जा सकता। विभेदात्मक नियम में यद्यपि व्यय पक्ष का ध्यान रखना पड़ता है परन्तु मुख्य तौर पर वस्तु के मूल्य का अधिक ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। और ऐसा करने में ही रेलवे कम्पनी को अधिक लाभ प्राप्ति की आशा रहती है। इसी नीति से निर्धन यात्रियों, कम मूल्य की वस्तुओं को भी लाभ होता है और चूँकि सामान्य व्यय का कुछ अंश इस प्रकार के ट्रैफिक द्वारा अदा कर दिया जाता है, धनी यात्रियों और अधिक मूल्य वाले ट्रैफिक को भी उसमें लाभ रहता है। समाज के लिए भी यह नीति दो प्रकार से लाभदायक है। सबसे पहले इसी नीति के कारण रेलवे उद्योग आत्म निर्भरता के आधार पर चलाया जा सकता है। दूसरे इसी नीति के पालन से अधिकाधिक ट्रैफिक प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार भाड़ा निर्धारण करने में रेलवे कम्पनी को सिद्धान्त के साथ-साथ व्यवहार तथा अनुभव का सहारा लेना पड़ता है। संक्षेप में रेल कम्पनियों द्वारा भाड़ा पूर्ति और माँग के अनुसार निर्धारित किया जाता है। पूर्ति पक्ष में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना होता है :—

१—कम से कम कितना भाड़ा होना चाहिए।
२—किसी विशेष ट्रैफिक पर कितना सामान्य व्यय होता है।
३—किन-किन परिस्थितियों में विभिन्न दर किस प्रकार निर्धारित की जा सकती है। माँग के पक्ष में विशेषकर दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है—

(१) अधिक से अधिक कितना भाड़ा लिया जा सकता है। और
(२) विभेदात्मक नीति का पालन कहाँ तक किया जा सकता हैं।

Q. 21. "Charging what the traffic will bear" is a principle not of extortion, but of remissions and alleviations." Discuss the above and show whether it applies to the framing of railway rates and fares (A. U. 1944)

रेल उद्योग एक वृहद् मात्रा वाला उद्योग तो है ही, साथ ही साथ, यह एकाधिकारी उद्योग भी है। इसलिए इस उद्योग में उत्पादित रेल-सेवा का मूल्य एकाधिकारी वस्तु के मूल्य की भाँति निर्धारित किया जाता है। एकाधिकारी मूल्य की दो विशेषताएँ हैं। सर्व प्रथम एकाधिकारी मूल्य इस हिसाब से निर्धारित किया

जाता है कि उस मूल्य पर अधिक से अधिक एकाधिकारी आय उत्पादक को प्राप्त हो सके। दूसरे, एकाधिकारिता के कारण एकाधिकारी अपनी वस्तुओं का मूल्य विभिन्न ग्राहकों से विभिन्न दर से ले सकता है। रेल उद्योग में दूसरे प्रकार से मूल्य निर्धारण अधिकतर प्रयोग में लाया जाता है, क्योंकि इसी से रेलवे कम्पनी को अधिकाधिक लाभ प्राप्त होता है। विभेदात्मक मूल्य के कारण रेलवे को अधिकतम लाभ हो सकता है क्योंकि इससे अधिक से अधिक ट्रैफिक आकर्षित होता है। थोड़ी देर को यदि मान लिया जाय कि रेलवे कम भाड़ा लेती है तो उसे हानि रहेगी क्योंकि जो अधिक भाड़ा दे सकते थे वे कम देकर अपना काम चला लेते हैं। यदि वह अधिक भाड़ा लेती है तो कम देने वाले रेल-सेवा का उपयोग न कर सकेंगे। और इस कारण भी रेलवे की आय कम रहेगी। अत: रेलवे को अधिक से अधिक आय तभी प्राप्त हो सकती है जब रेल-सेवा उपयोग करने वाले प्रत्येक व्यक्ति से उसकी क्रय शक्ति के अनुसार भाड़ा प्राप्त करें। अर्थात् किसी से अधिक किसी से कम और ये विभेदात्मक भाड़ा बहुत प्रकार का हो सकता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए किसी रेल पर यात्रा करने वाले ५ आदमी हैं. उनमें से यदि पहिला यात्री सफर करे तो उसका खर्च २७) रु० पड़ता है पर वह देना २५) चाहता है। यदि दूसरा यात्री यात्रा करे तो दोनों का व्यय ५०) रु० पड़ता है और दूसरा आदमी केवल २२॥) रु० दे सकता है। तीसरे, को तो खर्च २२॥) रु० प्रति व्यक्ति पड़ता है और वह २०) दे सकता है। चौथे के लिए व्यय २०) रु० प्रति व्यक्ति जबकि वह १७॥) रु० दे सकता है। और यदि पाँचों आदमी यात्रा करें तो व्यय १८॥।) रु० प्रति व्यक्ति के हिसाब से पड़ता है और ५वाँ व्यक्ति कुल १५) रु० देना चाहता है।

उपर्युक्त उदाहरण को अच्छी तरह समझने के लिए निम्नांकित तालिका में स्पष्ट किया जाता है।

यात्रियों की संख्या	भाड़ा देने की शक्ति	यात्रा व्यय प्रति व्यक्ति
१	२५)	२७॥)
२	२२॥)	२५)
३	२०)	२२॥)
४	१७॥)	२०)
५	१५)	१८॥।)

अब मान लीजिए कि रेलवे कम्पनी केवल एक व्यक्ति को ले जाने का प्रबन्ध करे तो उसे हानि होगी क्योंकि उसका व्यय २७॥) रु० पड़ेगा और वह व्यक्ति केवल २५) रु० दे सकेगा। यदि दो व्यक्तियों को ले जाने का प्रबन्ध करे तो भी उसे हानि रहेगी। कुल व्यय ५०) रु० का होगा आय केवल ४७॥) रु०। यदि ३ व्यक्तियों का प्रबन्ध करे तो कुल व्यय ६७॥) रु० और कुल आय भी ६७॥) रु० होगी अर्थात् ३ व्यक्तियों को ले जाने में कोई लाभ न होगा। यदि ४ व्यक्तियों को ले जाय तो कुल व्यय ८०) रु० होगा परन्तु आय ८५) हो जायगी। यहाँ पर ५) का लाभ हुआ। यदि पाँचों आदमियों के ले जाने का प्रबन्ध करे तो आय १००) रु० और व्यय ९३॥।) रु० होगा, अतः ६) रु० का लाभ होगा। यह लाभ उपर्युक्त उदाहरण में सबसे अधिक है और तभी सम्भव है जब वह पांचों व्यक्तियों से विभेदात्मक आधार पर उनकी अदा करने की शक्ति के अनुसार भाड़ा ले। यदि वह ऐसा न करे तो उसे इस उद्योग में लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि प्रति यात्री का व्यय १८॥।) पड़ता है और यदि सब से एक ही भाड़ा लिया जाय तो प्रत्येक व्यक्ति

से कम से कम १८।।।) रु० लिए जाने चाहिए । इस भाड़ा दर पर चौथा और ५वाँ आदमी यात्रा नहीं करेगा, केवल पहिले ३ आदमी यात्रा करेंगे, उनसे कुल आमदनी ६७।।) रु० हो सकेगी, जबकि रेलवे व्यय ६३।।।) रु० हो जायगा । इस प्रकार रेलवे को एक भाँड़ा निर्धारण करने में लाभ नहीं होता । उसे तो विभेदात्मक भाड़े से ही अधिक आय प्राप्त होती है ।

उपर्युक्त उदाहरण में पाँचों व्यक्तियों से अलग-अलग भाड़ा लिया जायगा । अधिक देने वाले से अधिक, कम वाले से कम । यह विभेदात्मक नीति तभी लागू की जा सकती हैं जबकि रेलवे कम्पनी के पास एकाधिकार हो । यदि एकाधिकार न हो तो विभिन्न प्रकार के ग्राहकों से विभिन्न प्रकार का भाड़ा नहीं लिया जा सकता है ।

विभेदात्मक भाड़ा विभिन्न आधारों पर लिया जाता है । उदाहरण के लिए आय के अनुपात से भाड़े में विभेदात्मक सिद्धान्त लागू किया जा सकता है अर्थात् अधिक आय वालों से अधिक भाड़ा लिया जाय, कम वालों से कम । इसी प्रकार देश के विभिन्न भागों के आधार पर भी भाड़ा दर में विभिन्नता की जा सकती है । औद्योगिक क्षेत्र में भाड़ा दर अर्ध-विकसित भाड़ा-दर के क्षेत्रों से अधिक हो सकता है, क्योंकि औद्योगिक क्षेत्र में यातायात सुविधा आवश्यक सी है । उसके लिए वहाँ के निवासी या व्यापारी अधिक से अधिक देने को तैयार हो सकते हैं । अर्ध.विकसित क्षेत्रों में रेल-सेवा की माँग इतनी प्रबल नहीं होती । इसलिए ऐसे स्थानों में ट्रैफिक आकर्षित करने के लिए भाड़ा दर कम ही रक्खा जायगा । यही बात विभिन्न मौसमों के लिए भी है । ऐसे मौसम में जब यातायात करना अनिवार्य हो तो भाड़ा दर बढ़ाया जा सकता है अथवा समयानुसार अधिक ट्रैफिक आकर्षित करने को भाड़ा दरों में रियायत दी जा सकती है । उदाहरण के लिए दशहरा की छुट्टियों में बड़े दिन की छुट्टियों में अधिक ट्रैफिक आकर्षण के लिए concession tickets प्रचलित कर दिये जाते हैं । इसी प्रकार उद्देश्य के आधार पर भी भाड़ा निर्धारण में विभेदात्मक सिद्धान्त लागू किया सकता है । उदाहरणार्थ पिछले समय में भारतीय रेलों द्वारा देश के भीतरी शहरों से बन्दरगाहों तक कच्चे पदार्थों के ले जाने के लिए भाड़ा दर कम था । और बन्दरगाहों से भीतरी शहरों के लिए विदेशी निर्मित माल लाने की भाड़ा दर कम थी । इस प्रकार विभेदात्मक नीति द्वारा रेलवे कम्पनियाँ अधिक ट्रैफिक आकर्षित करके अपनी आय बढ़ा लेती है । रेलवे कम्पनी को विभेदात्मक भाड़ा निर्धारण की नीति अपनाने में बहुत सी बातें सहायक होती हैं । उदाहरणार्थ रेलवे कम्पनियों को और यातायात के साधनों की अपेक्षा एक प्रकार का एकाधिकार प्राप्त है । दूसरे, रेलवे की सेवा की माँग में समयानुसार परिवर्तन हो सकते हैं, परन्तु रेलवे संचालन में सामयिक परिवर्तन नहीं होते । रेलवे-सेवा की विशेषता ये भी है कि वह हस्तान्तरित नहीं की जा सकती । जिस व्यक्ति ने जिस समय किसी स्थान को जाने के लिए टिकट ले लिया है उसे उसी समय उस जगह जाना पड़ेगा । वह उसे दूसरे समय के लिए प्रयोग में नहीं ला सकता । इसके साथ ही साथ रेलवे कम्पनियों को क्रमागत उत्पादन वृद्धि का नियम लागू होता है इन सब कारणों से रेल-सेवा का मूल्य विभेदात्मक भाड़ा निर्धारण सिद्धान्त ले अनुसार निश्चित किया जा सकता है ।

उपर्युक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि विभेदात्मक भाड़ा के द्वारा ही किसी का न तो शोषण होता है, न किसी को मजबूर किया जाता है न इस प्रकार से

भाड़ा लेने से किसी पर असह्य बोझ पड़ता है। इसके विपरीत, इस नीति से सब को लाभ होता है और यातायात की सेवा सस्ते दामों में मिल जाती है। एक प्रकार से लोगों को रियायत ही मिलती है। यदि पहिले यात्री को ही रेलवे ले जाय तो उसका व्यय २७।/) रु० पड़ता है पर उससे केवल २५) रु० ही लिया जाता है जो वह आसानी से दे सकता है। दूसरे यात्री का यातायात व्यय २५ रु० पड़ता है, पर वह भी २२॥) देकर २॥) रु० बचा लेता है, इसी प्रकार तीसरा तथा चौथा यात्री भी प्रत्येक २॥) रु० बचा लेता है. और ५वाँ यात्री ३।॥) रु० बचा लेता है। इस प्रकार भाड़े की विभिन्न दरों के कारण रेल को आय भी अधिक हुई, अधिक से अधिक यात्रियों ने भी यात्रा की, और सबको उनके यातायात व्यय से कम ही देना पड़ा मानो उन्हें कुछ remission मिल गया हो अथवा उनकी आर्थिक दशा में उसी हद तक सुधार हो गया, उनका बोझ हलका हो गया। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि प्रश्न में दिया हुआ वाक्य सत्य है, और व्यवहार में यह सिद्धान्त भाड़ा निर्धारण में लागू भी होता है,

Q. 22. The Nature of railway business being what it is rate fixing can not be an exact science; to claim that rate shall be fixed on the basis of the cost of carriage is to claim what is impossible. Examine critically this statement and show the importance of the principle charging what the traffic will bear in this connection.

वास्तव में रेलवे एक ऐसा उद्योग है कि इसमें भाड़ा-निर्धारण बिल्कुल निश्चित वैज्ञानिक ढंग से नहीं हो सकता। कोई भी ऐसा सार्वभौम नियम नहीं बनाया जा सकता जिसके आधार पर विभिन्न यात्रियों तथा विभिन्न वस्तुओं का भाड़ा राज-मार्ग-पलायन भांति निश्चित किया जा सके। एक दौड़ने वाला व्यक्ति यदि किसी राज-मार्ग पर दौड़े, तो किसी प्रकार का उसे ध्यान नहीं रखना पड़ेगा, उसका रास्ता साफ व निश्चित है वह केवल दौड़ता चला जाय, पर यदि वहीं खेतों में दौड़े, तो उसे बहुत सी बातों को ध्यान में रखना पड़ेगा, कहीं गड्ढा न हो, काँटे न हों, कीचड़ न हों, आगे खाई-खन्दक न हो और इनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर उसे अपनी चाल धीमी व तेज करनी पड़ेगी, वह एक चाल मे नहीं दौड़ सकता। इसी प्रकार रेल भाड़े में कोई एक सिद्धान्त निश्चयात्मक रूप से काम में नहीं लाया जा सकता। समय, परिस्थितियों, यात्रियों तथा वस्तुओं आदि की प्रवृत्ति के अनुसार विभिन्न प्रकार का भाड़ा निर्धारित करना पड़ता है।

रेलवे एक प्रकार का मिश्रित उद्योग है। विभिन्न प्रकार के डिब्बे, विभिन्न गति में चलते हैं, इसका प्रयोग करने वाले ग्राहक भी भिन्न प्रकार के होते हैं, रेलवे को एकाधिकार प्राप्त होता है, इसमें लगी हुई पूँजी हमेशा के लिए स्थिर हो जाती है और किसी काम के लिए उसका प्रयोग नहीं हो सकता, इसका अधिकांश भाग पहिले से ही व्यय कर दिया जाता है, सेवा प्रदान करने में तो बहुत ही थोड़ा व्यय होता है, अतः दी हुई परिस्थितियों में रेलवे को अधिक से अधिक आमदनी प्राप्त करनी पड़ती है, इसलिए किसी एक नियम के आधार पर सबके लिये समान भाड़ा नहीं लिया जा सकता। हो सकता है कि समान किराया भाड़ा लाभदायक हो, परन्तु व्यवहार में वह सम्भव नहीं है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है रेल द्वारा सेवा प्रदान की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं अतः रेल सेवा का व्यय भी भिन्न होता है अतः समानता व एकरूपता का बिल्कुल अभाव रहता है। कोई माल केवल

ले जाने के लिए होता है, किसी माल को एकत्रित करना, लादना, ले जाना, तथा भेजने आदि का काम भी रेल को ही करना है। कोई सामान तेजगाड़ी से जाता है कोई मालगाड़ी से, किसी माल को शीघ्र पहुँचाना होता है, किसी को देर में, कोई बन्द डिब्बे में भेजा जाता है, कोई खुले में तथा किसी के लिए किसी विशेष प्रकार के डिब्बे की आवश्यकता होती है। किसी वस्तु के भेजने में उत्तरदायित्व कम होता है किसी के में अधिक। कोई वस्तु कम मूल्य वाली पर अधिक स्थान घेरने वाली होती है तथा कोई वस्तु अधिक मूल्य वाली परन्तु कम स्थान घेरने वाली होती है। इस प्रकार की अनेकानेक विभिन्न परिस्थितियों में रेलवे को सेवा प्रदान करनी पड़ती है, इसलिए रेल-भाड़ा निर्धारण सबके लिए एक निश्चित समान नियम के अनुसार नहीं हो सकता।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि यह कहना कि "रेल भाड़ा लागत व्यय के आधार पर निश्चित किया जाना असंभव है" सत्य है। लागत व्यय के आधार पर भाड़ा निर्धारित करना बहुत ही कठिन है। सबसे पहिले तो लागत व्यय सबके लिए एक समान नहीं होता, दूसरे कौनसी वस्तु को भेजने में कितना लागत व्यय होगा इसका पता लगाना और भी कठिन है। वास्तव में अन्य वस्तुओं व सेवाओं की भाँति लागत व्यय के अनुसार रेल की सेवा का मूल्य निर्धारित नहीं हो सकता। ऐसा करने में सबसे बड़ी कठिनता यह है कि रेल की किसी सेवा का मूल्य ठीक-ठीक नहीं आंका जा सकता, रेल-सेवा में अधिकांश रूप से संयुक्त व्यय (joint cost) का सिद्धान्त लागू होता है। जिसके कारण यातायात की किसी भी इकाई का ठीक-ठीक लागत-व्यय नहीं निकाला जा सकता। रेलवे का अधिकांश व्यय स्थिर व्यय होता है जो यातायात की घटा-बढ़ी के साथ नहीं घटता-बढ़ता। इस स्थिर व्यय को यातायात की इकाइयों में न्यायोचित ढंग से बाँटना और भी कठिन है, इसके लिए कोई वैज्ञानिक ढंग नहीं। अनुमान ही लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किराया भाड़ा पहिले निश्चित करना पड़ता है, और उस दर के अनुसार कितना यातायात रेल द्वारा ले जाने के लिए आयगा और उस यातायात को ले जाने में रेल को कितना व्यय करना पड़ेगा यह सब बाद में मालूम पड़ता है।

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त, लागत व्यय के अनुसार रेल का किराया भाड़ा निश्चित करना, रेल, देश, तथा उपभोक्ता तीनों के लिए हानिकारक है। क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार रेलों से अधिक से अधिक लाभ नहीं उठाया जा सकता। उदाहरण के लिए, मान लीजिये कि २० मन वस्तु १०० मील दूर ले जाने में रेल को १६०) रु० खर्च पड़ते रहें तो लागत व्यय के हिसाब से ८) रु० मन भाड़ा हो गया। अब मान लीजिये कि इस २० मन में १५ मन कोयला है और ५ मन सोना। सोना भेजने वाला ८) रु० मन के हिसाब से ४०) रु० सोने का भाड़ा देगा परन्तु कोयले वाला ८) रु० मन के हिसाब से भाड़ा न दे सकेगा क्योंकि वह दूसरे स्थान पर बहुत तेज पड़ेगा। इस प्रकार कोयला वहाँ का वहीं पड़ा रहेगा, उसका स्थानान्तर न हो सकेगा। इसके परिणाम स्वरूप कोयले का स्थानान्तर न होने के कारण कोयले के उद्योग में बड़ी भारी शिथिलता आ जायगी, यह उद्योग ही समाप्त हो जायगा, बहुत से आदमी बेरोजगार हो जायेंगे। जहाँ कोयला न पहुँचेगा वहाँ के कल-कारखानों को शक्ति न मिलने के कारण, अपना काम बन्द कर देना पड़ेगा, वहाँ भी बेरोजगारी फैल जायगी, तथा उस स्थान के आर्थिक विकास में बाधा पड़ेगी। इसके साथ ही साथ रेलवे को काम कम मिलेगा, रेलवे केवल सोना ही ले जा सकेगी, और पूरे १६० रु० सोने वाले से ही वसूल करने पड़ेंगे। इससे सोने वाले को लाभ कम रहेगा

और उसका व्यापार भी शिथिल हो जायगा। इसके विपरीत यदि रेलवे विभेदात्मक नीति का (policy of discrimination) अनुसरण करे और कोयले वाले से २) रु० मन तथा सोने वाले से २६) रु० मन भाड़ा ले, तो दोनों का काम चल जाय। कोयला वाला २) रु० मन आसानी से दे सकेगा, और रेलवे को १५ मन कोयले के ३०) रु० मिल जायँगे। सोने वाला भी ३२) रु० मन न देकर २६) रु० मन के हिसाब से भाड़ा दे देगा। वह १३०) रु० देगा, रेलवे को कुल १६०) रु० मिल जायगे। सोने वाले को ३०) रु० का लाभ हो जायगा। १५ मन कोयला ३०) रु० में ही दूसरी जगह पहुँच जायगा। इस प्रकार विभेदात्मक नीति से सबको लाभ होगा। यदि इस नीति का अनुसरण न करके लागत मूल्य के आधार पर भाड़ा लिया जाय तो हो सकता है कि भाड़ा-दर कम होने से कुछ थोड़ी सी मूल्यवान वस्तुओं का यातायात बढ़ जायगा, किन्तु यह वृद्धि उतनी नहीं होगी जो अनेक सस्ते मूल्य की वस्तुओं के यातायात बन्द होने की कमी की पूर्ति कर सके। इसके साथ ही साथ जीवनोपयोगी अनिवार्य वस्तुओं का परिवहन बहुत कम हो जायगा। उद्योगों के लिये कच्चा माल, शक्ति के लिए कोयला आदि का स्थानान्तर भी कम हो जायगा, इसका औद्योगिक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। बहुत से क्षेत्र अविकसित पड़े रह जायँगे। रेलों को पूरा ट्रैफिक न मिलने के कारण काफी आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी, इन सब बातों से यह सिद्ध है कि रेलों के किराये भाड़े में समानता स्थापित करना अवांछनीय है। इसके विपरीत विभेदात्मक नीति जिसके अनुसार वस्तु की क्षमता के आधार पर(what the traffic will bear) ही भाड़ा लगाया जाना चाहिये। इसके अनुसार मूल्यवान वस्तुएँ तथा धनी यात्री अधिक भाड़ा देने की क्षमता रखते हैं उनसे अधिक से अधिक भाड़ा लिया जाना चाहिए, शेष से कम जैसा कि ऊपर सोने तथा कोयले के उदाहरण से स्पष्ट किया गया। ऐसा करने में यातायात के व्यय का विशेष ध्यान नहीं रक्खा जा सकता।

Q. 23. Discuss the arguments in favour of leveying tapering rates on long distance traffic (A.U. 1946)

Q. 24. Examine briefly the principle features of flat or horizontal rate structure on Indian railways and indicate the advantages of replacing it by telescopic class rate structure on a continuous mileage basis with a view to adopting railway rating policy to present day conditions (A.U. 1949)

Q. 25. Minimum wage legislation in India does not altogether mitigate variations between regions but it will help to reduce the wage disparties within each region especially in sweated occupations. Discuss fully the above statement and point out the steps taken by the Governments. of different states in India to achieve the objects underlying this legislation (A.U. 1953.)

Q. 26. Discuss why cost of carriage, equal mileage, postal principle and zone system, have been advocated and yet discarded as methods of charging railway rates and fares (A.U.1954)

दूरी के आधार पर भाड़ा-दर प्रायः तीन प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है—

(१) (Flat or equal mileage rate) निश्चित प्रति मील दर—इसके अनुसार भाड़ा प्रति मील के हिसाब से निश्चित रहता है और वह दूरी के हिसाब से घटता

व बढ़ता है। इसकी घटा-बढ़ी ठीक दूरी के आधार पर होती है, २० मील का भाड़ा १० मील के भाड़े से ठीक दो गुना होगा तथा ४० मील के भाड़े से ठीक आधा। यदि किसी चीज का भाड़ा एक आना प्रति मील है तो २० मील का भाड़ा २० आने, १० मील का भाड़ा १० आने तथा ४० मील का भाड़ा ४० आने होगा। हिसाब लगाने में तो यह भाड़ा नीति सरल तथा अच्छी मालूम पड़ती है पर वैज्ञानिक दृष्टि से यह ठीक प्रतीत नहीं होती दूरी बढ़ने से व्यय कम होता जाता है, ऐसी दशा में कम दूरी तथा अधिक दूरी का एक ही दर से भाड़ा लेना असंगत मालूम पड़ता है।

दूसरी पद्धति (tapering rate) शुण्डाकार भाड़ा है, इस रीति से लगाए गये भाड़े की दर दूरी की वृद्धि के साथ घटती जाती हैं। ४० मील का भाड़ा १० मील के भाड़े से ठीक चार गुना न होकर उससे कुछ कम ही रहेगा। इस प्रकार के भाड़ा दर से दूर के यातायात को प्रोत्साहन मिलता है। इसे (telescopic) भाड़ा भी कहते हैं। इससे यातायात की वृद्धि होती है देश की आर्थिक उन्नति में सहायता मिलती है।

तीसरी पद्धति प्रादेशिक भाड़ा (zone rate) है। इस प्रणाली के अन्तर्गत किसी रेलवे लाइन को विभिन्न क्षेत्रों में बांट दिया जाता है, और प्रत्येक क्षेत्र का एक किराया निश्चित कर दिया जाता है और उस क्षेत्र के अन्तर्गत वही किराया लिया जाता है। उस क्षेत्र के अन्तर्गत दूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता। डाक महसूल इसी प्रणाली के अनुसार लगाया जाता है। डाक चाहे १० मील जाय अथवा ५० मील या १०० मील, महसूल एक ही देना पड़ेगा। भाड़ा लगाने का यह एक अत्यन्त सरल ढंग है।

इन तीनों प्रयोगों में से tapering rate ही सब से उत्तम मालूम पड़ता है। equal mileage rate से अधिक दूर जाने वाली वस्तुओं पर अधिक बोझ पड़ता है तथा zone rate से कम दूर जाने वाली वस्तुओं पर अधिक बोझ पड़ता है, tapering rate से दोनों का बोझ हलका हो जाता है। इसके आधार पर equal mileage rate के अनुसार दूर जाने वाली वस्तुओं को अधिक भार नहीं सहना पड़ता न zone rate के अनुसार कम दूर जाने वाली वस्तु को अधिक भार सहना पड़ता हैं। इसके विपरीत tapering rate के अन्तर्गत दोनों प्रकार की दूरी को भेजी जाने वाली वस्तुओं को लाभ रहता है क्योंकि इस प्रणाली के अनुसार दूरी में वृद्धि के अनुसार भाड़ा-दर घटती जाती है।

संक्षेप में equal mileage rate के दोष निम्नलिखित हैं—

(१) यह रीति न्याय संगत नहीं है, दूरी वृद्धि के साथ व्यय कम हो जाता है। परन्तु भाड़ा वही बना रहता है। अतः कम दूर भेजी जाने वाली वस्तु पर अधिक भाड़ा होना चाहिए और अधिक दूर भेजी जाने वाली वस्तु पर कम। लेकिन इस प्रणाली के अनुसार दोनों पर एक ही भाड़ा लिया जाता है जो कि अनुचित है।

(२) यह अधिक दूरी वाले ट्रैफिक को हतोत्साह करता है, इस प्रकार के ट्रैफिक विशेष कर कम कीमत वाली वस्तुएँ अधिक दूर जाने में इतने अधिक भाड़े को वहन नहीं कर सकतीं इसके फलस्वरूप या तो इस प्रकार का ट्रैफिक कम हो जायगा या दूसरे स्थानों में इसकी कीमत अधिक होने के कारण, वहाँ माँग कम हो जायगी

अथवा साधारण व्यक्तियों को अपने बजट में हेर-फेर करना पड़ेगा, हर हालत में इससे रेलवे को व जनता को हानि होगी। रेलवे की आमदनी कम हो जायगी।

इसी प्रकार zone rate के अनुसार यदि भाड़ा लिया जाय तो उसमें थोड़ी दूर जाने वाली वस्तु पर अधिक भार पड़ता है, अतः इस प्रकार का ट्रैफिक कम हो जायगा, रेलवे को हानि होगी, उपभोक्ताओं को वस्तु के समीप होने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसके साथ ही साथ अधिक दूरी वाले ट्रैफिक की अपेक्षा कम दूरी वाले ट्रैफिक के साथ अन्याय भी होगा। यदि किसी वस्तु को दो zones के मध्य भेजने का प्रश्न हो तो इसके साथ और भी अधिक अन्याय होता है।

Tapering rate से उपर्युक्त सारे दोष दूर हो जाते हैं, कम दूरी वाले ट्रैफिक पर अधिक भाड़ा तथा अधिक दूरी वाले ट्रैफिक पर कम भाड़ा लेकर दोनों प्रकार के ट्रैफिक को प्रोत्साहन मिलता है, रेल को अधिकतम कार्य मिल जाता है जिससे उसकी आय अधिक होती है और किसी भी प्रकार के ट्रैफिक के साथ अन्याय नहीं होता।

इन रीतियों के अतिरिक्त group rate के अनुसार किसी क्षेत्र के अन्तर्गत अनेक स्थानों का एक समुदाय मान लिया जाता है जिनमें से सभी स्थान भेजने वाले स्थान से एक-सी दूरी पर नहीं होते परन्तु उन स्थानों तक वस्तुओं के भेजने का भाड़ा एक ही होता, दूरी का कोई विचार नहीं रक्खा जाता. यह भाड़ा प्रायः कम से कम दूरी वाले स्थान के बराबर होता है, इससे रेल कर्मचारियों को सुविधा तो होती है लेकिन अधिक दूर भेजी जाने वाली वस्तुओं की अपेक्षा कम दूर वाले ट्रैफिक के साथ अन्याय ही रहता है इस दोष को दूर करने के लिए विभिन्न स्थान प्रायः एक ही दूरी के रक्खे जाते हैं लेकिन इसमें बिल्कुल समता नहीं हो पाती।

Block rate के अनुसार अक्षांस तथा देशान्तर रेखाओं के अनुसार छोटे-छोटे वर्ग (blocks) बना दिये जाते हैं। इन वर्गों के स्टेशनों के अनुसार उपवर्गों में बाँटा जाता है तथा वर्ग से वर्ग एवं उपवर्ग से उपवर्ग के लिए अलग-अलग दरें निर्धारित कर दी जाती हैं। इस प्रकार के वर्ग बनाने में आर्थिक एवं परिवहन सम्बन्धी विशेषताओं का कोई विचार नहीं किया जाता अतः इसमें भी आर्थिक दृष्टि से किसी ट्रैफिक के साथ अन्याय हो जाता है।

Special rate के अन्तर्गत विशेष परिस्थितियों में विशेष प्रकार के स्थानीय यातायात को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष प्रकार का सस्ता भाड़ा लिया जाता है। यह रीति विशेष परिस्थितियों के लिए ही है, सामान्य रूप से यह नहीं अपनाई जा सकती। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि tapering rate ही सबसे अधिक उपयुक्त है।

भारतीय रेलों के भाड़े का इतिहास प्रायः अन्य देशों की रेलों के भाड़े के अनुसार ही रहा है। प्रारम्भ में यहाँ की दरें भी ऊँची थीं। सन् १८८३ में भाड़े सम्बन्धी नीति का नियमानुसार नियन्त्रण किया गया तथा उसमें यथा सम्भव एकरूपता स्थापित की गई। telescopic rates पालन करने की नीति को उचित मान लिया गया। सन् १८८७ में भारतीय सरकार द्वारा नई नीति की घोषणा की गई जिसके अनुसार भारतीय रेलों को दूरी के अनुपात से (mileage rates and fares) तथा सीमान्त भाड़े (terminal charges) के आधार पर भाड़ा लगाने का अधिकार दिया गया। उच्चतम तथा न्यूनतम सीमाओं के घटाने व बढ़ाने का अधिकार भी मिला। सन्

१८९० में उच्चतम तथा न्यूनतम भाड़े निर्धारित कर दिये गये । इसमें विशेष वर्गों को छोड़कर अन्य वर्गों के उच्चतम व न्यूनतम भाड़े एक से ही थे जो अनुचित था अतः १८९१ में उनमें संशोधन किया गया । बाद में रेलों द्वारा block rates चालू किये गये जिनके कारण यातायात के स्वाभाविक मार्ग में बाधा हुई । सन् १९१० में Indian railway conference association द्वारा तैयार किया गया । एक सामान्य वर्गीकरण कुछ रेलों ने लागू किया । सन् १९१५ में इस सामान्य वर्गीकरण को संशोधित रूप में रैलवे बोर्ड ने स्वीकार किया । १९१७ में भाड़े की दरें बढ़ा दी गईं । सन् १९२१ में इसमें और भी वृद्धि की गईं । अकवर्थ कमेटी ने भी भाड़ा वृद्धि नीति का समर्थन किया फलतः १९२२ में भाड़ों की उच्चतम दरों में १५ से २५ प्रतिशत की वृद्धि की गई, न्यूनतम दरों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया । उपर्युक्त सुधारों से भी भाड़ा पद्धति में विशेष उचित परिवर्तन नहीं हुआ । इसके अनुसार अनेक न्यूनतम भाड़े लागत व्यय से भी नीचे पहुँच गए । आर्थिक मन्दी के कारण रेलों ने अपने किराये भाड़े और भी बढ़ाने प्रारम्भ किए । इन सब कारणों से रेलों की भाड़े सम्बन्धी नीति की कड़ी आलोचना होने लगी और १९३६ ई० में वर्गीकरण में परिवर्तन किया गया । दस के स्थान पर १६ वस्तु वर्ग कर दिये गये । परन्तु यह परिवर्तन भी उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ । द्वितीय युद्ध प्रारम्भ होते ही १९४० ई० में भाड़ा फिर बढ़ा दिया गया । परन्तु इस समय तक देश की अर्थ व्यवस्था में भारी परिवर्तन हो गया था । औद्योगिक संगठन तथा व्यापार व्यवस्था का रूप काफी बदल चुका था । इन परिस्थितियों में बहुत दिनों से चली आई भाड़ा पद्धति में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई । इस समय तक यद्यपि भारतीय रेलवे की भाड़ा नीति में कई बार परिवर्तन हो चुके थे । फिर भी यह पद्धति दोषपूर्ण ही बनी रही ।

आधारभूत वर्ग-भाड़े, क्लास रेट्स, दूरी के अनुपात से घटते-बढ़ते थे । इसमें वस्तुओं की वहन शक्ति के सिद्धान्त का कोई विचार न किया गया था । वर्ग भाड़ों के समानान्तर होने के कारण उनसे विचलन अनिवार्य हो गया । कभी-कभी वस्तुओं का वर्गीकरण बदलना पड़ता था । Scheduled rates का प्रयोग करना पड़ता था । स्टेशन रेट देने पड़ते थे । इस प्रकार भाड़ों मे विषमता बढ़ती जाती थी और कार्य प्रणाली भी कठिन तथा जटिल होती जाती थी । विशेष प्रकार के अथवा स्टेशन से स्टेशन तक के भाड़े प्रायः अनिश्चित होते थे । इन भाड़ों को ज्ञात करने में व्यापारी वर्ग को अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था । terminal charges तथा transhipment charges में किसी प्रकार की एकरूपता व साम्यता नहीं थी । इन सब दोषों को दूर करने के लिए सन् १९४४ ई० में भारतीय रेल सम्मेलन ने कार्य प्रारम्भ किया और विशेषज्ञों की सहायता से भारतीय भाड़ा पद्धति की एक नवीन रूप-रेखा प्रस्तुत की गई । जिसे भारतीय सरकार ने स्वीकार कर लिया और वह अक्तूबर १९४८ ई० से लागू कर दी गई ।

इस भाड़ा पद्धति से प्राचीन पद्धति के बहुत से दोष दूर हो गए हैं । अब भाड़े दूरी के अनुपात से घटने बढ़ने के बजाय दूरी के बढ़ने के साथ घटते जाते हैं । औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए डब्बे भरे माल के लिए तेरह नई अनुसूचियाँ telescopic आधार पर प्रस्तुत की गई हैं । उच्चतम भाड़ों की वृद्धि के साथ नवीनतम भाड़ों में भी वृद्धि की गई है । इस प्रकार रेलों की पक्षपात प्रणाली में काफी कमी हो गई है । अब सारी रेलें यातायात प्रेषण की दृष्टि से एक इकाई मानी जाती है । इसलिए continuous mileage के अनुसार भाड़े

लगाए जाने लगे हैं। इससे बीच में नये सिरे से भाड़े लगाये जाने की आवश्यकता दूर हो गई है। अब विशेष प्रकार के वर्ग-भाड़े scheduled rates तथा स्टेशन से स्टेशन तक के भाड़े की पद्धतियाँ समाप्त कर दी गई हैं। इसी प्रकार short distance charges, terminal charges, transhipment charges इत्यादि की विषमता हटा कर इनमें एकरूपता स्थापित कर दी गई है। वर्ग संख्या १६ से घटाकर १५ कर दी गई है। वर्गों के नाप सरल कर दिये गये हैं। नई भाड़ा पद्धति के अनुसार कम से कम दूरी वाले मार्ग से माल ले जाने का प्रयत्न किया जाता है। Rate registers छाप दिये गये हैं जिससे कर्मचारियों की कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं।

इन सुधारों तथा परिवर्तनों के होते हुए भी व्यापारी वर्ग तथा उद्योगपति नवीन प्रणाली से भी संतुष्ट नहीं हैं। एक तो इन लोगों से किसी प्रकार की सलाह नहीं ली गई थी। दूसरे, रेल दायित्व तथा स्वामी दायित्व सम्बन्धी भाड़ों का अन्तर अभी भी आवश्यक जोखिम से अधिक बतलाया जाता है। और यह पद्धति अब भी उचित रूप से सरल व वैज्ञानिक नहीं है। इसलिए इसे अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सम्बन्धित व्यक्तियों का सुझाव है कि एक केन्द्रीय भाड़ा निर्धारण समिति की स्थापना की जाय, जो रेल भाड़ा पद्धति के नए स्वरूप को अधिक वैज्ञानिक बना सके। नवीन भाड़ा पद्धति से उद्योग और व्यापार को कुछ हानि ही हुई है। विशेष भाड़े की प्रथा का अन्त करने से शिशु उद्योगों को विकसित होने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। औद्योगिक विकास के लिये प्रारम्भ में विशेष प्रकार के सस्ते भाड़ों का प्रचलन आवश्यक है। इस व्यवस्था में थोड़ी दूर के यातायात के भाड़े पहिले से अधिक हो गए हैं। एक तो telescopic पद्धति के अनुसार थोड़ी दूर का भाड़ा अपेक्षाकृत अधिक है। terminal charges एक से हो जाने से उनका भार कम दूरी के यातायात पर अधिक पड़ गया है।

इन सब दोषों को दूर करना भी औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक है। रूप रंग और आकार को देख कर सब वस्तुओं को कुछ वर्गों में विभाजित कर लिया जाना चाहिए, फिर उनकी देय शक्ति के अनुसार भाड़े निर्धारित किये जाने चाहिये। वास्तव में कोई भी भाड़ा दर प्रणाली बहुत काल के लिये स्थिर रूप से निश्चित नहीं की जा सकती। आर्थिक संगठन में परिवर्तन होने के साथ-साथ यातायात सेवा की माँग में भी परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन का ध्यान भाड़ा निर्धारण करते समय अवश्य रक्खा जाना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब भाड़ा दर प्रणाली में समय-समय पर परिवर्तन होता रहे।

Q. 27. Write notes on—
(1) Railway fares for passengers.
(2) Freights in motor transport in India.
(3) Railway freight charges are based upon both tariff and contract.
(4) The importance of overhead costs in
a. Tramway
b. Motor bus undertaking.

(1) Railway fares for passengers.

यात्रियों के भाड़े की समस्या वस्तु भाड़ा समस्या से भिन्न है। यात्रियों के सम्बन्ध में बहुत सी सेवाएँ अर्पित नहीं करनी पड़ती जिनका अर्पण करना वस्तुओं के यातायात में अनिवार्य हो जाता है। वस्तुओं को गाड़ी में रखना, उतारना, ढकना,

न ढकना, एकत्रित करना, उपयुक्त व्यक्तियों को सौंपना आदि अनेक कार्य रेलवे कम्पनी को करने पड़ते हैं। इस प्रकार की सेवाओं की आवश्यकता यात्रियों के संबंध में नहीं पड़तीं। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के सम्बन्ध में एक प्रकार का अनिवार्य वर्गीकरण कर दिया जाता है कि अमुक वस्तु अमुक वर्ग की मानी जायगी। यात्रियों के लिये ऐसा नहीं किया जा सकता। हम किसी यात्री से यह नहीं कह सकते कि तुम्हें प्रथम श्रेणी में ही जाना पड़ेगा। वस्तु की श्रेणी निर्धारित होती है और उसी श्रेणी के हिसाब से उसे भाड़ा देना पड़ता है। यात्री अपनी श्रेणी स्वयं निर्धारित करता है। फिर उसे उसके अनुसार भाड़ा देना पड़ता है। यात्री-भाड़ा-निर्धारण-समय रेलवे कम्पनी आर्थिक उद्देश्यों के अतिरिक्त सामाजिक उद्देश्यों का भी ध्यान रखती है। उदाहरणार्थ. विद्यार्थियों, मजदूरों के लिए सस्ते टिकट प्रचलित कर सकती है। इसी प्रकार प्रदर्शनी आदि के लिए तथा अन्य यात्राओं के लिए सस्ते टिकटों का चलन हो सकता है। वस्तु भाड़ा निर्धारण के सम्बन्ध में केवल आर्थिक उद्देश्य ही रहता है कि कैसी भाड़ा नीति रहे जिससे कम्पनी को अधिकाधिक आय हो साथ ही साथ अधिकाधिक वस्तुओं का यातायात हो सके।

यात्रियों के वर्गीकरण व उनके भाड़ा निर्धारण में कई प्रणालियाँ प्रयोग में लाई जा सकती हैं। यात्रियों को थोड़ी श्रेणियों में बाँटा जाय परन्तु, प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत भाड़े की दरें बहुत हो, अथवा यात्रियों की श्रेणियाँ बहुत हो, फिर हर श्रेणी में दरों की विभिन्नता कम हो। वर्गीकरण की कोई सी प्रणाली क्यों न अपनाई जाय किसी श्रेणी का चुनना हर यात्री की स्वेच्छा पर निर्भर होता है। इसलिए वह अपनी श्रेणी चुनते समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखता है।

(१) वह किसी यात्रा के लिए कितना धन दे सकता है।
(२) यात्रा करने में उसे कितना आराम व सुविधाएँ चाहिये।
(३) कितने समय में वह अपनी यात्रा पूरी कराना चाहता है।

विशेष परिस्थितियों में इन विचारों के अतिरिक्त यात्री को कुछ अन्य बातों का भी ध्यान करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, द्वितीय महायुद्ध के समय जब भारतीय रेलों में अधिक से अधिक भीड़ें चला करती थीं बहुत से यात्री टिकट न ले सकने के कारण स्थान न पाने के डर से, स्त्रियों के साथ होने के कारण निम्न श्रेणी का टिकट न लेकर किसी उच्च श्रेणी का टिकट लिया करते थे। यद्यपि ऐसा करना उनकी शक्ति के बाहर था उन्हें उच्च श्रेणी की आवश्यकता न होती थी। इस प्रकार श्रेणी निर्धारण के समय यात्रियों को परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है।

भाड़ा निर्धारण करते समय कभी-कभी दूरी का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसके अनुसार flat rate, zone system of rate व tapering rate के आधार पर किराया निर्धारित किया जाता है।

Flat rate के अनुसार भाड़ा दूरी के आधार पर बढ़ता चला जाता है। यदि ८ पा० प्रति मील भाड़ा है तो १२ मील के ८ आने व २४ मील के १) रु० इत्यादि होता चला जाता था।

दूसरी प्रणाली के अनुसार दूरी विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित कर दी जाती है। एक क्षेत्र एक zone समझा जाता है और उसके अन्तर्गत कहीं भी यात्रा की जाय भाड़ा एक ही प्रकार का होता है। इसमें दूरी का प्रश्न नहीं उठता।

तीसरी प्रणाली के अनुसार दूरी अधिक होने के साथ-साथ भाड़ा दर प्रति मील

घटता जाता है। किसी-किसी जगह पर भाड़ा निर्धारण के समय किसी एक बात का ध्यान न रख कर सब बातों का ख्याल रक्खा जाता है।

भाड़ा निर्धारण करते समय सेवा व्यय का भी ध्यान रखना पड़ता है। दूरी के आधार पर भाड़ा निर्धारण करने के पश्चात् यह निश्चय करने के लिए रह जाता है कि यात्रियों से किस दर से भाड़ा लिया जाय। यात्रियों के यातायात के सम्बन्ध में ये निश्चय करना कठिन है कि उनके यातायात में कितना व्यय होता है। क्योंकि प्रत्येक गाड़ी के चलाने में दो प्रकार का व्यय सम्मिलित होता है। (१) सामान्य (२) विशेष, और इन दोनों में मिलाकर जितना व्यय होता है उसी के आधार पर यात्रियों से भाड़ा लिया जा सकता है। यात्रियों से कुल मिलाकर केवल उतना ही भाडे के रूप में नहीं लेना है कि जितना उस शेष गाड़ी के चलाने में खर्च होना है, वरन उससे कुछ अधिक, जो सामान्य व्यय में कुछ अदा कर सके। चूँकि सामान्य व्यय के वर्गीकरण के लिये भी कोई निश्चित वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं है इसी प्रकार किसी गाड़ी के चलाने का सम्पूर्ण व्यय भली-भाँति निश्चित नहीं किया जा सकता। फिर भी कुछ परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न श्रेणी के यात्रियों का भाड़ा निर्धारित किया जा सकता है और इसमें विभिन्न श्रेणी के यात्रियों को प्रदत्त सुविधाओं का ध्यान रखना भी आवश्यक हो जाता है। विभिन्न श्रेणी के भाड़ा निर्धारण में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना आवश्यकीय होता है। यदि ट्रैफिक अधिक मिले, गाड़ियों के आने-जाने में समय कम लगे, गाड़ियाँ इधर-उधर कम खड़ी हों, स्टेशन व रेलवे लाइन पूर्ण रूपेण कार्य में लाई जा सकें तो यात्रियों के ले जाने का व्यय कम पड़ता है। उसी प्रकार यदि अनेक यात्री सदैव बहुत संख्या में यात्रा करते रहें तो इससे भी यात्रा व्यय कम पड़ता है। इसी प्रकार यदि कोई विशेष रियायत वाला टिकट बाँट लिया जाय तो वह भी मामूली टिकट से सस्ता पड़ता है। उदाहरण के लिए, ६ माह का टिकट ३ माह वाले से, और १२ माह का ६ माह के टिकट से सस्ता पड़ता है। सीजन के टिकट अधिक निश्चितता तथा (regularity) के कारण कम खर्चीले होते हैं। इस प्रकार ट्रैफिक का परिमाण भाड़ा निर्धारण में काफी प्रभाव डालता है। जितना ज्यादा ट्रैफिक होता है उतना ही कम व्यय पड़ता है।

इसी प्रकार भाड़ा अदा करने की शक्ति भी भाड़ा निर्धारण करने में काफी प्रभाव डालती है। ऐसा हो सकता है कि गाड़ियों में काफी भीड़ करने के लिए भाड़ा कम कर दिया जाय। लेकिन ऐसे अवसरों पर माँग पक्ष पर ध्यान देना भी आवश्यक हो जाता है। माँग पक्ष की ओर से यह देखना पड़ता है कि किस समय किस-किस प्रकार के यात्री कितना-कितना भाड़ा देकर अधिक से अधिक संख्या में यात्रा कर सकते हैं। और इसी शक्ति के आधार पर बहुत से अवसरों पर भाड़ा घटाकर सस्ते टिकट चालू कर दिए जाते हैं जिससे रेल-सेवा की माँग अधिकाधिक बढ़ सके, अधिकाधिक संख्या में लोग सस्ते टिकट खरीदें और इस प्रकार रेलों की आय बढ़ावें।

(2) Freights motor transport in India.

भारत में मोटर यातायात के सम्बन्ध में संयुक्त लागत व्यय की कोई समस्या नहीं है क्योंकि यहाँ पर प्रत्येक मोटर या तो केवल सवारियाँ लादती है या केवल माल ढोती है। प्रत्येक यात्रा का व्यय अलग से ज्ञात हो जाता है। घिसावट व्यय तथा ब्याज की रकम भी आसानी से निर्धारित की जा सकती है। अन्य प्रकार के व्यय भी आसानी से मालूम किये जा सकते हैं। कुछ अनुमानों के आधार पर इस

देश में मोटर यातायात का प्रतिमील व्यय निकाला गया है और वह लगभग ६ पैसे प्रतिमील प्रतियात्री एक साधारण मोटरगाड़ी के लिये पड़ता है। मोटर यातायात का प्रबन्ध भी सरल है और प्रत्येक प्रबन्ध का क्षेत्र भी सीमित है। इसलिये प्रबन्ध पर किया गया व्यय भी सरलता से ज्ञात हो जाता है। इन दोनों के आधार पर मोटर भाड़ा आसानी से निर्धारित किया जाता है। मोटर यातायात के व्यय में कर एक मुख्य स्थान रखता है। विशेषकर पैट्रोल कर के कारण मोटर यातायात पर कर का भार अधिक पड़ता है। पैट्रोल के स्थान पर यदि डीजल आयल का प्रयोग होने लगे तो कर-भार कम हो जाता है। यह कर का भार बड़ी-बड़ी गाड़ियों के प्रयोग से भी हलका हो जाता है। लेकिन बड़ी गाड़ियों का प्रयोग तभी सम्भव है जबकि पूँजी पर्याप्त मात्रा में हो। ट्रैफिक भी बहुत हो और सड़कें अच्छी हों। भारत में मोटर न बनने के कारण भी यहाँ पर मोटर संचालन व्यय तथा भाड़ा अधिक है। मोटर भाड़ा निर्धारण करने में अनुभव का सिद्धान्त ही मुख्य सिद्धान्त है, पहिले अनुमान से यातायात व्यय निकाला जा सकता है और उसके आधार पर भाड़ा निर्धारित किया जाता है। इसके पश्चात कुछ अनुभव प्राप्त कर लेने के बाद भाड़े में कमी-बेशी की जाती है।

(3) Railway freight charges are based upon both tariff and contract.

जनसेवी उद्योग साधारण तौर पर प्राकृतिक एकाधिकार के रूप में होते हैं। रेलवे भी एक प्रकार की public utility उद्योग तथा एकाधिकार उद्योग है। विभिन्न रेलवे कम्पनियों में प्रायः प्रतिस्पर्धा कम रहती है। इससे वे अपने भाड़े एकाधिकारी परिस्थितियों में निश्चित करती हैं। परन्तु उनका एकाधिकारी अधिकार अपूर्ण होता है। उन्हें यातायात के अन्य साधनों की प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। फिर भी वे कुछ एकाधिकारी अधिकारों का प्रयोग करती ही हैं। कम से कम उनका एकाधिकार अधिकार यदि पूर्ण नहीं है तो सीमित अवस्था में तो है ही। इसलिए वे अपने भाड़ा निर्धारण करने में tariff तथा contract दोनों उपायों का प्रयोग करती हैं। टैरिफ के आधार पर भाड़ा निर्धारण करने में वे यातायात सेवा का उपयोग करने वाले पक्षों की क्रय शक्ति का ध्यान रखती हैं। और जो भाड़ा दर वे निर्धारित करती हैं उनकी एक सूची बनाई जाती है और इसी सूची को टैरिफ कहते हैं। इस टैरिफ में भाड़ा दर सम्बन्धी बहुत से नियम व उपनियम दिए होते हैं। टैरिफ के अनुसार भाड़ा निर्धारण वहाँ उन उद्योगों में होता है जहाँ कि यातायात सेवा का उपयोग करने वाले बहुत होते हैं। क्योंकि जब पूर्ति करने वाले के पास कुछ सीमा तक एकाधिकारी अधिकार होता है तभी टैरिफ प्रथा के अनुसार भाड़ा निश्चित किया जा सकता है। contract method के अनुसार किसी वस्तु की कीमत आपसी समझौते के आधार पर निश्चित की जाती है और यह प्रथा उन परिस्थितियों में अपनाई जाती है जहाँ क्रय-विक्रय करने वाले दोनों पक्ष एक ही शक्ति के होते हैं। यात्रियों के भाड़ा निर्धारण करने में tariff method ही उचित समझा जाता है क्योंकि यात्री लोग इसी प्रकार की छपी छपाई सूचियों को अधिक पसन्द करते हैं। सामान के लिए यद्यपि भाड़ा विभिन्न परिस्थितियों के कारण भिन्न होता है परन्तु इसमें भी किसी प्रकार के bargaining का अभाव ही रहता है। इस प्रकार एकाधिकारी अधिकार प्राप्त करने के कारण रेलवे कम्पनियाँ टैरिफ के आधार पर ही भाड़ा निर्धारित करती है। और विशेष व्यक्तियों के साथ समझौता करके भाड़ा निर्धारण प्रणाली यथा संभव नहीं अपनाई जाती। यदि कभी किसी रेलवे के एकाधिकारी अधिकार में कमी हो जाय तो फिर कुछ न कुछ समझौता भी करना

पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि यदि रेलों को पूर्ण प्रतिस्पर्धा की परिस्थिति का सामना करना पड़े तो टैरिफ प्रथा के अनुसार भाड़ा वसूल नहीं किया जा सकता। उस परिस्थिति में तो bargaining प्रथा का ही सहारा लेना पड़ेगा, क्योंकि इस दशा में कोई भी व्यापारी कम से कम भाड़ा देने का प्रयत्न करेगा और वह यातायात के उसी साधन को अपनाएगा जो कम से कम भाड़ा लेने को तैयार हो जाय। इस दशा में व्यापारी तो कम से कम भाड़ा देने का प्रयत्न करता है और रेलवे कम्पनी अधिक से अधिक लेने का प्रयत्न करती है। और बाद में जिस दर पर समझौता हो जाता है वही भाड़ा दर निश्चित की जाती है। ऐसी दशा में यदि रेलवे कम्पनियों के पास व्यापारियों की माँग अधिक है तो भाड़ा दर ऊँची रहेगी। यदि माँग कम है तो भाड़ा दर नीची रहेगी। चूँकि माँग सब काल स्थिर नहीं रहती, इसलिये भाड़ा दर में परिवर्तन होता रहेगा और यह उद्योग के उचित विकास के लिये ठीक नहीं है। भाड़ा दर में काफी स्थिरता होनी चाहिए जिससे व्यापारी वर्ग को यह ज्ञान रहे कि उन्हें क्या देना है। इस प्रकार टैरिफ के आधार पर ही प्रायः रेलवे भाड़ा दर निर्धारण करती है विशेष कर ऐसी अवस्था में जहाँ उसे किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा का भय नहीं। प्रतिस्पर्धा की लेशमात्र आशंका होने पर contract का भी सहारा लेना पड़ता है।

(4) The importance of overhead costs in (a) Tramway (b) Motor bus undertakings.

ट्राम्वे यातायात का एक ऐसा साधन है जिसमें उसके चलाने में पहिले बहुत पूँजी लगा देनी पड़ती है। परन्तु एक बार जब पूँजी लग गई फिर उसे चाहे बड़े पैमाने पर चलाया जाय अथवा छोटे पैमाने पर, लगी हुई पूँजी पर कोई फर्क नहीं पड़ता। जो पूँजी लग चुकी है उसके व्याज आदि में जो कुछ व्यय होता है उस व्यय की मात्रा वही रहेगी चाहे ट्राम्वे का अधिक उपयोग किया जाय या कम, चाहे उसमें अधिक यात्री सफर करें या कम। इस प्रकार यह एक ऐसा उद्योग है जिसमें क्रमागत ह्रास व्यय नियम भली-भाँति लागू होता है। संचालन व्यय से सामान्य व्यय (over head cost) अधिक होता है, इसके साथ ही साथ एक ट्रामगाड़ी में एक मोटर बस की अपेक्षा अधिक सवारियाँ बैठाई जा सकती हैं अतः भाड़ा प्रति व्यक्ति कम होता है। जिस उद्योग में over head cost अधिक होता है उसमें उत्पादन यात्रा की वृद्धि के साथ लागत व्यय प्रति इकाई कम होता जाता है। मोटरगाड़ी की अपेक्षा ट्रामगाड़ी में यह नियम अधिकता से लागू होता है। इसके मार्ग निर्माण तथा बिजली के खम्भे व तार आदि लगाने में पहिले अधिक व्यय हो जाता है, बाद में प्रतिदिन का खर्च इसका बहुत थोड़ा रहता है। वह भी यात्रियों की संख्या के साथ बढ़ता नहीं है, अतः यात्रियों की संख्या जितनी अधिक होगी भाड़ा उतना कम होता जाता है।

मोटर यातायात में ट्राम गाड़ियों की अपेक्षा overhead cost बहुत कम होता है। व्यक्तिगत मोटर मालिकों को सड़क नहीं बनवानी पड़ती। जहाँ सरकारी मोटर गाड़ियाँ चलती हैं वहाँ सड़कें भी सरकारी ही होती हैं, परन्तु इसमें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि सरकार को सड़कें तो वैसे ही बनवानी पड़ती है चाहे उन पर मोटर गाड़ियाँ चलें या न चलें। सभ्य समाज के लिए सड़कें आवश्यक हैं। सड़कें मोटरगाड़ियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के यातायात के लिए भी उपयोगी होती हैं अतः यदि सड़क निर्माण व्यय मोटर यातायात पर डाला जाय, तो उसका कुछ भाग ही न्याय की दृष्टि से मोटर यातायात पर डाला जा सकता है। फिर सड़क निर्माण का व्यय भी कम होता है इस प्रकार मोटर यातायात में overhead cost कम

रहता है, इस कारण इसमें क्रमागत ह्रास व्यय नियम इस प्रकार से लागू नहीं होता जिस प्रकार से ट्रामगाड़ी व रेलगाड़ी में होता है। मोटरगाड़ी की इकाई छोटी होती है। एक मोटरगाड़ी में बहुत अधिक सवारियाँ नहीं बैठाई जा सकतीं। यदि यात्रियों की संख्या बढ़े तो दूसरी मोटरगाड़ी का प्रबन्ध करना पड़ेगा, जिससे संचालन व्यय में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। यदि किसी मोटर कम्पनी की १० मोटर गाड़ियाँ चलती हैं और दूसरी की ५ गाड़ियाँ तो पहिली कम्पनी को टूट-फूट के सम्भालने में, प्रबन्ध करने में तथा अन्य कारणों से लागत व्यय कुछ तो कम होगा परन्तु उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। इसलिए मोटर यातायात में क्रमागत ह्रास व्यय नियम का अधिक फायदा नहीं उठाया जा सकता। वैसे तो यात्रियों की संख्या की वृद्धि के साथ दोनों प्रकार के यातायात में लागत व्यय प्रति व्यक्ति कम होगा परन्तु ट्रामगाड़ी में अधिक, मोटरगाड़ी में कम। यदि यात्रियों की संख्या दुगनी हो जाय, जिससे दोहरा प्रबन्ध करना पड़े तो ऐसा करने में किसी का खर्च दुगना नहीं होगा। दुगने से कम ही होगा तथा ट्रामगाड़ी में मोटर गाड़ी की अपेक्षा और भी कम होगा। इन सब कारणों से ट्रामगाड़ी में औसत लागत व्यय मोटर गाड़ी की अपेक्षा कम रहता है।

ट्रामगाड़ी अपने रास्ते में एक प्रकार का एकाधिकार प्राप्त कर लेती है। इसमें प्रारम्भिक व्यय इतना अधिक होता है कि एक ही रास्ते पर दो कम्पनियाँ कार्य नहीं कर सकतीं अतः आपसी प्रतिस्पर्धा का प्रश्न नहीं उठता। हाँ, रेलवे तथा मोटर गाड़ियों से प्रतिस्पर्धा का डर रहता है अतः कोई भी ट्रामगाड़ी की कम्पनी मन चाहा भाड़ा नहीं ले सकती। परन्तु मोटर मालिकों की अपेक्षा कुछ मनमानी अधिक कर सकती है। ट्राम यातायात में सेवा व्यय का ठीक-ठीक पता लगाना रेलवे के समान ही कठिन है। इसके विपरीत मोटर यातायात में सेवा व्यय ठीक-ठीक अच्छी प्रकार तथा सुगमतापूर्वक निकाला जा सकता है।

CHAPTER V

Classifiacation of Goods and Minerals.

The railway classification of goods is the foundation on which the edifice of railway rates is built up, it is the frame work to which the tariffs or schedules of the rates are attached. In theory the value of service principle and the cost of service principle are to be considered in fixing railway charges, but in practice they are based on the system of differential charging, for which classification of goods and minerals is necessary. For an all round development of industry and trade proper classification is very important. A number of factors influence this classification, some of the most important of these are the following :—

The ability to pay, the bulk of an article in proportion to its weight, liability to damage, the method of packing, the time within which the traffic is to be conveyed, the size of the consignment, the type of wagons and other equipment, the regularity of the flow of traffic competition between carriers.

About the nature of classification it may be said that, "though we have personified the management and imagined a man fixing a system of railway rates, no one man and indeed no combination of men could erect such a system off-hand from the foundations. It can gradually grow, developing here and changing there, as the country itself develops and its industry and trade are modified by time and circumstances. Really speaking classification grows up as a result of experience and is ever changing in the light of further experience. Then no classification, at any time, can be all-inclusive. Sometimes commodity rates have to be offered irrespective of a particular classification. A commodity rate is quoted directly independent of classification and is almost always lower than the class rate it displaces.

The following are the important factors influencing classification :—

1. The ability to pay depending on the value of a commodity.
2. The bulk of an article in proportion to its weight.
3. Liability to damage.
4. The method of packing.
5. The time within which the traffic is to be conveyed.
6. The size of consignment.
7. The type of wagons and other equipment.
8. The regularity and continuity of traffic.
9. Competition.

Q. 28. Discuss the factors which affect the classification of goods for the purpose of fixing railways rates. (A. U. 1943).

Give Indian examples (A. U. 1948).

Q. 29. The railways classification of goods is the foundation on which the edifice of railway rates is built up, it is the frame work which rests on the well-known duel principles of 'cost' and 'value' of service. Examine this statement and give the factors which decide the classification of goods. (A. U. 1950).

Q. 30. The making of a freight classification is a public function. Discuss, and point out the various factors determining the classification of goods in India. (A. U. 1952).

वैर्गीकरण का आधार

यातायात की सुविधाएँ विशेष कर राष्ट्रीय हित की दृष्टि से प्रदान की जाती हैं। यद्यपि व्यक्तिगत कम्पनियाँ एवं व्यक्ति इनसे लाभ पाने की आशा रखते हैं और यातायात व्यवसाय में अधिकाधिक लाभ होता भी है। परन्तु यातायात का विकास एक राष्ट्रीय प्रश्न है, विशेषकर रेलवे यातायात। क्योंकि इसमें अधिक-से-अधिक पूँजी का नियोजन किया जाता है और इसमें नियोजित पूँजी अन्य किसी कार्य में नहीं लगाई जा सकती। इस कारण रेलवे का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि उससे अधिकतम लाभ प्राप्त हो और साथ ही साथ वह राष्ट्रीय उद्योगों के विकास में सहायक हो, अधिकतम यात्री तथा माल का स्थानान्तर सम्भव हो सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न उपाय कार्य में लाए जाते हैं। इनमें से वस्तुओं का वर्गीकरण एक प्रमुख उपाय है। यह वर्गीकरण एक ऐसा सार्वजनिक कार्य है, जिसका सफलतापूर्वक करना जनहित में एक विशेष स्थान रखता है। वस्तुओं का वर्गीकरण रेलवे-भाड़ा निर्धारण के लिए एक आधार के समान है जिस पर रेल-भाड़ा की सम्पूर्ण रूप-रेखा निर्मित की जाती है। वस्तु-वर्गीकरण की कार्य-प्रणाली सेवा-उत्पादन-व्यय तथा सेवा-मूल्य अथवा सेवा-उपयोगिता के सिद्धान्तों पर निश्चित की जाती है। वर्गीकरण निर्धारण करते समय इन दोनों सिद्धान्तों का ध्यान रखना पड़ता है। यदि वर्गीकरण किसी एक ही सिद्धान्त पर किया जाय तो वह अहितकर हो सकता है और कार्यान्वित करने में कठिनाई आ सकती है। उदाहरण के लिए, यदि किसी वस्तु का वर्गीकरण केवल सेवा-मूल्य सिद्धान्त पर हो तो संभव है वह कभी भी स्थानान्तरित न हो सके। १०० मील १ मन कोयले के भेजने का व्यय १४) रु० हो सकता है, और यदि इस व्यय के आधार पर कोयले का भाड़ा दर १४) रु० प्रति मन निर्धारित किया जाय तो कोयले का एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाना आर्थिक दृष्टि से संभव नहीं है। इसी प्रकार एक मन सोने का स्थानान्तरित लागत व्यय ३०) रु० हो सकता है और यदि इससे ३०) रु० लिए जायँ तो सोना भेजने वालों को कोई विशेष असुविधा न होगी। परन्तु फलस्वरूप केवल सोना ही भेजा जायगा और कोयले का भेजा जाना बन्द हो जायगा। परन्तु लागत व्यय के साथ ही साथ यदि सेवा की उपयोगिता पर भी ध्यान दिया जाय तो हो सकता है कि दोनों वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जा सकें। सोने की उपयोगिता कोयले से कहीं अधिक है। इसलिए उपयोगिता के सिद्धान्त पर यदि सोने से ३०) रु० के स्थान पर ४३) रु० ले लिए जायँ और कोयले से १४) रु० के स्थान पर केवल १) ले लिया जाय, तो दोनों वस्तुओं का कार्य अच्छी तरह चल जायगा। एक मन सोना ४३) किराया देकर १०० मी० तक आसानी से भेजा जा सकता है और १ मन कोयला भी १) रु० किराया देकर स्थानांतरित किया जा सकता है। उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि यदि वस्तुओं का भाड़ा-निर्धारण-

हेतु वर्गीकरण करना है तो लागत-व्यय के स्थान पर उपयोगिता अथवा मूल्य का अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त उदाहरण से यह भी स्पष्ट है कि सर्वसाधारण के हित में यह प्रणाली सर्वोत्तम है कि भाड़ा इस प्रकार निर्धारित किया जाय जिससे वस्तुओं का स्थानान्तर देश के विभिन्न भागों में तथा एक से दूसरे देश को सरलता से सम्भव हो सके। यह तभी सम्भव है कि इस समस्या में मूल्य या उपयोगिता का अधिक ध्यान रक्खा जाय, जिसके अनुसार अधिक मूल्य वाली वस्तु पर कम मूल्य वाली वस्तु का कुछ भार रख दिया जाय, जैसा कि ऊपर के उदाहरण में किया गया है। कोयले के स्थानान्तरण का कुछ भार सोने पर डाल दिया गया है। यदि ऐसा न किया जाय और दोनों वस्तुओं पर समान रूप से भाड़ा लगाया जाय तो कोयले के समान कम मूल्य वाली वस्तुओं का स्थानान्तरण असम्भव हो जाता है। इस प्रकार रेलवे का भाड़ा what the traffic will bear सिद्धान्त पर निश्चित किया जाता है, जिसके अनुसार अधिक मूल्य वाली वस्तुओं से अधिक और कम मूल्य की वस्तुओं से कम भाड़ा लिया जाता है। और इसी को विभेदात्मक भाड़ा-निर्धारण नीति कहते हैं। यदि कम आय वाले यात्रियों को और कम कीमत वाली वस्तुओं को एक से दूसरे स्थान को पहुँचाना है तो उनसे कम भाड़ा लेना पड़ेगा। और यदि सब प्रकार के यात्रियों व वस्तुओं पर कम भाड़ा लिया जाय तो यातायात-सेवा प्रदान करने का लागत-व्यय भी नहीं निकल सकता। इसमें यातायात-सेवा-प्रदात्री संस्था को बहुत हानि होने की सम्भावना है, इस प्रकार से कोई भी संस्था अधिक दिनों नहीं चल सकती। इस दृष्टि से विभेदात्मक नीति द्वारा भाड़ा-निर्धारण करना ही श्रेयस्कर है और इससे दोनों प्रकार के ट्रैफिक को लाभ होता है। कम मूल्य वाला ट्रैफिक तो अपने आप यातायात-सेवा का उपयोग कर ही लेता है साथ ही साथ अधिक मूल्य वाले ट्रैफिक का भार कम हो जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में यदि एक मन कोयला न भेज कर केवल सोना ही भेजा जाय और मान लीजिए लागत व्यय ४४) रु० ही है तो १ मन सोने को ४४) रु० भाड़े के रूप में देने पड़ेंगे। और यदि साथ-साथ कोयला भी भेज दिया जाय तो सोने को ४३) रु० देने पड़ेंगे, कोयले को १) रु० और इस प्रकार दोनों वस्तुओं का स्थानान्तरण हो सकेगा, वैसे एक का ही स्थानान्तरण होता। यदि विभेदात्मक नीति का अनुसरण न किया जाय तो कुछ वस्तुओं का स्थानान्तरण न हो सकने के कारण देश का आर्थिक विकास भी पूर्ण रूप से न हो सकेगा। बहुत से उद्योग अविकसित ही रहेंगे, और कुछ उद्योगों के विकास में कठिनाई होगी। उपर्युक्त उदाहरण में ही यदि कोयले का स्थानान्तरण न किया जा सके तो कोयला-उद्योग का विकास तो होगा ही नहीं, साथ ही साथ वे अनेक उद्योग जिनका विकास कोयले पर निर्भर होता है उन्हें भी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इस प्रकार विभेदात्मक नीति के आधार पर वस्तु-वर्गीकरण सर्व साधारण के हित में ही है। और यह नीति दो प्रकार से लाभदायक होती है। सबसे पहिले तो इसी नीति के सहारे रेल-उद्योग आत्म-निर्भर हो सकता है। दूसरे इस नीति के आधार पर ही अधिक-से-अधिक ट्रैफिक स्थानान्तरित किया जा सकता है। charging what the traffic will bear का सिद्धान्त यातायात के सम्बन्ध में बहुधा प्रयोग किया जाता है। यद्यपि व्यवहार में इसका प्रभाव हितकर होता है, परन्तु बहुत से विशेषज्ञों का मत है कि यह एक शोषण का सिद्धान्त है। पर वास्तव में बात यह नहीं है। आधुनिक अति प्रचलित शब्दों में इसे principle of extortion न कह कर, principle of co-existance कहा जाय तो यह अधिक सत्य प्रतीत होता

है। Extortion तो एक प्रकार का शोषण है और इस प्रणाली से जो वस्तु ली जाती है उससे सम्बन्धित व्यक्ति को कष्ट होता है। परन्तु principle of charging what the traffic will bear को कार्यान्वित करने में किसी भी व्यक्ति या वस्तु को किसी प्रकार का भार नहीं सहना पड़ना, वरन् उसके आधार पर सम्बन्धित व्यक्तियों व वस्तुओं का यातायात में सहवास स्थापित हो जाता है अर्थात् इस सिद्धान्त के लागू करने से ही विभिन्न प्रकार की दो वस्तुएँ साथ ही साथ एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगमता से भेजी जा सकती हैं।

रेलवे यातायात में यदि इस सिद्धान्त को लागू न किया जाय तो बहुत-सी वस्तुएँ रेल-सेवा से वंचित रह जायँ। वे वस्तुएँ जो बहुत कम मूल्य की हैं यातायात के अधिक व्यय को सहन नहीं कर सकतीं। अतः वे रेल-यातायात से लाभ तभी उठा सकती हैं कि जब उनका कुछ भार और वस्तुएं बंटा लें। इस प्रकार यह सिद्धान्त शोषण का सिद्धान्त न होकर सम भार-वहन का सिद्धान्त है। अर्थात् इस सिद्धान्त के आधार पर अधिक व कम मूल्य वाली वस्तुएँ यातायात के व्यय को अपने-अपने मूल्य के अनुसार इस प्रकार विभाजित कर लेती हैं कि जिससे उस व्यय का भार उन सब पर बराबर-बराबर पड़े। रेलवे यातायात में तो यह स्पष्ट है कि यदि उस में किसी तरह की प्रतिस्पर्धा नहीं है तो वे प्रत्येक ट्रैफिक से उतना भाड़ा ले लेती हैं जितना वह दे सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु की भाड़ा अदा करने की क्षमता यातायात के व्यय के अनुसार नहीं वरन् उसके मूल्य के अनुसार निर्धारित की जाती है।

यह स्पष्ट है कि रेलवे-संचालन में जितना व्यय होता है वह पूर्ण रूप से सेवा प्राप्त करने वाले ट्रैफिक से वसूल हो जाना चाहिए और जो पूँजी उस रेलवे में लगी है उसका भी पर्याप्त प्रतिफल मिलना चाहिए, जिससे कि कम-से कम उस लगी हुई पूँजी का ब्याज अदा किया जा सके। यह तभी संभव होता है कि जब रेलवे का ट्रैफिक अधिकाधिक परिमाण में हो और अधिक-से-अधिक ट्रैफिक प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि भाड़ा नीति इस प्रकार की अपनाई जाय कि जिससे मामूली-से-मामूली वस्तुएँ भी एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगमता से भेजी जा सकें। साधारण तौर पर यह तभी संभव हो सकता है जब कि धनवान यात्री तथा बहुमूल्य वस्तुएँ अपने हिस्से से भी अधिक भाड़ा दें—जिससे कि धनहीन यात्रियों और कम कीमत वाली वस्तुओं को अपने हिस्से मे भी कम भाड़ा देना पड़े। इस दृष्टि से रेलवे का ट्रैफिक तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग के अन्तर्गत, वह ट्रैफिक होता है जो साधारण व्यय के कुछ अंग का देना तो दूर रहा अपना विशेष व्यय भी पूरा अदा नहीं कर सकता। दूसरे वर्ग में वह ट्रैफिक सम्मिलित होता है जो अपना विशेष व्यय पूर्ण रूप मे अदा कर सकता है और कुछ साधारण व्यय का अंश भी दे सकता है। तीसरी श्रेणी में वह ट्रैफिक आता है जो इतना अधिक भाड़ा दे सकता है कि वह अपना विशेष व्यय और साधारण व्यय का अधिकांश भाग भी देने में समर्थ होता है। यदि आर्थिक दृष्टि से इन तीनों श्रेणियों के ट्रैफिक का अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट है कि प्रथम श्रेणी की वस्तुएँ किसी तरह भी रेल द्वारा नहीं भेजी जा सकतीं, क्योंकि उनसे हानि ही रहेगी। दूसरे प्रकार की वस्तुओं से हानि तो नहीं होती पर कोई लाभ भी नहीं होता। तीसरी श्रेणी की वस्तुओं से लाभ होता है। अतः पृथक-पृथक रूप से तो दूसरे व तीसरे प्रकार की वस्तुएँ ही रेल द्वारा स्थानान्तरित की जा सकती हैं, प्रथम प्रकार की वस्तु नहीं, और इस रीति से समाज के अनेक प्राणी और देश की बहुत सी वस्तुएँ रेल-सेवा के उपयोग से

वंचित रह सकती हैं, और इससे देश के आर्थिक विकास में बाधा पड़ सकती है। इसलिए विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का पृथक रूप से ध्यान नहीं दिया जाता। तीनों प्रकार की वस्तुओं के यातायात से जो आय होती है उसके सम्पूर्ण योग का ध्यान रक्खा जाता है कि जो लागत व्यय के बराबर तो होता ही है कुछ अधिक भी। और योग के ध्यान रखने से ही एक रेलवे कम्पनी अधिकतम ट्रैफिक आकर्षित कर सकती है।

वास्तव में प्रत्येक वस्तु की भाड़ा-सहन करने की शक्ति का ध्यान रखना आवश्यक है। सस्ती वस्तुओं की सहन-शक्ति मूल्यवान वस्तुओं की शक्ति की अपेक्षा अधिक होती है और इसी कारण सस्ती वस्तुओं को वर्गीकरण करते समय निम्न श्रेणी में और महँगी वस्तुओं को उच्च श्रेणी में रक्खा जाता है। निम्न श्रेणी का भाड़ा कम होता है और उच्च श्रेणी का अधिक। निम्नलिखित तालिका में भाड़ा उत्तरोत्तर अधिक होता जायगा :—

भारतीय रेलों का वस्तु-वर्गीकरण

श्रेणी	वस्तु	भाड़ा-दर
१	मिट्टी, रेत, पत्थर, ईंट, ईंधन, कच्चा लोहा, अनाज दालें आदि।	
२	भूसा, सूखी घास, लकड़ी, झाड़ू, बर्फ आदि।	
३	आटा, शीरा, सीमेंट आदि।	
४	राल, तारकोल, साबुन, चीनी, हल्दी।	
५	आलू, शकरकन्द, मूंगफली, चक्की, पंखे।	
६	पेंसिल, फर्नीचर, बाँस।	
७	नमक, समाचार-पत्र, काँच का सामान।	
८	लालमिर्च, नील, ताले, छाते, चमड़ा आदि।	
९	लालटेन रोशनाई, पालिश।	
१०	घी, दूध, दही, चाय, मक्खन, अंडे, कपड़ा कम्बल इत्यादि।	
११	शराब सिरका आदि।	
१२	कालीमिर्च, मसाले, मिठाइयाँ, शहद।	
१३	बाईसिकिल, मोटर साइकिल, बच्चों की गाड़ियाँ।	
१४	मोटर गाड़ियाँ, बन्दूकें।	
१५	फिल्म, घड़ियाँ आदि।	

इतना ही नहीं इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न धातुओं की बनी हुई एक वस्तु ही विभिन्न श्रेणियों में आती है। उदाहरण को पत्थर की चूड़ियाँ प्रथम श्रेणी में, लाख की द्वितीय में, लकड़ी की सप्तम में, काँच की दसवीं में, हाथी दाँत की पन्द्रहवीं श्रेणी में आती हैं। इसी तरह कागज के बोरे तृतीय श्रेणी में, टाट के सातवीं में, किरमिच के व सूती आठवीं में तथा चमड़े के १२ वीं श्रेणी में आते हैं। इसी प्रकार तेजाब कई प्रकार का होता है। उनका भिन्न-भिन्न मूल्य होता है। इसलिए मूल्यानुसार विभिन्न प्रकार के तेजाब को भिन्न श्रेणियाँ दी गई हैं।

वस्तु के वर्गीकरण में और बहुत सी बातों के अतिरिक्त मार्ग की जोखिम का भी ध्यान रक्खा जाता है और भाड़ा जोखिम के अनुपात से निर्धारित होता है, अधिक जोखिम की वस्तु के लिए अधिक व कम जोखिम के लिए कम। भारत में एक ही वस्तु के लिए जोखिम की दृष्टि से अलग-अलग श्रेणियाँ हैं। यदि माल रेल

की जोखिम पर भेजा जाय तो वह एक श्रेणी में होगा, यदि ग्राहक की जोखिम पर भेजा जाय तो किसी और श्रेणी में। उदाहरणार्थ, यदि सीमेंट के नल रेल की जोखिम पर भेजे जायँ तो वे पाँचवीं श्रेणी में रखे जावेंगे और यदि ग्राहक की जोखिम में रक्खे जायँ तो तीसरी में होंगे। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि वस्तु वर्गीकरण एक जटिल समस्या है और इनका वर्गीकरण इसी से किया है कि रेलों को अधिकाधिक ट्रैफिक मिले और प्रत्येक ट्रैफिक को अपने मूल्यानुसार कम-से-कम भार वहन करना पड़ता है।

Q. 31. Proper classification of goods is very important for the determination of a reasonable and equitable charge. Discuss this statement, and point out the several factors that are taken into consideration in making the goods classification. (A.U. 1954)

"न्यायोचित समान भाड़े के लिए वस्तुओं का उपयुक्त वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक है।" इस कथन की विवेचना कीजिये तथा उन तत्वों का उल्लेख कीजिये जिनको वस्तु वर्गीकरण करते समय ध्यान में रखना पड़ता है।

सेवा के मूल्य के अनुसार रेलों का किराया-भाड़ा निश्चित करने का सिद्धान्त आज सर्वमान्य समझा जाता है, क्योंकि इसी सिद्धान्त के आधार पर न्यायोचित भाड़ा निर्धारित किया जा सकता है। रेलवे अधिकारी तथा विशेषज्ञ एवं अर्थशास्त्री इस बात को मानते हैं कि रेलों के किराये व भाड़े की दर ऐसी हो जो प्रत्येक यातायात की इकाई से सम्बन्धित विशेष व्यय को भुगतने के साथ-साथ पारस्परिक माँग की तीव्रता के अनुसार अपने-अपने हिस्से के सामान्य तथा स्थिर व्यय को भी सहन कर सके, किन्तु सब दरें मिलकर रेलों के कुल लागत व्यय के बराबर आय प्रदान कर सकें। यही सर्वमान्य विभेदात्मक सिद्धान्त है, इस सिद्धान्त का आधार उपभोक्ता का त्याग-भाव और उसकी देय शक्ति है। एक के त्याग से दूसरे के उत्थान का यह परमार्थ-पथ है, त्याग-वृत्ति से आप्लावित है, इससे अमीरों के थोड़े से त्याग से गरीबों का बोझ हलका हो जाता है। विभेदात्मक सिद्धान्त के अपनाने से रेलों को अधिक मात्रा में यातायात उपलब्ध होता है और उनके लाभ की मात्रा बढ़ती है। प्राय: निम्नश्रेणी के यातायात से कम लेकर उसकी मात्रा बढ़ाई जाती है और उस कमी को उच्च श्रेणी के यातायात से लेकर अधिक पूर्ण कर लिया जाता है। इस विभेदात्मक नीति का एक बड़ा लाभ यह होता है कि कभी-कभी औसत लागत व्यय से भी कम भाड़ा लेकर रेलों को हानि नहीं उठानी पड़ती। परिवहन सम्बन्धी माग के अति निर्बल होने पर भी बहुधा इस नीति से रेल-संचालन सम्भव है। यद्यपि इस नीति के आधार पर उच्च श्रेणी के यातायात को अधिक दर देनी पड़ती है, पर इससे उसे हानि नहीं होती, क्योंकि यदि सेवा सस्ती न हो तो निम्नश्रेणी का यातायात बन्द हो जायगा, और रेलों के सब स्थायी व्यय उच्च यातायात पर पड़ेंगे, अर्थात् उनका भार अति अधिक हो जायगा। इस प्रकार विभेदात्मक सिद्धान्त द्वारा रेलों को अधिक लाभ होता है, निम्नश्रेणी तथा उच्च श्रेणी दोनों प्रकार की वस्तुओं अथवा यात्रियों को यातायात की सुविधा सुलभ तथा सस्ती हो जाती है। यह नीति राष्ट्र एवं उपभोक्ता सभी के लिए हितकारी है। व्यवहार में यह विभेदात्मक नीति वस्तुओं के सम्बन्ध में वस्तु-वर्गीकरण के ऊपर निर्भर होती है। यदि वर्गीकरण ठीक है तो इस नीति का फल अच्छा होता है, यदि संयोग से वर्गीकरण गलत हो गया तो इस नीति द्वारा निर्धारित किये गये भाड़े से हानि ही होती है। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि एक वस्तु गलती से निम्न श्रेणी के स्थान से उच्च श्रेणी के

स्थान में रख दी गई और दूसरी उच्च श्रेणी के स्थान में निम्नश्रेणी में रख दी गई तो फल यह होगा कि निम्न श्रेणी वाली वस्तु को ऊँची श्रेणी का भाड़ा देना पड़ेगा, जो यह वस्तु सहन नहीं कर सकती, अतः या तो इस वस्तु का यातायात बन्द हो जायगा, अथवा कम हो जायगा अथवा और किसी साधन द्वारा इसका यातायात होगा। इसके विपरीत उच्च श्रेणी वाली वस्तु निम्न श्रेणी के भाड़े में ही एक जगह से दूसरी जगह भेज दी जाती है, यह कम भाड़ा देती है, यदि रेलवे चाहती तो इस वस्तु से अधिक भाड़ा ले सकती थी, इस प्रकार दोनों प्रकार से रेलवे को हानि हुई तथा भाड़ा की दर अन्याययुक्त हुई, निम्नश्रेणी वाली वस्तु से अधिक भाड़ा लिया गया, और उच्च श्रेणी वाली वस्तु से कम। वास्तव में ऐसा नहीं होना चाहिए इसी लिए यह कहा गया है कि न्यायोचित भाड़े के लिए उचित वर्गीकरण का होना आवश्यक है।

न्यायोचित वर्गीकरण के लिए निम्नांकित बातों का ध्यान में रखना आवश्यक है:—

(१) माँग का प्रभाव, जिस वस्तु की माँग अधिक है उस वस्तु से कम भाड़ा लेना चाहिए, क्योंकि कम भाड़े से उसकी कीमत कम रहेगी, माँग बढ़ती बनी रहेगी, जिससे अधिक वस्तुओं का यातायात होगा और रेलवे की आमदनी बढ़ जायगी। जिसकी माँग कम है उस वस्तु का भाड़ा अधिक किया जा सकता है, और उसे उच्च श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

(२) मूल्य—अधिक मूल्यवान वस्तु अधिक भाड़ा दे सकती है, कम मूल्यवान वस्तु कम। अतः अधिक मूल्यवान वस्तु को उच्च श्रेणी में तथा कम मूल्यवान वस्तु को निम्न श्रेणी में रक्खा जाना चाहिए।

(३) लागत-व्यय—वर्गीकरण करते समय लागत-व्यय का भी ध्यान रक्खा जाना चाहिए। जिस वस्तु के स्थानान्तरित करने में अधिक खर्च होता है उसे उच्च श्रेणी में तथा जिसमें कम खर्च होता है उसे निम्न श्रेणी में रखना चाहिए।

(४) भार तथा आकार का अनुपात—छोटे आकार की भारी वस्तुओं के ले जाने में रेलों को सुविधा होती है, व्यय व श्रम कम होता है, अतः इस प्रकार की वस्तुओं को निम्न श्रेणी में रखकर उनसे कम भाड़ा लिया जाता है। इसके विपरीत कम भार व बड़े आकार की वस्तुओं को ले जाने में अधिक व्यय व श्रम कराना पड़ता है, अतः ऐसी वस्तुओं को उच्च श्रेणी में रखकर उनसे अधिक भाड़ा लिया जाता है।

(५) मार्ग का जोखिम—टूटने-फूटने वाली वस्तुएँ ले जाने में अधिक जोखिम होता है, अतः इस प्रकार की वस्तुएँ उच्च श्रेणी में रक्खी जाती हैं और उनसे अधिक भाड़ा लिया जाता है। कम जोखिम वाली वस्तुएँ निम्न श्रेणी में रक्खी जाती हैं और भाड़ा कम लिया जाता है।

(६) अच्छी तरह पैकिंग वाले माल को निम्न श्रेणी में रखते हैं और उससे कम भाड़ा लेते हैं, क्योंकि अच्छी तरह पैकिंग किया गया माल आसानी से चढ़ाया-उतारा जाता है, जगह भी कम घेरता है। जिस वस्तु का पैकिंग ठीक नहीं होता उसे उच्च श्रेणी में रखते हैं और अधिक भाड़ा लेते हैं।

(७) माल का परिमाण अथवा गाँठों का आकार—बड़ी गाँठों तथा अधिक मात्रा में आने-जाने वाले माल को निम्नश्रेणी में रखकर उससे कम भाड़ा लेते हैं पर छोटी गाँठों तथा कम मात्रा वाले माल को उच्च श्रेणी में रखकर उनसे अधिक भाड़ा लेते हैं, क्योंकि बड़ी गाँठों से डिब्बा सुविधापूर्वक भर जाता है छोटी गाँठों से नहीं। छोटी गाँठों के उतारने व चढ़ाने में भी अधिक श्रम व समय व्यय होता है।

(८) समय—शीघ्र भेजी जाने वाली वस्तु उच्च श्रेणी में रक्खी जाती है उसे अधिक भाड़ा देना पड़ता है, क्योंकि जल्दी बिगड़ने वाली वस्तुओं को तेजगाड़ी से भेजना पड़ता है और व्यय अधिक होता है।

(९)- यातायात की नियमितता—जो वस्तु लगातार नियमपूर्वक मिलती रहे तो इस प्रकार की वस्तु से स्थायी ग्राहक के समान कम भाड़ा ले लिया जाता है और इस प्रकार की वस्तु को निम्न श्रेणी में रख लेते है।

(१०) डिब्बे का प्रकार—कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो खुले डिब्बों में जा सकती है, तो ऐसी वस्तुओं को निम्न श्रेणी देकर इनसे कम भाड़ा लिया जाता है, इसके विपरीति, यदि वस्तु के लिए बन्द अथवा विशेष प्रकार का डिब्बा चाहिए तो उसे उच्च श्रेणी में रखकर उससे अधिक भाड़ा लिया जाता है।

(११) प्रतियोगिता—किसी माल के लिए यदि विभिन्न वाहकों में प्रतियोगिता हो उस माल को रेल-भाड़ा अधिक होने पर दूसरे साधनों को प्रयोग करने की स्वतन्त्रता होती है, ऐसे माल को रेल-मार्ग की ओर आकर्षित करने के लिए निम्नश्रेणी देदी जाती है और उससे कम भाड़ा ले लिया जाता है।

(१२) जो वस्तुएँ दूसरी वस्तुओं की स्थानापन्न हो सकती हैं उन्हें बहुधा एक ही श्रेणी में इसलिये रक्खा जाता है कि जिससे उनमें से किसी का यातायात व्यय अधिक होने से उनका स्थानान्तरण बन्द न हो जाय।

सारांश में कम भाड़ा सहन करने वाले पदार्थ को निम्न श्रेणी में तथा अधिक भाड़ा सहन करने वाले पदार्थ को उच्च श्रेणी में रखते हैं।

भारतीय रेलों में वस्तु-वर्गीकरण

प्रारम्भ में भारतीय रेलों का वस्तु-वर्गीकरण बहुत छोटा, सरल था, पर इसकी विभिन्नता बढ़ती गई। सन् १८८३ में सरकार ने किराये भाड़े सम्बन्धी एक स्थायी नीति निर्धारित की, बाद में तत्सम्बन्धी कुछ नियम भी बनाये पर वर्गीकरण की अस्थिरता दूर नहीं हुई। सन् १९१० में भारतीय रेल सम्मेलन ने ६ वर्गों का एक वर्गीकरण निर्धारित किया, जो रेलवे-बोर्ड द्वारा सन् १९१५ में स्वीकृत किया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भाड़े की दरों में वृद्धि करने की आवश्यकता हुई, अतः एक नवीन विस्तृत वर्गीकरण का निर्माण किया गया। अब वर्ग-संख्या १० कर दी गई। यह नवीन वर्गीकरण सन् १९२२ से लागू हुआ। व्यवहार में यह वर्गीकरण दोषपूर्ण पाया गया, किन्हीं-किन्हीं वस्तुओं का भाड़ा बहुत अधिक था, रेल-उत्तरदायी तथा स्वामी-उत्तरदायी वाली वस्तुओं के भाड़े की दरों में बहुत अन्तर था, इन दोषो को दूर करने के लिए सन् १९३६ ई० में एक नवीन वर्गीकरण बनाया गया, जिनके अनुसार वर्गों की संख्या बढ़ाकर १६ कर दी गई। इस वर्गीकरण को सन् १९४८ में फिर बदल दिया गया, वर्गों की संख्या घटाकर १५ कर दी गई है।

भारत में रेल-भाड़ा

भारत में रेल भाड़ा सदैव से ही सरकार के नियन्त्रण में रहा है, परन्तु प्रारम्भ में सरकारी नियन्त्रण केवल नाम-मात्र को रहा, विदेशी रेल-कम्पनियाँ इस सम्बन्ध में स्वच्छन्दता की नीति अपनाती रहीं। वे इङ्गलैण्ड में प्राप्त अनुभव के आधार पर यहाँ भाड़ा निर्धारित करतीं थीं, परन्तु दोनों देशों की आर्थिक विषमता के कारण वहाँ का अनुभव यहाँ ठीक काम न कर सका, विभिन्न कम्पनियाँ मनमाना भाड़ा लेने

लगी, इस प्रकार "प्रारम्भिक तीस वर्षों में भारतीय भाड़ा पद्धति में सिद्धान्त का अभाव, अनेकरूपता, एकाधिकारी, स्वेच्छाचारिता व्यक्तिवाद का आधिक्य, यातायात के प्रति उदासीनता और ऊँची दरों का प्राबल्य" आदि की प्रधानता थी। सन् १८८३ में प्रथम बार रेल-भाड़ा-समस्या पर ठीक ढंग से विचार किया गया। भाड़ा-दर-निर्धारण में लागत-व्यय, देय शक्ति, डिब्बों में रिक्त स्थान रेलों की पारस्परिक प्रतियोगिता आदि बातों का ध्यान रखना आवश्यकीय समझा गया। उचित भाड़ा-दर निर्धारण के लिए सन् १८८४ व १८८५ में विभिन्न प्रयास किये गये, परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अतः भारत सरकार ने सन् १८८७ में निम्नांकित सिद्धान्तों की घोषणा की:—

(१) सरकार द्वारा उच्चतम व न्यूनतम भाड़े निश्चित करना आवश्यक है। कम्पनियाँ इन सीमाओं के अन्तर्गत भाड़ा घटा-बढ़ा सकती है।

(२) रेल कम्पनियों को mileage rates and fares तथा terminal charges के आधार पर भाड़े निर्धारित करने चाहिए।

(३) इस सम्बन्ध में सरकार हस्तक्षेप करने को स्वतन्त्र है।

सन् १८९० ई० में उच्चतम तथा न्यूनतम भाड़े निर्धारित कर दिये गये, जो रेल-कम्पनियों को पसन्द नहीं आये, फलतः सन् १८९१ में इन भाड़ों में संशोधन किया गया जिसके द्वारा रेलों को अधिक स्वतन्त्रता मिल गई, जिसका दुरुपयोग किया गया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही यातायात में वृद्धि होने लगी, अतः यातायात की सुगमता के लिए भाड़े की एकरूपता और देश-व्यापी सामान्य वर्गीकरण की आवश्यकता हुई। भारतीय रेल सम्मेलन ने एक सामान्य वर्गीकरण प्रस्तुत किया, जो १९१० से लागू किया गया, जिसे सन् १९१५ में रेलवे बोर्ड ने संशोधित किया। प्रथम महायुद्ध काल में सरकार को आय बढ़ाने की चिन्ता हुई, १९१७ में भाड़ा दर बढ़ाया गया। १९२१ में इसमें और भी वृद्धि की गई। अकवर्थ कमेटी ने भी भाड़ा-दर बढ़ाने की सिफारिश की, जिसके फलस्वरूप उच्चतम दरों में १५ से २५ प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। न्यूनतम सीमाओं में कोई वृद्धि नहीं की गई, इसके कारण रेल कम्पनियों को पक्षपात करने का अधिक अवसर मिल गया और इसका प्रयोग देशी उद्योगों की अवनति तथा विदेशी उद्योगों की उन्नति के लिए किया गया। जनता को शिकायतें होने लगीं। किराये-भाड़े फिर भी बढ़ते चले गये, यद्यपि मोटर-प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप रेल कम्पनियों को निकटवर्ती यातायात के लिए भाड़े कम करने पड़े, परन्तु जनता की शिकायत दूर नहीं हुई। रेल भाड़े सम्बन्धी नीति की कड़ी आलोचना होने लगी। जनता की शिकायतें सुनने के लिए सरकार ने अकवर्थ समिति द्वारा प्रस्तावित Railway Rates Tribunal के स्थान पर Advisory Committee की स्थापना की। इससे जनता को सन्तोष नहीं हुआ, साथ-ही-साथ आर्थिक शिथिलता (depression) के कारण संचालन-व्यय से आय कम होती गई। इस कमी को पूरा करने के लिए किराये व भाड़े बढ़ाने पड़े। मोटर-प्रतियोगिता के कारण निकटवर्ती किराये-भाड़े कम किये गये, दूर के किराये व भाड़े और भी अधिक बढ़ाये गये। १९३६ में नवीन वर्गीकरण द्वारा किराये व भाड़े दरों में परिवर्तन कर दिया गया, परन्तु इस परिवर्तन से भी जनता को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध काल में सभी वस्तुओं पर दो आना प्रति रुपया भाड़ा और भी बढ़ा दिया गया। इस काल में महँगी के कारण रेल-भाड़ा-निर्धारण सम्बन्धी नीति

में कुछ दोष स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगे। संचालन-व्यय बहुत बढ़ गया, class rates दूरी के अनुपात से घटते-बढ़ते थे, फिर भी अधिक दूर स्थानान्तर करने वाली वस्तुओं को अपनी देय शक्ति से कहीं अधिक भाड़ा देना पड़ता था। रेलवे कम्पनियाँ वस्तु का वर्गीकरण बदल कर, अनुसूचित भाड़े लागू करके, तथा विशेष प्रकार के भाड़े लगाकर आधारभूत class rates में काफी परिवर्तन करती रहती थी। शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तु का रेल-दायित्व तथा स्वामी-दायित्व के आधार पर भाड़े की दरों में इतना अधिक अन्तर था कि माल भेजने वाला अपने दायित्व पर ही माल भेजता था इस प्रकार व्यापारी-वर्ग रेल-दायित्व का लाभ नहीं उठा पाता था। भाड़ा लगाने में अनुभवी तथा योग्य कर्मचारी भी भूल कर जाया करते थे। एक ही वस्तु के लिये सब रेलों में भाड़े एक से नहीं थे। एक वस्तु के लिए कभी-कभी १६ अनुसूचियों (schedules) को लागू करना पड़ता था। विशेष प्रकार के अथवा स्टेशन से स्टेशन तक के भाड़े प्राय: अनिश्चित हुआ करते थे और बहुधा, उनकी सूचना प्राप्त करने में व्यापारियों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था तथा समय भी बहुत लग जाता था। Terminal charges तथा transhipment charges में एकरूपता नहीं थी। इन सारे दोषों को दूर करने के लिये सरल तथा वैज्ञानिक रेल-भाड़ा-पद्धति बनानी आवश्यक थी। सन् १६४४ ई० में भारतीय रेल सम्मेलन ने इस ओर प्रयास किया और विशेषज्ञों की सहायता से एक नवीन भाड़ा-पद्धति तैयार की गई, जो १ अक्टूबर सन् १६४८ ई० से लागू कर दी गई। इस नवीन पद्धति के फलस्वरूप, भाड़े दूरी के साथ घटते जाते हैं, प्रतिमन माल के लिए उच्चतम सीमा बाँध दी गई है। न्यूनतम भाड़ा भी बढ़ा दिया गया है। अब सारी रेलें माल ढोने की दृष्टि से एक इकाई मानी जाती हैं तथा Continuous mileage के अनुसार भाड़े लगाये जाते हैं। रेलों की स्वतन्त्र इकाइयां मानी जाने, दूसरी रेल में नये सिरे से भाड़े लगाये जाने, पहिली यात्रा का ध्यान न रखने, वर्ग भाड़े, अनुसूचित भाड़े, स्टेशन से स्टेशन तक आदि की अनिश्चित भाड़ा-पद्धतियाँ समाप्त कर दी गई हैं, short distance, Terminal तथा transhipment charges आदि के कारण भाड़ा पद्धति में जो विशेषताएँ थीं वे सब समाप्त हो गई हैं। भाड़ा-पद्धति में यथा सम्भव एकरूपता स्थापित कर दी गई है। यद्यपि १२½ प्रतिशत बढ़ी हुई दर को मूल भाड़े की दरों में सम्मिलित करके भाड़ा दर पहिले से बढ़ा दिया गया है, परन्तु यह बढ़ा हुआ भाड़ा दर अभी तक लोगों को असह्य प्रतीत नहीं हो रहा है। वर्ग संख्या १६ के स्थान पर १५ कर दी गई है। उनका नामकरण भी सरल हो गया है, Railway risk तथा owner's risk भाड़ों के अन्तर को भी कम कर दिया गया है और Rates Registers छाप दिये गये हैं। उपर्युक्त सुधारों के कारण जनता की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं, फिर भी व्यापारी-वर्ग पूर्णतया संतुष्ट नहीं है।

व्यापारियों का कहना है कि भाड़ा-पद्धति और भी अधिक सरल तथा वैज्ञानिक बनाई जा सकती है। Railway risk तथा owner's risk भाड़े की दरों का अन्तर और भी कम किया जा सकता है। भाड़ा-पद्धति-निर्धारण करते समय अनुभवी तथा योग्य व्यापारियों की राय बिल्कुल नहीं ली गई, अत: नई भाड़ा-पद्धति, भारतीय रेल भाड़ा पद्धति देश के आर्थिक विकास के अनुकूल न होकर रेलों को केवल अधिक आय प्राप्त कराने का साधन बन गई है। आर्थिक उन्नति के शैशव काल में शिशु तथा अन्य उद्योगों की उन्नति के लिए विशेष प्रकार के सस्ते भाड़ों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। भाड़े की दरें काफी बढ़ी हुई हैं, ये कम होनी चाहिए। विशेष कर

थोड़ी दूर के यानायात के भाड़े काफी बड़े हुये है, वे अवश्य ही कम होने चाहिये। विशेष भाड़ों को समाप्त करने की भी माँग की जा रही है। सीमान्त भाड़े समान न लगाकर वस्तु का रूप-रंग, आकार तथा देय शक्ति के अनुसार लगाये जाने चाहिए, और यदि माल चढ़ाने तथा उतारने का काम माल भेजने वाले स्वयं करें तो उन्हें सीमान्त भाड़े में कुछ छूट मिल जानी चाहिए।

CHAPTER VI

The Development of Railways in India.

The following periods in the history of Indian railways shoud be distinguished :—

(1) 1844 1869—the old guarantee system under which contracts were entered into with a number of companies for constructing and managing railways in different parts of India. The features of the contract were, free grant of land, a guaranteed rate of interest, 4½ to 5%, utilization of half the surplus profits earned by the companies to repay the Government any sums by which they might have had previously to make good the guarantee of interest, the remainder belonging to the shareholders. Reservation of certain powers of supervision and control by the Government in all matters of importance except the choice of staff and option to the Government to purchase the lines after twenty-five or fifty years on terms calculated to be the equivalent of the companies interest therein. The system proved to be a great drain on the resources of the state.

(2) 1869-79—State construction and management. Under this system, the capital expenditure was chiefly incurred by the Government and no fresh contracts with guaranteed companies were made.

(3) 1879-1900—The new guarantee system with the following features :— (a) The lines constructed by the companies were declared to be the property of the Secretary of state for India, who had the right to determine the contracts at the end of approximately twenty-five years after respecting dates or at subsequent intervals of ten years or repaying at par the capital provided by the companies. (b) Interest was guaranteed on the capital raised by the companies at a lower rate, the most usual rate being 3½ per cent. (c) The Government retained a much larger share (usually three-fifths) of the surplus profits for their own benefits.

(4) 1900-1915 a period of rapid extension and development of railways and commencement of railway profits.

(5) 1914-1921—This period is characterised by the utter break down and rapid determination of the railways, partly because of the strain to which they were subjected by the large movements of troops and materials for the purpose of the War and partly because of the general financial embarrassment of the Government.

(6) 1921-1925.—The Acworth committee and overhauling of railway policy on the basis of direct management and control by the state.

(7) 1925-30- Characterised by separation of railway finance from general finance. It was a period of prosperity.

(8) 1930-35—Depression. The financial condition of the railways was deteriorated during this period.

(9) 1935-1939—This period is characterised by a partial recovery and Wedgwood Railway Inquiry Committee was appointed in the year 1936. The Repoat of the Committee was published in June 1937, which contains a number of valuable suggestions concerning almost every aspect of railway working for improving efficiency and economy.

(10) 1939-1947—The period of the Second World War. One of the results of World War II was the increased traffic making abnormal demands on transport capacity. Handicaps which the railways had to face were the depletion of supervising staff consequent on the release of railway personnel for military service, and the dismantling of branch lines for shipment overseas.

(11) 1947 onward. A programme for the rehabilitation of railways to meet the growing demand of transport was chalked out. There has been substantial improvements in the rolling stock and other physical assets. However the partition of the country adversely affected the position of Indian railways.

The Indian Railway Enquiry Committee (Kunzru Committee) was appointed by the Government in 1945. The Committee recommended the postponement of the implementation of the programme for regrouping for 5 years. It also recommended the abolition of the grainshop organisation. The Government of India accepted most of the recommendations concerning technical and reorganisational points. A new finance separation convention was adopted in the year 1950-51.

The regrouping of Indian Railways became a burning topic during this period. A scheme was formulated in June 1950, but after a great deal of controversy, the scheme was introduced in the year 1951 with some alterations. The Southern railway zone was started in April 1951 ; the Central and Western raiways were inauguated in November 1951 and the Northern, North-Eastern and Eastern zones came into existence in April 1952.

The Government of India also appointed the Railway Store Enquiry Committee in 1950. The Committee prepared a scheme envisaging the setting up of a strong central stores organisation for general supervision and control over the store transactions on all railways.

There is no major expansion of railways in the First Five year Plan apart from taking up the arrears in maintenance and renewals. Adequate provision, will have to be made for the expansion of railways in the Second Five Year Plan. The principal task for the railways in the second plan is to meet the increasing demands for both goods and passenger traffic. Having regard to the production targets in various fields, the volume of goods traffic is expected to increase by about 51 per cent from 120 million tons at the end of the first plan to about 181 million tons in 1960-61. In regard to passenger traffic the plan provides for an increase of 15 per cent in passenger train services over the five-year period.

Q. 32. Examine and criticize the several ways which were adopted to finance the construction of railways in India during the last century. (A. U. 1944).

भारतीय रेलें और उनका विकास

भारत में रेल-यातायात ब्रिटिश राज्य की देन है। जिस समय मुगल साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित हुआ, उस समय प्रारम्भ में भारत में सड़क और जल-मार्ग दो ही यातायात के मुख्य साधन थे। सड़कें भी विशेषकर कच्ची थीं, और जल-मार्ग नदियों की धाराओं, नहरों अथवा पक्की सड़कों का तो अभाव-सा ही था। जिस समय अंग्रेजों ने बहुत दूर तक अपना राज्य स्थापित कर लिया, उस समय उन्हें अपने राज्य को दृढ़ बनाने के लिए शीघ्रगामी यातायात की सुविधाओं का ध्यान देना पड़ा। सबसे पहिले लार्ड विलियम बैंटिंग ने (१८२५ से १८३५) भारत में यातायात के साधनों की ओर ध्यान दिया। इधर सन् १८२१ ई० तक ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका आदि में रेल-यातायात सफलतापूर्वक प्रारम्भ हो गया था। इसलिए सन् १८३१ या ३२ ई० में मद्रास में रेलें अथवा नहर बनाने के ऊपर विचार किया गया। १८३६ ई० में कैप्टिन ए० पी० कॉटन ने नहरों तथा अन्य यातायात के साधनों की अपेक्षा, रेलों को ही अधिक महत्व दिया। उन्होंने बम्बई को मद्रास से ८६२ मी० लम्बी रेल द्वारा मिलाने की योजना बनाई। परन्तु भारतवर्ष में प्रथम रेल-यातायात में सफलता प्राप्त करने वालों में स्टीवेन्सन का नाम ही स्मरणीय है। सन् १८४१ ई० में कलकत्ता से देश की उत्तरी-पश्चिमी सीमा तक रेल बनाने का विचार किया गया। १८४४ ई० में लंदन में ईस्ट इण्डिया कम्पनी बनाई गई और बाद में वे ही ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रथम एजेन्ट हुए। इसी प्रकार १८४४ में ही बम्बई प्रान्त में रेल निर्माण के लिए ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला कम्पनी लन्दन में बनी।

विकास की दृष्टि से भारतीय रेलों के इतिहास को हम ११ विभागों में बाँट सकते हैं।

(१) १८४४ से १८६९ तक प्राचीन गारण्टी प्रथा।
(२) १८६९ से १८८९ तक राज्य द्वारा निर्माण एवं प्रबन्ध।
(३) १८८९ से १९०० तक नवीन गारण्टी प्रथा।
(४) १९०० से १९१४ तक शीघ्र विकास काल तथा लाभार्जन काल।।
(५) १९१४ से १९२१ तक प्रथम महायुद्ध के कारण रेलवे शिथिलता काल।
(६) १९२१ से १९२५ अकवर्थ कमेटी-सिफारिश-कार्यान्वित काल।
(७) १९२५ से १९३० तक समृद्धि काल।
(८) १९३१ से १९३६ तक शिथिल काल।
(९) १९३६ से १९३९ तक उन्नति की ओर।
(१०) १९३९ से १९४७ तक द्वितीय युद्ध काल
(११) १९४७ से अब तक युद्धोत्तर काल

प्रथम काल, १८४४ से १८६९ तक

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है १८४४ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे कम्पनी के साथ क्रमशः कलकत्ता तथा बम्बई के पास रेलवे लाइन-निर्माण का ठेका दिया गया। लेकिन १८५३ ई० के बाद ही रेल-निर्माण

की ओर गवर्नमेंण्ट का ध्यान पूर्णरूपेण इस ओर हुआ। लार्ड डलहौजी ने इस बात पर जोर दिया कि देश का हर बड़ा शहर रेल द्वारा बन्दरगाहों से मिलाया जाना चाहिए। उसने स्पष्ट किया कि रेल-निर्माण से भारत तथा इंगलैण्ड दोनों देशों को सामाजिक, राजनैतिक व व्यापारिक लाभ मिलेंगे। उसने यह भी बतलाया कि जितनी शीघ्रतापूर्वक भारत में रेल-मार्ग का निर्माण होगा उतना ही विस्तृत क्षेत्र अंग्रेजी कम्पनियों को भारत में अंग्रेजी पूंजी लगाने के लिए मिलेगा। उसके मतानुसार रेल-निर्माण-कार्य कम्पनियों द्वारा अधिक सस्ता व अच्छी प्रकार से हो सकता था। इसीसे उसने इस पर जोर दिया कि सरकार स्वयं निर्माण न करके कम्पनियों द्वारा ही रेल-निर्माण करवाये।

डलहौजी की योजना के अनुसार १८५४ से १८६० तक ८ कम्पनियों को ठेके दिए गए, जिन्हें देश के विभिन्न विभागों में रेलवे बनाने तथा प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया। १८५७ के गदर के कारण रेलवे निर्माण को प्रोत्साहन और भी अधिक दिया गया, जिससे सेना-यातायात शीघ्रतापूर्वक हो सके। प्रारम्भिक गारण्टी कंपनियों के ठेकों के सम्बन्ध में मुख्य बातें निम्न थीं।

(१) सरकार कम्पनी को मुफ्त में जमीन दिलायेगी।

(२) कम्पनी को लगाई हुई पूँजी पर ४॥ से ५ प्रतिशत तक ब्याज की गारण्टी की गई, जिसका विनिमय दर १ शि० ६ पै० प्रति रु० रक्खा।

(३) कम्पनी के द्वारा अर्जित लाभ का ५०% गवर्नमेंण्ट को दिया जाय, जिससे गारण्टी के अनुसार ब्याज अदा करने में यदि गवर्नमेंट को हानि भी हो तो उसकी क्षति-पूर्ति हो सके।

(४) रेलवे के प्रबन्ध सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों में सरकार का पूरा नियन्त्रण रहे।

(५) यदि गवर्नमेंण्ट चाहे तो २५ या ५० वर्ष पश्चात् कम्पनी से लाइनें खरीद ले।

उपर्युक्त प्रणाली बहुत खर्चीली सिद्ध हुई। इसमें सरकार को बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ी, कर-दाताओं का भार बढ़ गया, क्योंकि कम्पनी ब्याज दर की गारण्टी के अनुसार लाभ न कमा सकी। सरकार को क्षति पूरी करनी पड़ी। और १८६९ ई० तक रेलवे बजट में १६६५० हजार रु० की हानि हुई। इस हानि के कई कारण थे। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार गारण्टी प्रथा ही इसका कारण थी, क्योंकि इस प्रथा के कारण कम्पनियाँ पानी की तरह रुपया बहाया करती थीं। रेल-निर्माण में मित-व्ययिता की ओर उनका बिल्कुल ध्यान न था। यद्यपि कुछ लोगों का विचार यह था कि यदि रेलवे कम्पनियों को गारण्टी न दी जाती तो वे अपनी पूँजी भारत में न लगातीं। इसके विपरीत कुछ लोगों का यह भी ख्याल था कि उस समय अँग्रेजी कम्पनी के पास बहुत पूँजी व्यर्थ पड़ी हुई थी, जिसके लगाने को कहीं क्षेत्र न था। यदि उन्हें गारण्टी न दी जाती तो भी वे रेलवे में पूँजी लगाने को तैयार हो जातीं।

इस समय अंग्रेजों के पास लगाने के लिए इतनी अधिक पूंजी थी, कि वे दक्षिणी अमेरिका तथा अन्य देशों में भी पूँजी लगाने के क्षेत्र की खोज कर रहे थे। इसलिए वे भारत में भी पूँजी लगाने को तैयार हो जाते। इसके अतिरिक्त ब्याज-दर की गारण्टी भी ऊँची दर पर की गई, जिससे विदेशियों को भी लाभ हुआ और सरकार ने भी यद्यपि रेल-विकास में अधिक रुचि ली फिर भी उसने किसी ऐसे उद्योग को प्रोत्साहन नहीं दिया जिसके विकास से रेलवे सम्बन्धी सामग्री प्राप्त हो सकती।

दूसरा काल (१८६९ से ७९ तक)

गवर्नमेंण्ट पुरानी गारण्टी-प्रथा अनुसार रेल-निर्माण के लिए तैयार न थी। उसका कथन था कि कम्पनियों की फिजूल खर्ची, गवर्नमेंट द्वारा नियन्त्रण की कमी, गवर्नमेंण्ट को गारण्टी अदा करने की सुविधा, और बहुत समय तक कुछ लाभ न होना, ऐसे कारण थे जिनके आधार पर प्राचीन प्रथा के अनुसार रेल-निर्माण भविष्य में संभव नहीं था। इसलिए भारतमन्त्री ने यह विचार किया कि नई रेलवे लाइन निर्माण-हेतु सरकार स्वयं पूँजी इकट्ठी करेगी और उसे यह पूँजी कम ब्याज-दर पर मिल जायगी। इस नीति के अनुसार १८६९ के कुछ वर्ष बाद गारण्टी वाले ठेके नहीं दिए गए और सरकार ने स्वयं पूँजी एकत्र करने का प्रयत्न किया। यह तय किया गया कि सरकार प्रतिवर्ष २ मिलियन पाउण्ड मार्ग-निर्माण-हेतु ऋण के रूप में लेगी, और बड़ी लाइन के स्थान पर छोटी लाइन का प्रयोग करेगी। इस नीति के पालन करने में कुछ कठिनाइयां प्रतीत हुईं, राजनैतिक तथा अकाल के कारणों से रेल-निर्माण का प्रोग्राम बढ़ता ही गया। कुछ छोटी लाइनों को बड़ी लाइनों में बदलना आवश्यक हो गया। इस सब खर्च के लिए सरकार स्वयं उचित मात्रा में पूँजी जुटाने में असमर्थ रही। अतः सरकार को फिर निश्चय करना पड़ा कि उसे रेल-निर्माण में व्यक्तिगत कम्पनियों का सहारा लेना पड़ेगा। यहीं से नवीन गारण्टी-प्रथा का श्रीगणेश हुआ।

नई गारण्टी-प्रथा (१८८६ से १९०० तक)

इस काल में बंगाल, नागपुर तथा मद्रास और दक्षिण मरहठा रेलवे कम्पनियों के साथ नई गारण्टी के आधार पर ठेके दिये गये। नई गारण्टी-प्रथा की विशेषताएँ निम्नांकित थीं।

(१) कम्पनियों द्वारा बनाए हुए रेलवे-मार्ग भारत-मन्त्री की सम्पत्ति समझी जायगी और वह १० या २५ वर्ष बाद ठेके को फिर से निश्चित करेगा।

(२) ब्याज दर ३॥ प्रतिशत निश्चित की गई।

(३) सरकार ने अपने लिए लाभ का ३/४ वाँ भाग निश्चित किया। इस तरह शुरू से ही नई रेलवे लाइनें सरकार की सम्पत्ति मान ली गईं, यद्यपि कम्पनी को निजी पूँजी पर ब्याज मिलना रहा और निश्चित अवधि तक उन्हें रेलवे प्रबन्ध का अधिकार भी रहा। इसी प्रकार जब पुरानी गारण्टी-प्रथा वाली कम्पनियों की ठेकों की अवधि समाप्त हो गई, सरकार ने बहुतों के ठेकों को समाप्त ही कर दिया। पूर्वी बंगाल, अवध, रुहेलखण्ड तथा सिंध-पंजाब रेलों को सरकार ने खरीद लिया और इनको अपने प्रबन्ध मे चलाने लगी। कुछ कम्पनियों के ठेके समाप्त तो नहीं किये गये, परन्तु उन्हें नये ठेकों मे रेलें चलाने का अधिकार दिया गया। यद्यपि इनमें भी सरकार ने लाइनों का स्वामित्व स्वयं ले लिया। इसी समय में छोटी-छोटी रेल-कम्पनियाँ बनीं और देशी रियासतों ने भी अपने राज्य में रेलों का बनवाना प्रारम्भ किया। इस समय तक भारतीय सरकार अधिकांश रेलवे लाइनों की मालिक बन गई। काफी पूँजी इसकी सम्पत्ति हो गई।

चौथा काल

रेल-मार्ग का विकास तथा लाभार्जन १९०० से १९१४ तक इस काल में रेलों ने काफी उन्नति की। १९०५ में रेलवे का एक अलग विभाग बना दिया गया। वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय के तत्वावधान में एक रेलवे बोर्ड स्थापित किया गया।

१९०८ में मैके कमेटी ने रेलवे राजस्व के ऊपर संतोषजनक सिफारिश की, जिसके आधार पर पूँजीगत व्यय करने के लिए काफी सुविधा प्राप्त हो गई। सन् १९१३-१४ के अन्त तक भारत में ३४६५६ मील रेल-मार्ग तैयार हो गया था, और इसमें कुल ४९५·०९ करोड़ रुपये की पूँजी लग चुकी थी। इस समय की रेल सम्बन्धी दूसरी विशेषता लाभ-प्राप्ति थी। अभी तक रेलवे से कुछ लाभ नहीं हुआ करता था। प्रारम्भिक ४० वर्षों तक तो रेलवे को ५८ करोड़ रु० की हानि पहुँच चुकी थी। इसके बाद कुछ दिनों तक रेलवे से इतनी आय होने लगी कि हानि बन्द हो गई और साथ-साथ पूँजीगत व्यय अर्थात् ब्याज आदि का भुगतान होने लगा। इस समय तक देश का आर्थिक विकास पर्याप्त रूप से प्रकट हो चुका था। यातायात की माँग उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। पुराने ठेके अब नवीन रूप से सरकार के पक्ष में बदले जा रहे थे, इसलिए १९०० से १० साल बाद तक सरकार को थोड़ा-थोड़ा लाभ होता रहा। सन् १९२४ ई० तक भारतीय रेलों का कुल लाभ १०३ करोड़ रु० था। रेलवे-लाभ इस समय हर साल बदलता रहता था। लाभ की मात्रा हर साल बदलती रहती थी। अकवर्थ कमेटी और इन्चैप कमेटी-सिफारिशों के आधार पर भारतीय रेलों की आर्थिक दशा पहिले से अच्छी कर दी गई थी। और इस समय लाभ ४ प्रतिशत से भी अधिक होने लगा।

पाँचवाँ काल—रेलवे प्रथा की असफलता (१९१४ से २१)

यह काल प्रथम महायुद्ध का काल है। इसमें रेलों की दशा अति शोचनीय हो गई। इस काल में रेलों को अपनी शक्ति से अधिक कार्य करना पड़ा। पुराने डिब्बे व इंजनों की जगह नये डिब्बे व इंजनों का प्रबन्ध न हो सका। युद्ध के कारण बहुतसी रेल-सामग्री मुसोपोटामियाँ तथा अन्य युद्ध-क्षेत्रों में रेल-निर्माण हेतु भेजी गई। सरकार के पास भी युद्ध के कारण रेलों में लगाने को अधिक पूँजी नहीं थी। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड इत्यादि विदेशों से रेल बनाने का कोई सामान नहीं मंगाया जा सकता था। इससे यही नहीं कि नई रेलें न बनाई जा सकें वरन् जो रेलवे लाइनें थीं उन्हीं का ठीक रखना कठिन पड़ गया। अकवर्थ कमेटी ने इस समय का चित्र निम्न शब्दों में खींचा है। इस समय बहुत से पुल ऐसे थे जो एक भरी गाड़ी को पार नहीं कर सकते थे और बहुत से इंजन व रेल इस प्रकार की थीं कि उनसे अधिक काम न लिया जा सकता था। जनता रेलवे के प्रबन्ध से परेशान हो गई थी। यात्रियों तथा व्यापारियों को अनेक प्रकार की असुविधाएँ उठानी पड़ती थीं। इन बातों पर विचार हेतु सरकार ने १९२० में अकवर्थ कमेटी नियुक्त की।

इस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि रेलवे बोर्ड जिस प्रकार का बना हुआ था, उस प्रकार से रेलवे-नीति-निर्धारण करने में तथा रेलवे-प्रशासन के नियन्त्रण में विशेष कर भाड़ा-दर सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में असफल रहा। एक तो इसे दैनिक कार्य बहुत करना पड़ता था और यह स्थानीय परिस्थितियों से अनभिज्ञ था, तथा इसके पास विशेष जानकारी वाले कर्मचारी भी कम थे। इसके अतिरिक्त भविष्य में रेलवे बजट के बारे में पुनर्विचार की आवश्यकता थी। विशेष रूप से इस समय ईस्ट इंडिया रेलवे राज्य की रेलवे लाइन होते हुए भी ईस्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी द्वारा ही चलाई जाती थी। कम्पनी का सरकार के साथ १९१९ में ठेका समाप्त होने को था। यद्यपि इस ठेके की अवधि १९२४ तक बढ़ा दी गई थी फिर भी यह आवश्यक था कि इस लाइन के भविष्य पर विचार किया जाय। इन सब

बातों के लिए अकवर्थ कमेटी जब सन् १९२० ई० में निर्मित की गई और इसने अपनी रिपोर्ट १ साल बाद प्रकाशित की तो यह प्रश्न १९२४ और २५ के बीच में एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया, क्योंकि इसी वर्ष ईस्ट इंडिया, व ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला के ठेके समाप्त होने को थे। सन् १९२४ में एसेम्बली में इस पर विचार हुआ। अधिकांश सदस्यों ने राज्य प्रबन्ध के लिए ही अपना मत दिया, फलस्वरुप इन दोनों रेलों का राज्य द्वारा प्रबन्ध व संचालन करना स्वीकार कर लिया गया और दोनों रेलों का प्रबन्ध व संचालन सरकार द्वारा किया जाने लगा। इसी प्रकार सन् १९२९ में बर्मा रेलवे, १९३० में दक्षिणी पंजाब रेलवे सरकार के प्रबन्ध में आ गई। जनवरी १९४२ में बी० बी० एण्ड सी० आई० आर०, १९४३ में आसाम-बंगाल रेलवे भी सरकारी प्रबन्ध के अन्तर्गत संचालित होने लगीं। इसके बाद बँगाल नार्थ वेस्टर्न, रुहेलखण्ड और कुमायूँ रेलें मिला कर अवध और तिरहुत रेलवे के नाम से सरकार द्वारा संचालित की जाने लगी।

अकवर्थ कमेटीने रेलवे के राष्ट्रीकरण पर भी विचार किया। कमेटी ने राष्ट्रीयकरण के पक्ष में ही अपना मत दिया। बहुत सी रेलवे लाइनें राज्य की संपत्ति तो थीं हीं, परन्तु उनका प्रबन्ध कम्पनियों द्वारा किया जाता था। कमेटी का मत राज्य-प्रबन्ध के पक्ष में था, यद्यपि सैद्धान्तिक दृष्टि से जो कम्पनी रेलवे में रुपया लगाती है वह रेलवे को रुचिपूर्वक चलायेगी, तत्परता से कार्य करेगी, अपना कार्य अधिक सफलता से तथा कम व्यय में करेगी। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से भारतीय रेल की कम्पनियों के बारे में यह बात सत्य नहीं थी। अंग्रेजी कम्पनियाँ इस देश से बहुत दूर रहा करती थीं और जिस सम्पत्ति का प्रबन्ध करती थीं उनमें उनका आर्थिक हित थोड़ा ही था। साथ ही साथ प्रबन्ध नाम को तो कम्पनियाँ करती थीं परन्तु सारा प्रबन्ध राज्य द्वारा निर्धारित विषयों के अनुसार ही होता था। मुख्य-मुख्य समस्यायें सरकार को ही हल करनी पड़ती थीं। कम्पनियों को सरकार की आज्ञा के बिना किसी नई नीति के अपनाने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार भारतीय रेलों के साथ एक प्रकार की duel Govt. कार्य कर रही थीं। रेलें सरकारी थीं, उनका प्रबन्ध कम्पनियों के हाथ में। सरकार कम्पनी का प्रबन्ध होने के कारण कोई विशेष रुचि न लेती थी और कम्पनी रेलवे को सरकारी संपत्ति समझ कर उसकी उन्नति पर विशेष ध्यान न देती थी। इस तरह दोनों पक्ष रेलवे की ओर से उदासीन से रहा करते थे। इसलिए कमेटी राज्य-प्रबन्ध के पक्ष में थी। यद्यपि कम्पनी के अल्प मत के अनुसार इतना ही आवश्यक समझा गया कि अंग्रेजी कंपनियों के स्थान पर भारतीय कम्पनियाँ बना दी जावें। परन्तु यह अल्पमत किसी को पसन्द न आया, क्योंकि इस प्रकार के प्रबन्ध में भी वे सारे दोष बने रहते जो अंग्रेजी कम्पनी के प्रबन्ध में थे। इस अवस्था में भी राज्य सबसे मुख्य साझीदार होता। आधे डाइरेक्टरों की नियुक्ति करता और सभापति को मनोनीत करता और यह सारा उत्तरदायित्व सरकार और डाइरेक्टरों के बीच विभाजित रहता। इस प्रकार के प्रबन्ध में कोई भी बुद्धिमान विशेषज्ञ कार्य करने को न मिलता। इसके अतिरिक्त भारतीय कम्पनी रेल-निर्माण हेतु उचित धन भी इकट्ठा न कर सकती और सरकार को इस तरफ भी अधिक ध्यान देना पड़ता। इस प्रकार से पूँजीगत, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से भारतीय रेलों का सरकार द्वारा प्रबन्ध किया जाना ही अधिक हितकर समझा गया। सरकारी प्रबन्ध के अन्तर्गत राष्ट्रीय हित का अधिक ध्यान रक्खा जायगा। रेलों का विकास भी देश की आवश्यकतानुसार होगा। यात्रियों, व्यापारियों की

सुविधाओं का पूर्ण ख्याल रक्खा जायगा। जनता की शिकायतें राज्य-प्रबन्ध के अन्तर्गत ही अधिक सरलता के साथ दूर की जा सकती है। अभी तक रेलवे कम्पनियों ने जिस प्रकार भारतीय रेलों का प्रबन्ध किया था वह सब पूर्ण रूप से देश के हित में नहीं था। इस अनुभव से भी कमेटी के अधिकांश सदस्य राज्य-प्रबन्ध के ही पक्ष में थे। इससे कमेटी ने यही सिफारिश की, कि ६ हजार मील दूर बैठे हुए डाइरेक्टर्स भारतीय रेलों का प्रबन्ध उपयुक्त कुशलतापूर्वक नहीं कर सकते। इसलिए इस प्रकार के सब ठेकों को समाप्त करके भारतीय रेलों का प्रबन्ध राज्य द्वारा ही होना चाहिए।

इसी समय सन् १९२४ व २५ ई० में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला व ईस्ट इण्डियन रेलवे के ठेके समाप्त होने को थे और कमेटी की सिफारिशों के आधार पर १९२३ में ऐसेम्बली ने इन रेलों का राज्य द्वारा प्रबन्ध होने का प्रस्ताव पास कर दिया, जिसके फलस्वरूप इन कम्पनियों का प्रबन्ध राज्य के द्वारा होने लगा।

१९२१ से १९२५ तक का समय अकवर्थ कमेटी-सिफारिश कार्यान्वित काल समझा जाना चाहिए, क्योंकि इस समय में भारत की दो मुख्य रेलें कमेटी की सिफारिश के आधार पर राज्य-प्रबन्ध के अन्तर्गत कर ली गई। और यह काल १९३० तक समझा जाना चाहिए। क्योंकि इस समय में बर्मा रेलवे तथा दक्षिणी पंजाब रेलवे भी सरकार के कब्जे में आ गई। बी० बी० एण्ड सी० आई० व आसाम-बंगाल रेलवे १९४२ में, बंगाल व नार्थ वेस्टर्न रेलवे १९४३ में राज्य-प्रबन्ध में ले ली गई। बंगाल व नार्थ वेस्टर्न रेलवे, रुहेलखण्ड व कमायूँ रेलवे भी सरकार ने अपने हाथ में लेलीं और ये सब मिलाकर अवध और तिरहुत रेलवे के नाम से चलने लगीं।

अकवर्थ कमेटी की दूसरी मुख्य सिफारिश रेलवे बजट का साधारण बजट का पृथक्करण था। इसको भी सरकार ने मान लिया। मार्च सन् १९२५ ई० में प्रथम बार रेलों का पृथक बजट ऐसेम्बली में प्रस्तुत किया गया। १९२५ से ३० ई० तक भारतीय रेलों का समृद्धि काल कहा जा सकता है। अब तक देश में रेलों का काफी विस्तार हो चुका था। प्रथम युद्ध के पश्चात् का आर्थिक विकास तथा व्यापारिक समृद्धि अब भी अपना चमत्कार दिखा रहे थे, औद्योगिक उन्नति के साथ-साथ यातायात में भी उन्नति हुई। यह सन् १९३० तक बनी रही।

इसके बाद १९३१ से १९३६ तक भारतीय रेलों का शिथिल काल कहा जा सकता है। इस समय रेलों की आर्थिक दशा सोचनीय हो गई। इसका अध्ययन करने के लिए और इसे दूर करने के लिए जनवरी १९३६ में, सर ओटो नीमियर नामक विशेषज्ञ की नियुक्ति की गई, ताकि वे भारतीय रेलों के बारे में एक ऐसा सुझाव सरकार के समक्ष रक्खें जिससे भारतीय रेलों की उन्नति हो सके। सर ओटो नीमियर ने भारत के विभिन्न यातायात के साधनों के समन्वय तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारों के बीच राजस्व समझौता करने के लिए एक कमेटी की नियुक्ति की सिफारिश की। इसके फलस्वरूप १९३६ ई० में वैजवुड की अध्यक्षता में एक कमेटी की स्थापना की गई। कमेटी ने १९३७ में रिपोर्ट प्रकाशित की। कमेटी ने अनेक बातों की सिफारिश की। एक घिसावट कोष स्थापित करने का सुझाव दिया। साथ ही साथ जोर दिया कि भारतीय रेलें एक अच्छे रिजर्व फण्ड की स्थापना करें। कमेटी ने इस पर भी बल दिया कि रेलों को जनता से अधिक सम्पर्क रखना चाहिए, अच्छा व्यवहार रखना चाहिए व जनता व रेल-कर्मचारियों के मध्य उचित मात्रा में सहयोग होना चाहिए। कमेटी ने भाड़ा-दर तथा रेल-सड़क प्रतिस्पर्धा के बारे में अच्छी-अच्छी सिफारिशें

कीं। परन्तु इसी बीच द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव पड़ने लगा। और १९३९ से १९४७ तक का समय द्वितीय युद्धकाल है, जिसमें भारतीय रेलों को अधिक कठिनाइयाँ पड़ीं। १९३९ से ४७ तक का समय द्वितीय महायुद्ध का समय है, रेल-सेवा की माँग अधिक बढ़ गई व वास्तव में भारतीय रेलें द्वितीय युद्धकाल में भारतीय जनता की माँग को पूरा न कर सकीं। यद्यपि ये रेलें प्रथम महायुद्ध काल से अच्छी थीं, समृद्धि अधिक थी क्योंकि समृद्धि काल में इनके निर्माण पर काफी रुपया खर्च हो चुका था, फिर भी द्वितीय युद्ध के कारण सैनिक तथा नागरिक माँग इतनी बढ़ी कि रेलें सुगमता से उसकी पूर्ति न कर सकीं।

इस युद्धकाल में भारतीय रेलों में किसी प्रकार की उन्नति नहीं हुई, यहाँ तक कि उनकी मरम्मत भी ठीक से न हो सकी। पहिले तो जबकि भारतीय रेलों की आय कम हो गई थी, पूँजी के अभाव में मरम्मत आदि पर कम व्यय किया गया। परन्तु जब रेलों के पास मरम्मत आदि पर अधिक व्यय करने के लिए रु० हुआ तो युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसके कारण किसी प्रकार की मरम्मत न हो सकी, यहाँ तक कि अनिवार्य मरम्मत के लिए भी सुविधाएँ न मिलीं। जापान के लड़ाई में भाग लेने के कारण स्थिति और भी अधिक गम्भीर हो गई। इंजनों आदि की दशा बिगड़ गई, करीब ६०० मील लम्बी रेलवे लाइनें उखाड़ दी गईं, ४००० मील लम्बी लाइनें ४० लाख स्लीपर्स तथा बहुत से इंजन व डिब्बे सैनिक सहायतार्थ दूर भेजे गए। इसके साथ ही साथ भारत पूर्व की रक्षा का आधार था, इसलिए रेलों की सेवा-माँग अधिक-से-अधिक हो गई। यातायात के और भी साधन मोटर आदि की कमी के कारण, पेट्रोल की कमी से दुर्लभ हो गए। अनेकों मोटरें लड़ाई-कार्य में प्रयोग की जाने लगीं। इन सब कारणों से भारतीय रेलों का यह काल एक कठिन काल सा हो गया। भारतीय रेलों को असाधारण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। रेल-सामग्री में काफी घिसावट हुई और भारतीय रेलों की वर्कशाप्स रेलों की मरम्मत में भी असफल होने लगीं। कुछ रेलवे वर्कशाप युद्ध सामग्री बनाने लगीं, जिससे मरम्मत-कार्य और भी कठिन हो गया। इस प्रकार भारतीय रेलों को इस काल में कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

इस समय जनता को भी काफी असुविधा का सामना करना पड़ा। सन् १९३९ व ४० की अपेक्षा सन् १९४४-४५ में यात्रियों की संख्या ४० करोड़ अधिक हो गई। युद्ध की माँग इतनी प्रबल हो गई कि रेलों को नागरिक जनता से कम यात्रा करने का अनुरोध करना पड़ा। भाड़ा व यात्रा की विभिन्न रियायतें समाप्त करनी पड़ीं, मेला आदि के लिए सुविधाएँ हटा दी गईं। पैसेन्जर गाड़ियों में बहुत कमी की गई और यात्री अनियमित रूप से डिब्बों के बाहर लटक-लटक कर यात्रा करने लगे। माल भेजने के डिब्बों में भी काफी कमी आ गई। उद्योगों तथा व्यापारियों को अपना माल भेजने के लिए महीनों प्रतीक्षा करने की आवश्यकता हो गई और कभी-कभी उद्योगों को कच्चे माल अथवा कोयलों की कमी के कारण बहुत दिन तक अपना काम बन्द कर देना पड़ा।

सन् १९४२ ई० में एक War Transport Board की स्थापना की गई। इस बोर्ड के सामने तीन मुख्य समस्यायें थीं—

(१) रेल, सेना तथा अन्य सामग्री को किस प्रकार ले जाय।
(२) और किन-किन यातायात के साधनों का प्रयोग किया जाय।
(३) उनके लिए किस प्रकार का प्रबन्ध किया जाय।

इसी साल एक केन्द्रीय यातायात संस्था तथा स्थानीय यातायात संस्थाएँ स्थापित की गईं। इन सब संस्थाओं का मुख्य काम था कि वे उस समय के ट्रैफिक को रेल-सेवा पाने को निरुत्साहित करें। इस प्रकार यद्यपि इस काल में रेलें जनता का कार्य पूरी तरह न कर सकीं, फिर भी युद्ध-संचालन में तथा नागरिकों की अनिवार्य यातायात आवश्यकताओं को पूरा करने में रेलों ने पर्याप्त प्रयत्न किया और उसमें सफल भी रहीं।

युद्धकाल में इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी रेलों ने अपनी आय काफी बढ़ा ली। १९३९ व ४० में भारतीय रेलों की भी आय करीब ११९ करोड़ रु० थी, जो कि बढ़ कर १९४४–४५ में करीब २३३ करोड़ हो गई। इसके अतिरिक्त भारतीय रेलों ने जो ऋण लिया था या केन्द्रीय सरकार को जो कुछ अपना हिस्सा का रु० न दे सकी थी, उस सब का भुगतान इस काल में कर दिया गया। सन् १९४३ में इस विषय में एक विशेष प्रकार का प्रस्ताव भी किया गया, जिसके अनुसार रेलों द्वारा केन्द्रीय सरकार को दिए जाने वाला हिस्सा प्रतिवर्ष निश्चित करने की प्रणाली निश्चित की गई। सन् १९४६–४७ ई० में एक Betterment Fund की स्थापना की गई कि जो थर्ड क्लास यात्रियों और रेलवे कर्मचारियों को सुविधाएं देने में व्यय किया जायगा।

Q. 33. Discuss the arguments for and against the state management of railways in India. (A.U. 1944)

Q. 34. Historical cases rather than theoretical considerations have determined any particular system of railway management and operation. In the light of the above examine critically the question of the state management and operation of railway in India. (A.U. 1949)

भारतवर्ष में राज्य द्वारा रेल प्रबन्ध व संचालन

सन् १९२० के पश्चात् इस समस्या पर बहुत वाद-विवाद आरम्भ हुआ कि भारतीय रेलों का प्रबन्ध व संचालन राज्य स्वयं करे या व्यक्तिगत कम्पनियों के हाथ में रहे। सैद्धान्तिक तौर पर तो रेलों का राज्य द्वारा प्रबन्ध व संचालन ही श्रेष्ठतर माना जाता है। परन्तु जब हम किसी विशेष देश के प्रति इस सिद्धान्त को लागू करते हैं तो अन्य परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना पड़ता है। साधारण तौर पर राज्य रेल-उद्योग अपने हाथ में तभी लेता है कि जब उसका कोई राजनैतिक उद्देश्य हो या व्यक्तिगत कम्पनियाँ उद्योग का संचालन न कर सकें या ये कम्पनियाँ जनता को उचित सुविधायें न दे सकें। भारत की रेलों के सम्बन्ध में प्रायः ये सारे कारण उपस्थित थे, जिनके आधार पर राज्य-प्रबन्ध व संचालन ही उचित समझा जाता था। भारतवर्ष में वैसे ही अधिकांश रेलवे लाइनें राज्य के अधिकार में है और बहुत सी राज्य की रेलवे लाइनें लंदन स्थित कम्पनियों द्वारा चलाई जाती थीं, परन्तु अधिकतर लोगों का मत यही रहा कि रेलों का प्रबन्ध व संचालन-कार्य राज्य द्वारा ही चलाया जाना चाहिए और यही राय अक्वर्थ कमेटी के अधिकांश सदस्यों की थी। कम्पनी के सदस्यों के मतानुसार यद्यपि अंग्रेजी कम्पनियों ने भारतीय रेलों में अपना रु० लगाया, अपने कर्मचारियों द्वारा चलाया, सारे रेल-उद्योग का उचित प्रबन्ध किया, परन्तु इन अंग्रेजी कम्पनियों द्वारा राज्य रेलवे चलन के कारण उनकी स्थिति भिन्न है। रेलवे संपत्ति उनकी नहीं है। आर्थिक उत्तरदायित्व भी उनका कम है। इसके अतिरिक्त कम्पनियों का प्रबन्ध नाम मात्र का ही है, क्योंकि नियुक्तियों

तथा नीति आदि मुख्य-मुख्य बातें सरकार द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। इस प्रकार भारत में ये कम्पनियाँ बिना सरकारी सहायता के अथवा बिना सरकार की राय के न तो किसी प्रकार का प्रबन्ध में परिवर्तन कर सकती हैं न किसी नई दशा में कोई कदम उठा सकती हैं। इसके साथ-साथ सरकार भी कोई विशेष रुचि रेलों में नहीं ले रही है। इस प्रकार वर्तमान प्रबन्ध प्रणाली के अनुसार सरकार का नियन्त्रण होने के कारण कम्पनियाँ स्वयं कुछ नहीं कर सकतीं, और कम्पनियों के हाथ में प्रबन्ध होने के कारण सरकार भी आर्थिक हानि अथवा अन्य जोखिम को कम नहीं कर सकती। राज्य द्वारा प्रबन्ध और संचालन के अतिरिक्त एक उपाय यह भी हो सकता है कि अंग्रेजी कम्पनी के स्थान पर भारतीय कम्पनी स्थापित कर दी जायँ। परन्तु इससे कोई विशेष लाभ नहीं दीखता। इस दशा में भी सरकार ही मुख्य साझीदार रहेगी. आधे डाइरेक्टर्स वही नियुक्त करेगी, चेयरमैन को मनोनीत करेगी सरकार और बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर दोनों के उत्तरदायित्व अलग-अलग रहेंगे। इस प्रकार कर्मचारी दो संस्थाओं के दबाव में कार्य करेंगे। एक ओर उन्हें सरकारी आज्ञा पालनी होगी दूसरी ओर बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स को भी खुश रखना होगा। इस दशा में रेलवे उच्च अधिकारियों का कार्य उचित प्रकार से नहीं हो सकेगा। कुशल कर्मचारी इस प्रकार से कार्य करने को तैयार भी न होंगे। इसलिये अंग्रेजी कम्पनियों के बजाय भारतीय कम्पनियों के स्थापित करने से विशेष लाभ न होगा। इसके अतिरिक्त भारतीय कम्पनी इच्छित पूँजी एकत्रित न कर सकेगी, इसके लिए सरकार को भी आगे आना पड़ेगा। चूँकि रेल निर्माण हेतु पूँजी भारत में ही प्राप्त करनी चाहिए व देश में कम्पनी की अपेक्षा सरकार को ही पूँजी सरलता से मिल सकती है, तो जब पूँजी एकत्रीकरण का भार सरकार को ही लेना पड़े तो फिर सरकार रेलों के प्रबन्ध व संचालन को भी अपने हाथ में क्यों न लेले। ऐसा करने से ही रेलों के लिए पूँजी और सुगमता से प्राप्त हो सकेगा। यदि संयोगवश पूँजी विदेशों से लेनी पड़े तो यह कार्य भी सरकार द्वारा सुगमता से हो सकेगा। इसके अतिरिक्त विदेशी कम्पनियों ने रेलों का प्रबन्ध व संचालन करने में राष्ट्रीय हित का ध्यान बिल्कुल नहीं रक्खा। यह दोष सरकारी प्रबन्ध व संचालन के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। जहाँ-जहाँ सरकार ने भारतीय रेलों का प्रबन्ध किया है वहाँ-वहाँ उसे कम सफलता नहीं मिली। इसमे यह भय कि सरकारी प्रबन्ध आर्थिक दृष्टि से असफल रहेगा, असत्य ही सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत कम्पनियाँ, रेलों का विकास, नये रेल-मार्गों के बनाने का कार्य अपनी सुविधा तथा लाभ के लिए करेंगी, जिससे देश के विभिन्न भागों में रेल-यातायात की सुविधाएँ असमान रहेंगी। यह बुराई भी सरकारी प्रबन्ध द्वारा ही दूर हो सकती है। साथ ही साथ सरकारी प्रबन्ध में यात्रियों व व्यापारियों को विशेष सुविधाएं मिल सकती हैं व जनता की शिकायतें भी सरकारी प्रबन्ध से ही शीघ्र दूर हो सकती हैं। लन्दन स्थित कम्पनियाँ इस प्रकार की शिकायतें मिटाने में असमर्थ रहीं। एक तो वह कार्य-क्षेत्र से बहुत दूर थीं, इससे यहाँ की असुविधाओं का उन्हें ठीक-ठीक आभास नहीं हो सकता था। दूसरे, उनकी नीति वहीं के व्यापारियों द्वारा प्रभावित हुआ करती थी। इन कारणों से यही उचित समझा गया कि रेलों का कम्पनी-प्रबन्ध व संचालन ठेकों की अवधि-समाप्ति पर समाप्त कर दिया जाय और राज्य ही रेलों का प्रबन्ध व संचालन अपने हाथ में ले ले।

Q. 35. Write notes on—The Indian Railway enquiry Committee 1947. (कुँजरू कमेटी)

द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने के बाद भारतीय रेलवे कर्मचारियों के फेडरेशन ने सरकार के समक्ष अपनी कुछ माँगें रक्खीं। वे वेतन, महंगाई, कार्य करने के घण्टे तथा छुट्टी लेने के नियमों आदि में सुविधाओं से सम्बन्धित थीं। सरकार ने पहिले इन माँगों पर विचार करने के लिए एक केन्द्रीय वेतन-समिति की नियुक्ति की, परन्तु इससे लोगों को संतोष न हुआ। इस कारण से १९४६ ई० में भारतीय सरकार ने एकRailway enquiry committee की नियुक्ति की, जिसका कार्य रेल की आय में वृद्धि के उपाय सुझाना तथा रेलवे के अतिरिक्त कर्मचारियों को कार्य दिलाने के ऊपर विचार करने का था। पहिले तो कमेटी का कार्य विभाजन के कारण उचित रूप से नहीं हुआ, परन्तु मार्च १९४८ से नवम्बर १९४८ तक पं० हृदयनाथ कुँजरू की अध्यक्षता में इस कमेटी ने अपना कार्य पूरा किया। कमेटी की रिपोर्ट १९४९ ई० में सरकार को दी गई, जो मार्च १९५० में प्रकाशित हुई।

कमेटी ने रेलवे की विभिन्न समस्याओं पर विचार किया। उसके मतानुसार भारतीय रेलवे कर्मचारियों की कार्य-क्षमता ३३ से ४० प्रतिशत तक कम हो गई थी। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण कर्मचारियों में कुछ अनुशासनहीनता आ गई थी। लोग कार्य में रुचि नहीं लेते थे। नौकरी से अलग होने का डर लगा रहता था। निरीक्षकों को अपने कार्य का अनुभव नहीं था। कमेटी ने सिफारिश की job analysis के आधार पर रेलवे workshops में अतिरिक्त कर्मचारियों की संख्या का अनुमान लगाकर फिर उसमें सुधार करने का विचार किया जाय। श्रमिकों को अधिक शिक्षित बनाने की सिफारिश की गई, जिससे कि उनकी कार्य-क्षमता बढ़ जाय। Calcutta sub-urban Railway को बिजली से चलाने की सिफारिश की और भारतीय रेलों को अधिक उन्नतिशील बनाने के लिए विभिन्न उपायों की सिफारिश की। कमेटी ने भारतीय रेलों के पुनर्वर्गीकरण के प्रश्न को पाँच साल को स्थगित करने का मत प्रकट किया। कमेटी रेलवे बोर्ड के कार्य से भी असंतुष्ट थी। इसके स्थान पर एक statutory organisation को स्थापित करने की सिफारिश की।

इसी प्रकार कमेटी ने grain shops को बन्द करने की भी सिफारिश की। यद्यपि इनमें से अनेक सिफारिशों को सरकार ने मान लिया, परन्तु दो मुख्य सिफारिशों को अस्वीकृत कर दिया। अर्थात् grain shops को समाप्त करने और पुनर्वर्गीकरण को ५ साल तक स्थगित रखने की बात को सरकार ने नहीं माना।

सन् १९२४ ई० से रेलों का बजट पृथक रूप से तैयार किया जा रहा था जिसका परिणाम बहुत हितकर नहीं हुआ और इस प्रणाली ने भारतीय रेलों को कोई अधिक लाभ नहीं पहुँचाया। तत्कालीन अर्थमंत्री का मत था कि यह convention यथा संभव शीघ्र ही परिवर्तित कर दिया जाय। कुँजरू कमेटी ने भी इस convention के बारे में खोज बीन करने का मत प्रकट किया। सन् १९४९ ई० में इस convention की कार्य-प्रणाली के अध्ययन हेतु १९४९ ई० में धारा सभा के सदस्यों की एक कमेटी का निर्माण किया गया। इस कमेटी का कर्तव्य convention की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करने के साथ ही साथ Railway depriciation reserve fund, Railway betterment fund और Railway reserve fund के बारे में भी विचार करना था इस कमेटी की सिफारिशें भारतीय सरकार ने १९५०-५१ में मान लीं। इन सिफारिशों के आधार पर new convention के बारे में निम्नांकित मुख्य धाराएँ रक्खी गई।

(१) रेलवे तथा साधारण बजट के सम्बन्ध में इस प्रकार से परिवर्तन कर दिया गया जिससे कर अदा करने वाली जनता एक share holder के रूप में समझी जाने

लगे। इसके अनुसार साधारण बजट को ४ प्रतिशत वार्षिक dividend रेलों में लगी हुई पूँजी पर मिला करेगा।

(२) १५ करोड़ रु० प्रतिवर्ष depriciation Reserve fund में जमा किए जायँगे और जो व्यय भार में डाले जायँगे।

(३) Railway reserve fund का नाम बदल कर Revenue reserve fund रक्खा गया। इसका उपयोग साधारण बजट में रु० देने में तथा व्यय की कमी को पूरी करने में किया जायगा।

(४) एक development fund की स्थापना की गई जिसका रु० यात्रियों को सुविधाएँ प्रदान करने में कर्मचारियों को कल्याणकारी कार्यों में व्यय किया जायगा। पहिले के betterment fund का रु० इसी में मिला दिया गया और ये निश्चय किया गया कि ५ साल तक ३ करोड़ रु० प्रति वर्ष के हिसाब से यात्रियों की सुविधाओं पर व्यय किया जायगा।

(५) Capital और revenue की मदों में, व्यय के विभाजन करने के नियमों में परिवर्तन कर दिया गया। replacement का पूरा व्यय depriciation fund से निकाला जायगा और revenue के मद से खर्च करने वाली रकम १० हजार से २५ हजार तक बढ़ा दी गई। ३ लाख रु० की रकम रेलों की कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए revenue से निकाली जाया करेगी और यदि इससे अधिक व्यय होगा तो वह Railway development fund से लिया जायगा। इसी तरह नई आवश्यक परन्तु अनार्थिक रेलवे लाइनों के निर्माण करने का व्यय Railway development fund से लिया जाया करेगा। उपर्युक्त सिफारिशें ५ साल तक लागू रहेंगीं, इसके बाद parliament की एक कमेटी फिर बैठेगी जो dividend की दर पर फिर विचार करेगी।

New convention के गुण—

(१) New convention के प्रथम व्यय का विभाजन ठीक प्रकार से नहीं होता था। उदाहरण के लिए इससे पहिले अनार्थिक लाइनों पर एक निश्चित सीमा के बाद कुछ खर्च नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार यात्रियों तथा कर्मचारियों को सुविधाएँ देने के लिए आय में से कुछ भी व्यय नहीं किया जा सकता था और प्रबन्धक पूँजी के मद में से इन पर खर्च करने में असमर्थता दिखाते थे; और इस कारण से कर्मचारियों और यात्रियों को पर्याप्त सुविधाएँ न मिल पाती थीं। नये convention ने इस कठिनाइयों को दूर कर दिया है।

(२) कर प्रदान करने वाली जनता भारतीय रेलों के सम्बन्ध में share holders की स्थिति में हो गई है, जिसके कारण रेलवे जनरल बजट को ४ प्रतिशत उधार ली हुई पूँजी पर dividend देगी और general budget उधार ली हुई पूँजी पर ब्याज देगा। परन्तु ब्याज से dividend अधिक होता है इसलिए general revenue fund में रेलों की ओर से कुछ न कुछ रु० जमा होता रहेगा। ऐसा अनुमान किया जाता है कि हर साल ६॥ करोड़ रु० के लगभग रेलें general budget को दिया करेंगी। इसके अतिरिक्त अधिक आय वाली वर्षों में कमाई हुई अतिरिक्त आय development fund के निर्माण में लगाई जायगी और इस fund से रेल-निर्माण कार्य बराबर होता रहेगा और इसके लिए रेलों को उधार लेने की आवश्यकता न पड़ा करेगी। इस तरह भविष्य में निर्माण कार्य General revenue और Railway

development fund दोनों से पूँजी प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार भविष्य में रेल-निर्माण तथा रेल सम्बन्धी अन्य कार्यों के लिए पर्याप्त पूंजी का प्रबन्ध होता रहेगा।

दोष—इतना सब होते हुए भी भारतीय रेलों को General finance से पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हुई है। वास्तव में General finance, Railway के लिये एक Banker का कार्य करता है। यदि भारतीय सरकार की आर्थिक दशा में गड़बड़ी आ जाय तो उसका प्रभाव भारतीय रेलों के विभिन्न funds पर भी पड़ेगा। और इस कारण ऐसे समय में रेलवे निर्माण-कार्यों में बाधा पड़ सकती है।

Q. 36 Summarise briefly the effects of partition of the country on Indian Railways.

भारतीय रेलों पर विभाजन का प्रभाव

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् देश का विभाजन हुआ जिसके फलस्वरूप बहुत सी समस्यायें उपस्थित हुई। भारतीय रेलों पर भी इस विभाजन का बुरा असर पड़ा। पाकिस्तान निर्माण होने से नार्थ वेस्टर्न रेलवे व बंगाल आसाम रेलवे का अधिकांश भाग पाकिस्तान में चला गया। जोधपुर-हैदराबाद रेलवे का कुछ भाग भी पाकिस्तान में हो गया। शेष रेलें भारत में ही रहीं। यदि हम पूँजी तथा मीलों के हिसाब से ध्यान दें तो भारत में करीब ६६८ करोड़ रु० पूँजी की लागत की ३४०८३ मील रेलें भारत में रहीं और १३६ करोड़ रु० की ६९५७ मील रेलें पाकिस्तान को मिलीं। इसी प्रकार रेलवे की वर्कशाप्स का विभाजन भी दोनों देशों के बीच हुआ। विभाजन के समय यह समझा गया था कि रेलवे कर्मचारियों पर विभाजन का कोई आपत्तिजनक प्रभाव न पड़ेगा लेकिन साम्प्रदायिक झगड़ों ने रेलवे कर्मचारियों पर भी बुरा प्रभाव डाला। हिन्दू कर्मचारियों ने भारत में तथा मुस्लिम कर्मचारियों ने पाकिस्तान में रहना पसन्द किया। चूँकि निपुण कर्मचारी अधिकांशतः मुसलमान ही थे, अतः भारतीय रेलों को निपुण कर्मचारियों के अभाव का सामना करना पड़ा। बहुत सी भारतीय रेलों में ड्राइवर, फायरमैन, ब्लैक स्मिथ कॉपर स्मिथ और टिनस्मिथ की भारी कमी पड़ गई। ड्राइवरों की कमी के कारण लगभग तिहाई मालगाड़ियाँ बन्द कर देनी पड़ीं। कोयले का लदान कम कर दिया गया जिसके फलस्वरूप खदानों पर बहुत-सा कोयला इकट्ठा हो गया। औद्योगिक केन्द्रों में कोयले की कमी से उत्पादन में भी कमी आ गई। इसके विपरीत भारत में जो रेलवे कर्मचारी आए वे अधिकांशतः क्लर्क थे जिन्हें कार्य में रोजगार देना भारत की रेलों के लिए कठिन हो गया। विभाजन के फलस्वरूप सामान के आने-जाने पर भी अन्तर पड़ा। विभाजन के पूर्व देश का बहुत-सा सामान करांची बन्दरगाह होकर बाहर जाता था, वह अब बम्बई होकर जाने लगा। इसलिए बम्बई को जाने वाली रेलों पर ट्रैफिक अधिक हो गया जिससे यातायात में कठिनाई प्रतीत होने लगी। आय-व्यय की दृष्टि से विभाजन के फलस्वरूप भारतीय रेलों की आय कम हो गई और व्यय बढ़ गया। इसके कारण अगस्त १९४७ से लेकर मार्च १९४८ तक भारतीय रेलों को २.७४ करोड़ रु० का घाटा हुआ।

विभाजन के फलस्वरूप जो गृह-युद्ध हुआ, उससे भी रेलों को भारी क्षति उठानी पड़ी। लाखों रुपये की सम्पत्ति जनता द्वारा नष्ट कर दी गई। अराजकता फैलने और कर्मचारियों के काम पर न जा सकने के फलस्वरूप भी रेलवे की कार्य-क्षमता में काफी बाधा पहुँची।

इसके अतिरिक्त "कानपुर की सूती मिलें बहुधा रुई पंजाब से मँगाया करती थीं।

अब वह रुई विदेश जाने लगी और कानपुर की मिलों को मध्य प्रदेश व बरार से रुई मँगाने का प्रबन्ध करना पड़ा। करांची के पाकिस्तान में चले जाने के कारण दिल्ली, बम्बई मार्ग पर खाद्यान्नों और पेट्रोल का यातायात अत्यन्त बढ़ गया। ईस्ट इण्डिया रेलवे प्रतिदिन ४०० डिब्बे कोयला नार्थ वेस्टर्न रेलवे को दिया करती थी। वह मार्ग बन्द होने से यह यातायात अन्य मार्गों से भेजने का प्रबन्ध किया गया। इस भाँति यातायात की दिशा में ही भारी परिवर्तन नहीं हुआ, उसकी मात्रा भी अत्यन्त बढ़ गई। फलत: रेलों का कार्य-भार असह्य हो गया। पूर्वी पंजाब की रेल पर यह भार सबसे अधिक था"। इसी प्रकार अन्य रेलों को भी अपनी कार्य-क्षमता से कहीं अधिक कार्य करना पड़ा, जिससे उनके Rolling stock में काफी घिसावट व टूट-फूट हुई, जिसकी मरम्मत होने में समय भी बहुत लगा और धन भी काफी व्यय हुआ। युद्ध के कारण इन रेलों की दशा वैसे ही अस्त-व्यस्त थी, अब हालत और भी बिगड़ गई, विशेषकर उपयुक्त कुशल कर्मचारियों के अभाव में रेलों को और भी अधिक हानि उठानी पड़ी।

Q. 37. Write a note on the re-organisation of Indian Rly.

रेलों का पुनर्वर्गीकरण

रेलों के पुनर्वर्गीकरण का प्रश्न कुछ समय से एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया था। यहाँ तक कि अकवर्थ समिति के सामने भी राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर विचार करते समय रेलों के पुनर्वर्गीकरण के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक समझा गया था। परन्तु उस समय इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। २०वीं शताब्दी के आरम्भ से ही विशेष कर प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अन्य देशों में भी रेलों के एकीकरण, प्रमापण तथा वर्गीकरण आदि समस्याओं की ओर ध्यान दिया जाने लगा था। बहुत-सी रेलवे लाइनों के स्थान पर सबको मिलाकर थोड़ी रेलवे लाइनों का संचालन अधिक अच्छा समझा जाता था, जिससे प्रबन्ध में एकरूपता आसानी से आ सके। भारतवर्ष में भी १९०४ ई० में दक्षिणी भारत के रेलों के वर्गीकरण का प्रश्न उठा था, लेकिन वह प्रश्न आगे नहीं बढ़ा। अकवर्थ कमेटी ने भी भारतीय रेलों के निम्नांकित तीन वर्ग करने का सुझाव दिया था।

(१) पश्चिमी वर्ग—ग्रेट इंडियन पेनिनशुला, बम्बई, बड़ौदा व सेण्ट्रल इण्डिया, नार्थ वेस्टर्न और जोधपुर, बीकानेर रेलें तथा उनकी उपसहायक रेलें।

(२) पूर्वी वर्ग—ईस्ट इण्डियन, अवध, रुहेलखण्ड, बंगाल व नार्थ वेस्टर्न, रुहेलखण्ड कमायूँ, आसाम-बंगाल, बंगाल-नागपुर और ईस्टर्न बंगाल रेलें तथा बन्दरगाहों की रेलें और स्थानीय रेलें।

(३) दक्षिणी वर्ग—मद्रास व साउथ मरहठा, साउथ इण्डियन, निजाम की रेलें, और इस क्षेत्र के बन्दरगाहों की रेलें तथा अन्य स्थानीय रेलें। इसके पश्चात् 'इंचकेप समिति ने भी इसी प्रकार के वर्गीकरण का समर्थन किया पर वैजवुड समिति ने भारतीय रेलों को निम्न आठ इकाइयों में बाँटने का सुझाव दिया।

(१) ईस्टर्न इण्डियन रेलवे
(२) ईस्टर्न बंगाल और आसाम बंगाल रेलवे
(३) नार्थ वेस्टर्न रेलवे
(४) ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे
(५) बौम्बे बड़ौदा व सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे
(६) मद्रास व साउथ मरहठा और साउथ इण्डियन रेलवे

(७) बंगाल नागपुर रेलवे
(८) बंगाल व नार्थ वेस्टर्न रेलवे

परन्तु इस वर्गीकरण पर भी सरकार ने विशेष ध्यान नहीं दिया। तत्पश्चात कुंजरू समिति ने इस प्रश्न को ५ वर्ष के लिए स्थगित करने का सुझाव दिया, क्योंकि देशी राज्यों और उनकी रेलों के भारत में सम्मिलित न होने तक यह वर्गीकरण अपूर्ण ही रहता। इसके साथ-साथ स्वतन्त्रता तथा विभाजन के कारण राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियाँ पूर्णरूप से स्थिर नहीं हो पाई थी। ऐसी परिस्थिति में रेलों की वर्गीकरण योजना ठीक प्रकार से लागू नहीं की जा सकती थी। परन्तु १९५० ई० तक देशी रियासतों की सभी रेलों को भारत सरकार ने ले लिया। देश की अन्य परिस्थितियों में भी सुधार हो गया। इससे भारत सरकार ने पुन-वर्गीकरण की योजना जनता के सामने रक्खी, जिस पर काफी आलोचना की गई। अन्त में यह योजना Central advisory council for Railways के सम्मुख रक्खी गई जिसने जनता के विभिन्न वर्गों की आलोचनाओं को ध्यान में रखते हुए निम्नांकित रूप से भारतीय रेलवे का पुनर्वर्गीकरण स्वीकृत किया। इस योजना के अनुसार ३३५८२ मी० लम्बी सरकारी रेलें निम्नांकित ६ क्षेत्रों में विभाजित की गई हैं।

रेल का नाम	मुख्यालय	कुल लम्बाई मीलों में	कौन-कौन-सी रेलें सम्मिलित की गई	प्रारम्भ होने की तिथि
(१) दक्षिणी रेलवे	मद्रास	६,०१६	मद्रास व साउथ मरहटा, साउथ इण्डियन और मैसूर की रेलें।	१४ अप्रैल १९५१
(२) मध्यवर्ती रेलवे	बम्बई	५,४२८	ग्रेट इ० पेनिनसुला, निजाम राज्य, सिंधिया व धौलपुर राज्यों की रेलें।	५ नवम्बर १९५१
(३) पश्चिमी रेलवे	बम्बई	५,६३१	बम्बई बड़ौदा व सेण्ट्रल इण्डिया, सौराष्ट्र, कच्छ जयपुर राज्य व राजस्थान की रेलें।	५ नवम्बर १९५१
(४) उत्तरी रेलवे	दिल्ली	६,०४०	पूर्वी पंजाब, जोधपुर, बीकानेर की रेलें, ईस्ट इण्डिया रेलवे, लखनऊ, इलाहाबाद, मुरादाबाद के भाग तथा पश्चिमी रेलवे का दिल्ली रेवाड़ी फजलिका भाग।	१४ अप्रैल १९५२
(५) उत्तरी पूर्वी रेलवे	गोरखपुर	४,८०१	अवध, तिरहुत व आसाम रेलें, पश्चिमी रेलों का कानपुर अछनेरा भाग।	१४ अप्रैल १९५२
(६) पूर्वी रेलवे	कलकत्ता	५,६७५	ईस्ट इण्डियन रेलवे के शेष भाग व बंगाल नागपुर रेलें	१४ अप्रैल १९५२

पुनर्वर्गीकरण के लाभ—स्वभावत: रेलों की अनेक छोटी-छोटी इकाइयाँ होने से जनता को जो कठिनाइयाँ व क्लेश होते थे वे सब पुनर्वर्गीकरण से दूर हो जायँगे। और रेलों के कार्य-कौशल, सेवा-क्षमता तथा व्यवहार में सुधार होकर एकरूपता और नैतिक सामंजस्य स्थापित हो जायगा। बड़ी-बड़ी रेलें स्थानीय जनता की अच्छी सेवा करने में समर्थ हो सकेंगी। प्रबन्ध और प्रशासन के क्षेत्र में मितव्ययिता हो सकेगी। उच्च अधिकारियों की संख्या कम हो जायगी व पारस्परिक लेन-देन व हिसाब-किताब के समायोजन की सुविधा हो सकेगी। पुनर्वर्गीकरण के पूर्व रेलों की ३५ इकाइयाँ थीं, जिसमें सबके लिए अलग-अलग एक जनरल मैनेजर और उसके आफिस कर्मचारियों की आवश्यकता होती थी। अब केवल २१ इकाइयाँ रह गई हैं, इससे व्यय में काफी कमी आ जायगी। बड़े पैमाने से जो उत्पादक को लाभ होता है वे सारे लाभ अब रेलों को प्राप्त हो सकेंगे। अब भारतीय रेलों का अधिकतर सामान रेलवे बोर्ड द्वारा खरीदा जाता है। इसमें काफी मितव्ययिता होती है। आपसी प्रतियोगिता कम हो गई है, जिससे विज्ञापन आदि पर व्यय भी कम करना पड़ता है। इसी प्रकार टिकट बाँटने के लिए कम दफ्तर तथा थोड़े कर्मचारियों की आवश्यकता रह गई है। गाड़ियों के लदान आदि में भी सुधार हो गया है। आवश्यकता पड़ने पर किराये भाड़े में भी काफी कमी हो सकती है। रेलें पहिले से अच्छी सेवा में समर्थ हो सकती हैं, और सम्बन्धित क्षेत्र का अच्छा आर्थिक विकास होने की सम्भावना है।

रेलों के पुनर्वर्गीकरण की आलोचना

पुनर्वर्गीकरण के पश्चात् रेलों के ऊपर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुनर्वर्गीकरण के जो लाभ रेलों को होने चाहिए थे वे नहीं हुए। न तो प्रबन्ध में ही विशेष रूप से सुधार हुआ है और न उनके संचालन-व्यय में ही किसी प्रकार की कमी आई है। वरन् रेलों के संचालन व्यय में प्रतिवर्ष भारी वृद्धि होती जा रही है, जिससे यही प्रकट होता है कि भारतीय रेलों की कार्य-क्षमता दिन-प्रति-दिन कम होती चली जाती है। बड़ी इकाइयाँ बनने के उपरान्त व्यय कम होना चाहिए था, परन्तु यह नहीं हुआ। व्यय-वृद्धि के साथ यदि आय भी बढ़ती जाती तो भी लाभ हो सकता था, परन्तु गत वर्षों के आय-व्यय के आँकड़ों से प्रकट होता है कि व्यय-वृद्धि के साथ ही साथ आय घटती जा रही है। और इनके कारण लाभ की मात्रा में कमी होती चली जा रही है। घटते हुए लाभ के कारण रेलों के reserve fund और development fund में कम रु० जमा हो रहा है। इसके कारण भविष्य में रेलों का विकास कम होगा, तथा विकास-क्रम में बाधा पड़ने से देश के आर्थिक विकास में भी बाधा पड़ेगी, और संभव है कि पंचवर्षीय योजना भी पूर्ण रूप से सफल न हो सके। यद्यपि विभाजन के पश्चात् संचालन-अनुदान कम होता जा रहा था और पुनर्वर्गीकरण के फलस्वरूप इसमें और भी कमी होनी चाहिए थी परन्तु वह भी बढ़ता जा रहा है। वास्तव में पुनर्वर्गीकरण के बाद आय कम होती जाती है, व्यय बढ़ते जाते हैं, लाभ घटता जाता है। दुर्घटनाएँ बार-बार होती हैं। इन सबसे यही स्पष्ट होता है कि पुनर्वर्गीकरण से रेलों को विशेष लाभ नहीं हुआ। विशेषज्ञों के अनुसार जो रेलें पुनर्वर्गीकरण से पूर्व अपने कार्य-कौशल के लिये प्रसिद्ध थीं वे पुनर्वर्गीकरण के बाद कार्य-क्षमता में नीचे की ओर जा रही हैं। जब पुनर्वर्गीकरण योजना बन रही थी उस समय भी विशेषज्ञों ने यह राय दी थी कि देश में ४००० मील से बड़ी रेलों का सुप्रबन्ध संभव नहीं, किन्तु भारत सरकार ने इस सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसी कारण रेलों का प्रबन्ध समुचित रूप से नहीं हो रहा है। लोक सभा के अनेक सदस्यों ने इस पुनर्वर्गीकरण योजना को अवैज्ञानिक बताया है।

इस योजना के प्रारम्भ करते समय यह कहा गया था कि पुनर्वर्गीकरण के बाद भारतीय रेलें देश की विकासोन्मुख अर्थ व्यवस्था और नई योजनाओं की अच्छी सेवा करने में समर्थ हो सकेंगी । परन्तु इनमें से कुछ भी नहीं हो रहा है । लोगों की यह धारणा है कि जब तक पुनर्वर्गीकरण पर पुनः विचार न होगा और कोई श्रेष्ठतर संगठन न अपनाया जायगा रेलों का सुधार होना असम्भव-सा ही प्रतीत होता है ।

CHAPTER VII

Railway Administration and Finance.

Originally the Secretary of State for India had a right to regulate rates and fares. Besides, an official Director was appointed to join the Board of Direcrors of all the railway companies. In India, a consulting Engineer for guaranteed railways was appointed to superwise railways in India. Later on, various consulting engineers were appointed to superwise different railway systems. The chief consulting engineer co-ordinated the work.

In 1870 a consulting engineer for state railways was appointed. In 1874 a State Railway Directorate was formed. In 1877 the state railways were divided into three systems and each system was placed under one director. A Director of State Railway stores was appointed. In 1879, the posts of two Directors were abolished and their work was taken over by the Government consulting engineers for guaranteed railways. A director General for all the railways was appointed. A new post of a Director of traffic was also created. Thus by this time at the headquarters there was a Director general of railways, a Director of stores, a director of traffic an accountant general and a consulting engineer.

In 1897, instead of the Director General of railways a Secretary to the Government of India in the Public Works Department was appointed. The post of consulting engineer was also abolished. In 1909 Mr. Thomas Robertson was appointed to study the problems of Indian railways. On the basis of his recommendations in the year 1905 the Railway Board consisting of a chairman and two members. was instituted The Board was subordinate and directly responsible to the Department of Commerce and Industry of the Government of India, but became independent after the year 1907 in accordance with the recommendations of the Railway Finance (Mackay) Committee of 1907. In 1909 a chief engineer was appointed to the Railway Board to advise it. The Board, however remained in the charge of the commerce member, from whom the Board did not receive a fair treatment.

The Acworth Committee on the Railway Board, therefore recommended for the independence of the Railway Board in its own administration. The constitution of the Board was modified and the chief commissioner replaced the President of the Board in 1922 who became solely responsible to the Government of India. In 1923 a Financial Commissioner on the Railway Board was appointed. The Chief Commissioner worked as the Secretary to the Govt. of India in the Railway Department, of the two members, one was in-

charge of technical subjects, and the other of traffic and general subjects. The Financial Commissioner was responsible for the financial questions.

In order to enable the members of the Board to devote their full attention to large questions of railway policy directors for Civil Engineering, mechanical Engineering, and traffic and Establishment were appointed, one for each department, who were to be assisted by Deputy Directors and two Assistant Directors In 1929 a third member responsible for solving labour problems and for improvements of working conditions was appointed. In the year 1931-32 some superior posts were retrenched with the effect that the Board included the chief commissioner, the Financial commissioner and one member who were assisted by three directors and six deputy directors and a Secretary. But on account of the rush of the work most of the posts had to be revived, so that at the eve of the Second World War the superior staff of the Board included the chief commissioner, the Financial Commissioner, two members, six directors, seven deputy directors, one assistant director and one secretary. In the year 1938 the Department of communications was established and the Railway Board under it.

The Railway Administration after the year 1951 :

(1) Railway Board

1. The Railway Minister control the Railway Board.

2. The Board includes the three functional members and the Financial Commissioner.

3. One of the functional members is the chairman of the Board, functions as the ex-officio Secretary to the Ministry.

4. The Financial Commissioner functions as Secretary to the Ministry in financial matters.

5. The Secretary of the Transport Ministry is ex-officio additional member.

(2) Standing Finance Committee. It is elected by the Parliament Its function is to consider matters relating to railway finance, to scrutinize the Government proposals of capital and revenue expenditure before they are placed before the legislative assembly. Proposals of the construction of new lines and of the purchase of rolling stock are also examined by this committee.

(3) Central Advisory Council. This council is also elected by the Parliament. It discusses broad questions of railway policies amenities for travelling public, conditions of the service of the staff and makes recommendations thereon. It generally meets after long intervals, its agenda is arranged by the Railway Board.

(4) Local Advisory Committees. These committees are composed of the representatives of the State Governments, state legislatures, commerce and travelling public and one nominee of the Central Advisory Council. The general manager of the railways is the ex-officio chairman. These committees discuss local problems connected with railway transport and make necessary recommendations.

(5) Railway Rates Advisory Committee. The committee was set up in 1925. It included a president one member representing commercial interests and the other representing the railway interests. The functions of the committee are to investigate and report on complaints of undue preference, unreasonableness of rates disputes regarding terminals, conditions as to packing, the extent to which railway companies fulfill their obligations and also the reasonableness or otherwise of any condition or agreement between the railway and other parties. The burden of the proof in all these cases was practically upon the complainent and not on the railway administration. The committee however was not able to meet the demand of the public.

(6) Railway Rates Tribunal. This has been constituted under the Indian railways second amendment act 1948. It is a judicial body, to adjust cases of dispute on railway rates arising between the public and the railways. The present tribunal is composed of a former high court chief justice as president and two advocate members. It takes the help of assesers in adjudicating the case. It has the powers of civil court for the purpose of taking evidence. Its function is "to adjudicate whether the particular rate is fair or eligible to foster free movement of traffic whether the classification of a commodity is correct or whether the charges levied between different points or between different commodities constitute undue preference." The tribunal maintains a register and all complaints are written in it and dealt with in serial order. The decision of the tribunal are made by a majority of the members. They are final and binding on the railway administration. The working of R. R. Tribunal also has not been very satisfactory. For its more successful working it has been suggested that it should get the full powers for regulating freight charges and also be able to influence passenger fares.

Q. 38. Examine the constitution functions and jurisidiction of the railway rates tribunal established by the union Govt. in April 1949. (A.U. 1950, 53)

सन् १९४९ के पहिले व्यापारियों की भाड़ा सम्बन्धी शिकायतें तथा और भी समस्याओं को हल करने के लिए रेलवे रेट्स एडवाइजरी कमेटी थी। परन्तु इसके कार्यों से जनता को संतोष नहीं था। सबसे पहिले इसका कार्य-क्षेत्र सीमित था और साथ-ही-साथ यह एक परामर्शदात्री समिति के समान थी। इसकी सिफारिशों को मानने के लिए सरकार अथवा रेलवे कम्पनियाँ बाध्य न थीं। व्यवहार में भी अनेक अवसरों पर समिति के निर्णय की सरकार ने उपेक्षा की। इसकी कार्य-पद्धति भी दोषपूर्ण थी। व्यापारी लोग शिकायत पहिले सरकार के पास भेजते थे। सरकार यदि उचित समझे तो वह शिकायत समिति के पास भेजी जाती थी और यदि सरकार उसे समिति के पास न भेजे तो शिकायत करने वाले को शिकायत दूर कराने का और रास्ता न था। यदि शिकायत समिति के पास पहुँच भी जाय तो उसका निर्णय सरकार के लिए सर्वदा मान्य नहीं था। निर्णय करने में भी समिति को बहुत समय लग जाता था। समिति का एक सदस्य रेलवे कर्मचारी होता था, जो बहुधा रेलवे का पक्ष ही लिया करता था। शिकायत करने वाले को शिकायत सिद्ध करने के लिए

अनेक प्रमाण व साक्षी उपस्थित करने पड़ते थे जो काम उनके लिए सरल नहीं था। और यदि समिति के निर्णय शिकायत करने वाले को मान्य न हों तो उसके लिए अपील करने का रास्ता न था। इन सब दोषों के कारण जनता इस समिति से विशेष लाभ प्राप्त नहीं कर सकती थी। इसलिए जनता बराबर इस बात की माँग कर रही थी कि कोई निष्पक्ष रेल-भाड़ा-निर्धारक की समिति बनाई जाय जो उसकी शिकायतों को न्यायोचित ढंग से दूर करे। फलस्वरूप सन् १९४८ ई० में सरकार ने रेल-भाड़ा-न्यायाधिकरण (Railway rates tribunal) स्थापित किया, जिसने १ नवम्बर सन् १९४९ ई० से अपना कार्य आरम्भ किया। इसका प्रधान कार्यालय मद्रास में है।

जहाँ तक इसके विधान का सम्बन्ध है tribunal के तीन सदस्य होते हैं, जिनमें से एक सभापति का पद ग्रहण करता है। इसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार एक निश्चित समय के लिए करती है। सभापति के पद पर वही नियुक्त किया जा सकता है जो किसी हाईकोर्ट के जज का पद-ग्रहण कर सके। ट्रिब्नल के ये तीनों सदस्य निष्पक्ष होते हैं जिनका किसी पक्ष से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। ट्रिबुनल अपने निर्णय देने में असेसर्स की सहायता लेता है। केन्द्रीय सरकार के पास असेसर्स की दो सूचियाँ रहती हैं। प्रथम सूची में व्यापार-उद्योग तथा कृषि-हितों के प्रतिनिधियों के ६० नाम होते हैं, और दूसरी सूची में रेल-हितों के प्रतिनिधि ३० व्यक्तियों के नाम होते हैं। ये असेसर्स अपना मत प्रकट कर सकते हैं। यद्यपि उनके मत को स्वीकार करना ट्रिबुनल के लिए अनिवार्य नहीं है।

एक्ट के अनुसार ट्रिबुनल को निम्नांकित अधिकार दिये गये हैं —

(१) उसका पद व अधिकार एक सिविल कोर्ट के समान है।

(२) वह शपथ देकर गवाही ले सकता है और गवाहों को उपस्थिति के लिए बाध्य कर सकता है। वह गुप्त बात खोलने व किसी दस्तावेज के पेश करने को भी बाध्य कर सकता है।

(३) वह किसी वस्तु को ऊँची श्रेणी में भी रख सकता है। परन्तु ऐसा करने के लिए केन्द्रीय सरकार का आग्रह आवश्यक है। वह किसी वस्तु को निम्न श्रेणी में भी रख सकता है।

(४) यह ट्रिबूनल रेलों के विरुद्ध निम्नांकित प्रकार की शिकायतें सुन सकता है—

अ—अनुचित पक्षपात दिखाने वाली शिकायतें।
ब—अनुचित भाड़ा सम्बन्धी शिकायतें।
स—स्टेशन से स्टेशन तक उचित भाड़ा लगाने की स्वीकृति न देना।
द—किसी वस्तु विशेष को अनुचित श्रेणी में रखना। इसके अलावा ट्रिबुनल को अधिकार है कि वह—

(१) स्टेशन से स्टेशन तक का किराया नवीन दर से निश्चित करले।
(२) सरकार के कहने पर किसी वस्तु को उच्च श्रेणी में रख दे।
(३) किसी भी वस्तु के वर्गीकरण को उचित या अनुचित बतलावे और यातायात की सुविधाओं के विकसित होने में मदद करे।

कुछ कार्य ऐसे हैं जिनके बारे में यह कुछ भी नहीं कर सकता।

ट्रिबुनल की कार्य-प्रणाली—कोई भी व्यक्ति रेल-अधिकारी अथवा केन्द्रीय सरकार रेल-भाड़े के सम्बन्ध में कोई भी शिकायत कर सकती है। शिकायतों के सभी

आवेदन-पत्र १००) फीस और ५०) खर्च के साथ ट्रिबुनल के मन्त्री के नाम भेजे जाते हैं। सारी शिकायतें क्रमशः एक रजिस्टर में लिख ली जाती हैं। इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार के पत्र दूसरे रजिस्टर में लिखे जाते हैं। शिकायत की एक प्रतिलिपि दूसरे पक्ष के पास भेजी जाती है और ३० दिन के अन्दर उसका उत्तर माँगा जाता है। अवधि के अन्दर उत्तर न आने में ट्रिबुनल शिकायत करने वाले की बात सुन लेता है। इसी प्रकार यदि प्रतिवादी का उत्तर प्राप्त हो जाय तो उसकी एक प्रतिलिपि वादी के पास भेज दी जाती है और उसका उत्तर १४ दिन के अन्दर आ जाना चाहिए। वादी के इस उत्तर की सूचना प्रतिवादी को तुरन्त दे दी जाती है। इस प्रकार दोनों पक्षों के उत्तर-प्रत्युत्तरों के अनन्तर फैसले की तिथि, समय व स्थान नियत कर दिया जाता है, जबकि दोनों पक्षों की उपस्थिति अनिवार्य है। नीति सम्बन्धी जटिलताओं पर विचार करने के लिए ट्रिबुनल के सारे सदस्य उपस्थित होते हैं। साधारण समस्यायें एक ही सदस्य हल कर देता है। परन्तु प्रत्येक दशा में ४ असेसर्स की उपस्थिति आवश्यक है। इन असेसर्स में से दो रेल-पक्ष तथा दो व्यापार-पक्ष के होते हैं, जिनको सभापति सरकारी अनुसूचियों से चुनता है। असेसर्स का काम केवल परामर्श देना है और उस परामर्श का मानना ट्रिबुनल के लिए अनिवार्य नहीं है। ट्रिबुनल का निर्णय बहुमत से होता है और इस प्रकार के निर्णय रेल द्वारा अनिवार्यतः मान लिये जाते हैं। हाँ, यदि कोई निर्णय एक ही सदस्य द्वारा किया गया हो तो संपूर्ण ट्रिबुनल के पास उसकी अपील की जा सकती है। ट्रिबुनल अपने निर्णय को लागू करने के लिए किसी स्थानीय दीवानी कचहरी का सहारा ले सकता है।

इस प्रकार १९४९ के एक्ट द्वारा इस प्रकार के ट्रिबुनल की स्थापना की गई है, जिससे यथासम्भव जनता की भाड़ा सम्बन्धी अधिकांश शिकायतें कम-से-कम समय में सरलतापूर्वक दूर की जा सकें।

अब तक के अनुभव से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह ट्रिबुनल सर्व-प्रिय संस्था न बन सकी। पहिले साल तो इसके पास कोई नियमानुसार शिकायतें नहीं भेजी गई। इसके बाद, बाद के ३-४ सालों तक किसी भी साल दस शिकायतों से ज्यादा इसके पास नहीं आई। इससे यही सिद्ध होता है कि जनता ट्रिबुनल की कार्य-प्रणाली से संतुष्ट नहीं। सबसे बड़ी कठिनाई शिकायतों का नियमानुसार भेजा जाना है। बहुत-सी पत्र द्वारा आई शिकायतें नियमानुसार न होने के कारण रद्दी की टोकरी में फेंक दी जाती हैं। व्यापारी-वर्ग इस संस्था का उपयोग तभी कर सकते हैं जबकि न्याय सस्ता और शीघ्र हो। आवेदन-पत्र के समय १५०) जमा करने की प्रथा न्याय को तेज ही बनाती है। यह सस्ता न्याय नहीं कहा जा सकता। निर्णय करने में भी ट्रिबुनल को प्रायः एक वर्ष से अधिक लग जाता है। यह समय का दुरुपयोग करना ही है। किसी भी शिकायत के सुनने और उसके निर्णय में कुछ महीनों का ही समय लगना चाहिए। इसके साथ-साथ इस ट्रिबुनल में विभिन्न हितों के प्रतिनिधि नहीं है, इसलिए जिन हितों का प्रतिनिधित्व नहीं है वे इसके पास शिकायतें भेजने में हिचकते हैं। इसके अधिकार सीमित हैं। इसे भाड़े के उचित व अनुचित स्तर के सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकार नहीं हैं। इसी प्रकार सवारियों के किराये उनके सामान के भाड़े तथा पार्सल सैनिक-यातायात व रेल-यातायात के भाड़े लगाने का अधिकार इस ट्रिबुनल को नहीं है। यह ट्रिबुनल अधिक लोकप्रिय तभी हो सकता है जब इसकी ये सारी बुराइयाँ दूर की जायें और इसे रेलों के अतिरिक्त यातायात के और भी साधनों के भाड़ों की देख-रेख सम्बन्धी अधिकार दिये जायें।

Q. 39. Examine the desirability of transfering to a statutory railway authority, the control and managememt of the union railwsys to provide for a better system of transport.

(A.U. 1943, 46, 51.)

संस्था वही अच्छी है जो अपने उद्देश्य को सुगमता से प्राप्त कर सके। रेलवे का उद्देश्य जनता को सुगम, शीघ्र, सस्ती यातायात की सुविधाएँ पहुँचाना है। यह उद्देश्य जिस प्रकार के प्रबन्ध अथवा जिस प्रकार की संस्था से पूर्ण हो सके उसी संस्था को रेलों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व होना चाहिए। भारतीय रेलवे इन्क्वायरी कमेटी (१९४९) ने भारतीय रेलों के प्रबन्ध के लिए एक central controlling Authority की स्थापना की सिफारिश की है। इस सिफारिश के करने में कमेटी का उद्देश्य यही रहा है कि भारतीय रेलों का केन्द्रीय नियन्त्रण इस प्रकार हो जिससे देश की रेलें यात्रियों तथा सामान को स्थानान्तर करने में अधिक-से-अधिक कार्य-कुशल सिद्ध हो सकें। इसमें कोई संदेह नहीं कि रेलवे व्यापारिक प्रणाली पर चलाई जाती हैं अर्थात् रेलों के संचालन से कुछ न कुछ लाभ होना आवश्यक है। और इस प्रकार से लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि जो केन्द्रीय संस्था रेलों के नियन्त्रण के लिए स्थापित की जाय वह रेलवे सम्बन्धी दीर्घकालीन योजनाओं के बनाने में, उनको कार्यान्वित करने में, रेलों की उन्नति करने में और रेल-सम्बन्धी समस्याओं को शीघ्र ही हल करने में समर्थ हो। वर्तमान समय में जो केन्द्रीय संस्था (Railway Board) रेलों पर नियन्त्रण करती है उससे इन सारी बातों का होना असम्भव है। Railway Board भारतीय रेलों की सर्वोच्च कार्यकारिणी समिति ही नहीं है वरन् भारतीय सरकार के मंत्रालय का भी एक भाग है। इसलिए रेलवे बोर्ड रेल-सम्बन्धी नीति-निर्धारण में स्वतन्त्र नहीं है, और भी मंत्रियों से सलाह लेनी पड़ती है इसके बाद भी किसी विशेष निर्णय पर पहुँचा जा सकता है। इस कारण से कभी-कभी रेलवे सम्बन्धी प्रश्नों पर निर्णय करने में बहुत विलम्ब हो जाता है और इसी नीति का दीर्घकाल तक समान रीति से पालन करना भी कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त जनतन्त्र-शासन का ठीक अर्थ अभी तक न समझने के कारण तथा जनतन्त्रीय शासन-प्रणाली का उपयुक्त अनुभव न होने के कारण केन्द्रीय मन्त्रालय रेलों के दैनिक कार्यों में भी हस्तक्षेप करने लगता है। और जब तक केन्द्रीय नियन्त्रण करने वाली संस्था का निर्माण भली प्रकार नहीं होगा तब तक उपर्युक्त त्रुटियाँ दूर नहीं की जा सकतीं। इन त्रुटियों को दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि, भारतीय रेलों का प्रबन्ध एक statutory corporation के हाथ में सौंप दिया जाय और अधिकांश जनतन्त्रवादी देशों में ऐसा ही प्रबन्ध किया गया है, परन्तु इसके लिए अधिक शीघ्रता की आवश्यकता नहीं, क्योंकि युद्धोत्तर काल में विभाजन के फलस्वरूप रेलों में कुछ जटिल समस्यायें उठ खड़ी हुई है, और जब तक इन समस्याओं का अच्छी प्रकार से हल न निकल आवे और रेलों की स्थिति सुदृढ़ न बना दी जाये तब तक किसी प्रकार का परिवर्तन करना रेलों के हित में नहीं होगा। जो भी संस्था स्थापित की जाय वह एक प्रकार का ट्रस्ट हो, जो भारतीय रेलों की सारी संपत्ति का स्वामी बना रहेगा और वही संस्था रेलों के संचालन-प्रबन्ध तथा शासन के लिए उत्तरदायी होगी। इस संस्था को रेलों की उन्नति करते समय कृषि, उद्योग तथा व्यापार और साधारण जनता के हितों का ध्यान रखना पड़ेगा। इसके सदस्य अधिक नहीं होने चाहिए क्योंकि जिस संस्था में सदस्य अधिक होते है उस संस्था द्वारा किसी महत्वपूर्ण बात पर निर्णय देर में होता है। इस संस्था के जितने सदस्य

हों वे अनुभवी तथा देश की औद्योगिक आर्थिक, व यातायात सम्बन्धी समस्याओं से पूर्ण रूप से अभिज्ञ हों ।

Q. 40. Explain and criticize the constitution and functions of the Railway Rates Advisory committee in India. (A.U.1944,52)

यद्यपि अक्वर्थ कमेटी ने भारतीय रेलों के किराये-भाड़े-निर्धारण करने के लिए विशेष कर रेल-अधिकारी तथा जनता के मध्य भाड़े सम्बन्धी समस्याओं के हल करने के लिए एक Rates tribunal स्थापित करने का सुझाव दिया था । परन्तु सरकार ने १९२६ ई० में एक Rates Advisory committee स्थापित करने का निश्चय किया । इसका एक सभापति और अन्य सदस्य, सदस्य हुआ करते थे । इस कमेटी का सभापति एक योग्य अधिकारी सम्पूर्ण समय के लिए वैतनिक होता था । इस कमेटी को निम्नांकित समस्याओं पर निर्णय करने का अधिकार दिया गया था ।

(१) विशेष रियायत सम्बन्धी शिकायतें ।
(२) अनुचित भाड़ा दर सम्बन्धी शिकायतें ।
(३) किसी वस्तु के उचित और अनुचित पैकिंग करने का ढंग ।
(४) किसी रेलवे कम्पनी द्वारा पूर्ण उत्तरदायित्व-पालन न करने की शिकायतें ।
(५) Terminals के बारे में शिकायतें—

Rates Advisory कमेटी के पास इस प्रकार का फैसला कराने के लिए यह प्रणाली निर्धारित की गई कि कोई भी अर्जी १००) जमा करने पर रेलवे एजेण्ट के यहाँ कमेटी में पेश करने के लिए भेजी जा सकती है । एजेन्ट को ३ माह के अन्दर उस अर्जी का पूरा विवरण देते हुए रेलवे बोर्ड के पास भेज देना चाहिए । इस प्रणाली में १९२७ ई० में परिवर्तन कर दिया गया था, जिसके अनुसार कोई भी अर्जी १०) फीस के साथ रेलवे विभाग को भेजी जा सकती थी । रेलवे विभाग इसे एजेण्ट के पास भेज देता था ? जो अपनी राय को लिख कर उस अर्जी को फिर उसी विभाग में भेज देता था । तत्पश्चात् रेलवे विभाग यह तय करता था कि अर्जी कमेटी के पास भेजी जाय या न भेजी जाय । यदि निश्चय यह किया गया कि कमेटी के पास न जानी चाहिए तो उसकी सूचना अर्जी देने वाले को देदी जाती थी । और यदि अर्जी के भेजने के लिए निश्चय हुआ तो रेलवे विभाग अर्जी देने वाले के प्रश्नों का उत्तर उसे भेज देता था और उसका प्रत्युत्तर अर्जी देने वाले को हफ्ते में भेजना पड़ता था और उस पर कमेटी विचार करती थी ।

इस प्रकार Rates Advisory कमेटी की कार्य-प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह था कि इसका स्वयं का अस्तित्व न के बराबर था । शिकायतें पहिले रेलवे विभाग के पास भेजी जाती थीं और यदि यह विभाग उचित समझे तो वह शिकायत कमेटी के पास भेज दी जाती थी । अप्रत्यक्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि जिसकी शिकायत की जाय उसे यह अधिकार दिया गया कि वह अपनी शिकायत की सुनवाई किसी विशेष अधिकारी के यहाँ होने दे या न होने दे । यदि रेलवे विभाग या सरकार यह निश्चय कर ले कि किसी शिकायत की सुनवाई की आवश्यकता नहीं है तो फिर शिकायत करने वाले के लिए अन्य मार्ग नहीं था । यद्यपि यह प्रणाली इसलिए अपनाई गई थी कि जिससे कमेटी के पास व्यर्थ में बहुत-सी शिकायतें न जाया करें, परन्तु ऐसा करने से अर्जी देने वाले अथवा शिकायत करने वाले के साथ ठीक से न्याय नहीं होता था । उसे कम-से-कम इतना अधिकार तो देना ही था कि वह रेलवे विभाग द्वारा अपनी अर्जी के खारिज किए जाने के विरुद्ध कमेटी से अपील कर सके ।

इसके साथ-साथ अर्जियों की सुनवाई में भी काफी समय लग जाता था। कमेटी के मेम्बरों में भी जनता का विश्वास नहीं था। हरेक शिकायत को साबित करने का पूरा भार अर्जीदाता पर ही रहता था और अर्जीदाताओं को अपनी शिकायत सिद्ध करने के लिए ऐसी बहुत सी सूचनाएँ देनी पड़ती थीं जो रेलवे विभाग द्वारा ही प्राप्त हो सकती थीं और रेलवे विभाग इन सूचनाओं को प्रायः नहीं देता था। यदि देता भी था तो बड़ी कठिनाई से व बड़े समय बाद। इसके फलस्वरूप अर्जीदाता कभी-कभी निराश होकर अपने आप बैठ रहता था। इन सब दोषों के होते हुए भी कमेटी का निर्णय अनिवार्य नहीं होता था। यदि रेलवे विभाग उचित समझे तो उस के निर्णय को अस्वीकृत कर सकती थी। इस बात से व्यापारियों को बहुत असंतोष था। वास्तव में देखा जाय तो कमेटी व्यापारियों के केवल आँसू पोंछने को बनाई गई थी। न तो कमेटी के पास कोई सीधी शिकायत भेजी जा सकती थी, उसका भेजा या न भेजा जाना रेलवे विभाग के अधिकार में था और न कमेटी का निर्णय ही पूर्ण रूप से मान्य था। इसका माना व न माना जाना रेलवे विभाग के हाथ था। इस प्रकार यह Railway Advisory कमेटी किसी प्रकार से जनता व व्यापारियों के हित का कार्य करने में असमर्थ रहती थी। यह तो एक प्रकार की केवल संस्था थी। न तो जनता ही इसे महत्व देती थी और न रेलवे बोर्ड की दृष्टि में ही यह कोई महत्वपूर्ण संस्था थी। इस प्रकार जनता तथा व्यापारियों की यह मांग और भी जोर पकड़ती गई कि इस Rates Advisory कमेटी के स्थान पर कोई ऐसी स्वतंत्र संस्था स्थापित हो जो व्यापारियों के साथ न्याय कर सके। रेलों के सरकार द्वारा संचालित किये जाने पर इस प्रकार की स्वतंत्र संस्था की और भी आवश्यकता बढ़ी क्योंकि पहले तो रेलें व सरकार दो अलग-अलग संस्थाएँ थीं और अब रेलें व सरकार दोनों मिल कर एक हो गए। रेलों की शिकायत सरकार की शिकायत मानी जाने लगी। इस दशा में रेट Advisory कमेटी को न्याय करना और भी मुश्किल हो गया। राज्य द्वारा संचालित होने पर रेलों के भाड़े और भी बढ़ाए जा सकते हैं क्योंकि सरकार यह समझती है कि Retes Advisory कमेटी उसके विरुद्ध नहीं जा सकती। इन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए कमेटी के समाप्त करने का आन्दोलन प्रबल होता गया, फलस्वरूप ४ अप्रैल १९४९ को Railway Rates Tribunal की स्थापना कर दी गई।

Q. 41. Write a note on the management of Indian Railways.

भारतीय रेलों का प्रबन्ध

प्रारंभिक काल में भारतीय रेलों का प्रबन्ध इग्लैण्ड में स्थित बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स द्वारा हुआ करता था। बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स में १ सरकारी डाइरेक्टर भी रहा करता था, जिसको बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के निर्णय को अस्वीकृत करने का अधिकार था। रेलों के प्रबन्ध की देखरेख के लिए भारत सरकार की ओर से देश में ही एक परामर्श-दाता इंजीनियर काम करता था। इसके बाद हर प्रान्त में एक परामर्श-दाता इंजीनियरों के कार्य की देखभाल केन्द्रीय सरकार के मुख्य परामर्श-दाता इंजीनियर द्वारा होने लगी और इसके बाद प्रत्येक रेल के लिए १-१ परामर्श-दाता इंजीनियर नियुक्त किया गया। सन् १८७४ ई० में एक state Railway directorate की स्थापना की गई, और director general of state railways की नियुक्ति की गई। १८८७ ई० में रेलों को ३ क्षेत्रों में बाँट दिया गया और प्रत्येक क्षेत्र के लिए एक संचालक नियुक्त किया, और भी अनेक पदाधिकारी नियुक्त किये गए। इन सब का आशय यही था कि प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण हो और सफलतापूर्वक नियंत्रण हो सके।

(१) रेलवे बोर्ड—सन् १६०१ ई० में टामस राबर्टसन ने एक रेलवे बोर्ड के स्थापित करने की सलाह दी। इस में १ सभापति, १ चीफ कमिश्नर व शेष दो सदस्य सम्मिलित किए गए। इस सुझाव के अनुसार १६०५ ई० में रेलवे बोर्ड की स्थापना हुई और इस बोर्ड को सरकारी निरीक्षण, नियंत्रण के सारे अधिकार दे दिए गए। यह बोर्ड वाणिज्य एवं उद्योग विभाग के अधीन कर दिया गया। १६०७ की मैके समिति के सुझावों के आधार पर Board के Chairman के पद का President कर दिया गया और उस का पद सरकारी विभाग के सेक्रेटरी के समान हो गया, जिसे वाइसराय से सीधा संबन्ध स्थापित करने का अधिकार मिल गया। प्रेसीडेन्ट के अधिकार भी बढ़ा दिए गए और अब यह Board कामर्स मेम्बर के अधीन कर दिया गया। विशेष विषयों में परामर्श देने के लिए एक मुख्य इंजीनियर १६०६ में नियुक्त कर दिया गया। रेलवे बोर्ड के विधान में प्रथम विश्व युद्ध काल में कुछ परिवर्तन किए गए; परन्तु महत्वपूर्ण परिवर्तन अकवर्थ समिति की रिपोर्ट के आधार पर हुए। ये सुझाव निम्नलिखित हैं—

(१) एक नए संवाद-वाहन विभाग की स्थापना की जानी चाहिए। इसके अन्तर्गत रेल, आंतरिक जल-यातायात, सड़क-यातायात तथा तार-विभाग कर दिए गए और यह विभाग संवादवाहन मंत्री के अधीन होना चाहिए।

२—रेलवे बोर्ड का नाम बदल कर रेलवे कमीशन रक्खा जाना चाहिए, जिसके ५ सदस्य होने चाहिए। एक चीफ़ कमिश्नर, दूसरा फाइनेंशियल कमिश्नर तथा तीन कमिश्नर पूर्वी पश्चिमी व दक्षिणी क्षेत्रों की रेलों के एजेन्ट के रूप में। संवादवाहन मंत्री इस कमीशन का सभापति हो।

(३) रेलवे बोर्ड अपने निजी शासन के संबन्ध में स्वतंत्र रहे।

(४) रेल आयोग की सहायतार्थ विशेष योग्यता वाले कर्मचारियों का एक बोर्ड हो, जिसके लिए ५ डाइरेक्टर व १ जनरल सेक्रेटरी की नियुक्ति की जानी चाहिए। अकवर्थ कमेटी की रिपोर्ट को सरकार ने अधिकांशत: स्वीकार कर लिया।

रेलवे बोर्ड के विधान में ये महत्वपूर्ण परिवर्तन इसलिए किए गए थे कि बोर्ड के सदस्यों को महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल करने तथा सरकारी कर्मचारियों और सार्वजनिक संस्थाओं से अच्छा संबन्ध स्थापित किया जा सके। इसलिए अब बोर्ड में ५ संचालकों, ११ उपसंचालकों व २ सहायक संचालकों की नियुक्ति की गई। १६२६ में श्रम सम्बन्धी समस्याओं के हल हेतु १ सदस्य की नियुक्ति की गई। रेलवे बोर्ड अब भी वाणिज्य-समिति के अधीन रहा। १६३८ में डिपार्टमेण्ट कम्यूनिकेशन का निर्माण हुआ और रेलवे बोर्ड उसके अधीन कर दिया गया। युद्ध-काल में अधिक काम होने के कारण सदस्यों तथा कर्मचारियों की संख्या बहुत बढ़ गई और युद्धोत्तर काल में फिर ठीक कर दी गई।

इस समय रेलवे बोर्ड का संगठन निम्न प्रकार से है।

(१) सभापति व इंजीनियरिंग का सदस्य।
(२) चीफ कमिश्नर।
(३) कर्मचारियों का सदस्य।
(४) यातायात का सदस्य। यातायात मंत्रणालय का सचिव रेलवे बोर्ड का Ex-officio सदस्य बनाया गया।

बोर्ड का सभापति रेल मंत्रालय के सचिव का भी स्थान ग्रहण करता है।

सदस्यों के अतिरिक्त ८ डाइरेक्टर, १३ डिप्टी डाइरेक्टर, ७ ज्वाइन्ट डाइरेक्टर, ६ असिस्टेण्ट डाइरेक्टर, १ इकनोमिक एडवाइजर, १ सेक्रेटरी, १ असिस्टेण्ट सेक्रेटरी, १ हिन्दी आफ़ीसर, १ स्पेशल असिस्टेण्ट तथा १७ सुपरिटेंडेंट नियुक्त किए गए।

विषय के आधार पर उक्त अधिकारियों के कार्य ४ विभागों में बांटे गए। 1. इंजीनियरिंग विभाग 2. Establishment 3. Finance 4. Traffic व General Transportation। रेलवे बोर्ड के सदस्य सम्मिलित उत्तरदायित्व पर कार्य करते हैं। सामान्य नीति विषयक प्रश्नों पर मंत्री को परामर्श देते हैं। रेलों के प्रबन्ध के सम्बध में विभिन्न आज्ञाएँ, रेलवे बोर्ड ही प्रचलित करता है। इस प्रकार प्रशासनात्मक कार्य रेलवे बोर्ड को दिए जाते हैं।

नए विधान के अनुसार रेलों का उत्तरदायित्व एक मंत्री, १९५१ ई० से चीफ़ कमिश्नर के पास रहने वाले बहुत से विभागों का कार्य मुख्य मंत्री ही करता है। बोर्ड की बैठकों के सभापतित्व आदि का कार्य अब रेल-मंत्री ही करता है। Financial commissioner के काम वैसे ही बने रहे।

(2) Central Standard Office. यह कार्यालय रेलवे बोर्ड की अधीनता में रहता है। इस कार्यालय के अधिकारी controllers कहलाते हैं। इनका काम अन्वेषण करना होता है। पुल की पटरियों, सिगनलों, भवनों आदि के architectural design तथा Standardisation का कार्य इसी कार्यालय को करना पड़ता है। technical विषयों पर भी यह कार्यालय अपनी राय देता है। कर्मचारियों को प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान करता है।

सन् १९५२ ई० से अन्वेषण का कार्य इस कार्यालय से अलग कर दिया गया है और यह कार्य अब लखनऊ की केन्द्रशाला लोनावला तथा चितरंजन में स्थित दो उप-केन्द्रों की सहायता से करती है।

(3) Standing Finance Committee १९२४ में रेलवे बजट के पृथक्करण के साथ ही साथ इस समिति का निर्माण किया गया। इस समिति का कार्य वित्त सम्बन्धी प्रश्नों पर विशेषकर वार्षिक आय-व्यय पर विचार करना है। बजट का निरीक्षण पहिले यही कमेटी करती है, नवीन योजनाओं, प्रस्तावों पर विचार करना तथा इन्जिनों आदि को मोल लेना भी इस कमेटी का कार्य है। इस कमेटी की नियुक्ति संसद करती है।

(4) Central Advisory Council. इस काउन्सिल के सदस्यों का निर्वाचन संसद द्वारा किया जाता था। रेल-नीति विषयक समस्याओं पर संसद में जाने से पूर्व इसी समिति द्वारा विचार किया जाता था, इसका कार्य जनता तथा रेलवे के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने का था। अब इस काउन्सिल के स्थान पर National Railway User's Consultative Council कार्य करती है। यह रेल-सेवा व सुविधाओं सम्बन्धी अखिल भारतीय प्रश्नों पर विचार करती है तथा रेल-सेवा प्रयोग करने वाली जनता की कठिनाइयों पर विचार करके उनको दूर करने का प्रयत्न करती है।

(5) Local Advisory Committees. जनता तथा रेल-अधिकारियों के बीच सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रत्येक रेल के विभिन्न क्षेत्रों में ये समितियां स्थापित की गई थीं। इसके सदस्य राज्य व व्यवसायों के प्रतिनिधि, तथा व्यापार व उद्योग और जनता के प्रतिनिधि हुआ करते थे। रेलवे का general manager

इसका सभापति हुआ करता था Central Advisory Council एक सदस्य मनोनीत करती थी। इसका कार्य यात्री-सुविधा, रेल-सेवा, गाड़ियों के टाइम टेबिल आदि विषयों पर रेल अधिकारियों को सलाह देना हुआ करता था। अब इनके स्थान पर Regional Railway User's Consultative Committees और Zonal Railway User's Consultative Committees बन गई हैं। प्रत्येक रेल के प्रधान कार्यालय में एक Zonal Railway Consultative Committee होती है, जिसका सभापति general manager होता है। प्रत्येक रोज के विभिन्न क्षेत्रों में Regional Railway User's Consultative Committee होती है और इसका सभापति Divisional Suprintendent होता है।

(6) Railway Rates Tribunal. अकवर्थ कमेटी की सिफारिश के आधार पर एक भाड़ा-मंत्रणा समिति स्थापित की गई थी, पर इसका कार्य ठीक न होने के कारण सन् १९४८ ई० में Railway Rates Tribunal की स्थापना की गई जिसने नवम्बर १९४९ से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह भाड़े सम्बन्धी जनता की शिकायतों को सुनती है और उन पर अपना निर्णय देती है। रेल अधिकारी इसके निर्णय को मानने के लिए बाध्य होते हैं।

साधारण तौर पर रेलों के आन्तरिक प्रबन्ध तथा प्रशासन के लिए दो प्रणालियां प्रयोग में लाई जातीं हैं—पहिली प्रादेशिक (divisional) प्रणाली दूसरी विभागीय (Departmental) प्रणाली।

प्रादेशिक प्रणाली के अन्तर्गत—रेलमार्ग का सम्पूर्ण क्षेत्र सुविधाजनक प्रदेशों में विभाजित कर दिया जाता है और उस प्रदेश के रेल-सम्बन्धी सारे कार्यों को एक उच्च अधिकारी के ऊपर छोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिए इंजीनियरिंग, संचालन, हिसाब-किताब आदि का सम्पूर्ण कार्य प्रादेशिक अधिकारी Divisional Suprintendent के अधिकार में कर दिया जाता है, इसी को प्रादेशिक प्रबन्धकर्त्ता divisional manager भी कहते हैं। इस अधिकारी के ऊपर अपने प्रदेश के अन्तर्गत रेल सम्बन्धी सभी विभागों का उत्तरदायित्व होता है। इस प्रणाली (प्रादेशिक divisional) के अनुसार रेल-प्रबन्ध तथा प्रशासन का विकेन्द्रीकरण हो जाता है। इस प्रणाली के निम्नांकित दो गुण हैं :—

१. divisional Suprintendent अपने क्षेत्र का पूर्णरुपेण उत्तरदायी होता है, अपनी सीमा के सारे विभागों का पूर्ण उत्तरदायित्व उसी एक उच्च अधिकारी के ऊपर होता है, अतः किसी समस्या के हल करने में उसे अन्य अधिकारियों से सलाह लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती, न विभिन्न विभाग के विभिन्न अधिकारियों की मीटिंग बुलानी पड़ती है, क्योंकि उसे समस्या के सारे पहलुओं का ज्ञान होता है। अतः किसी भी समस्या के ऊपर वह अपना निर्णय शीघ्र दे सकता है, इससे कार्य में विलम्ब होने की आशंका नहीं रहती।

२. सब विभागों का कार्य एक ही कार्यालय में होने के कारण विचार-विमर्श में अधिक पत्र-व्यवहार की आवश्यकता नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए मान लीजिये एक लाइन को बढ़ाना है तो रेलवे लाइन के निर्माण करने के बारे में इंजीनियरिंग विभाग से सलाह लेनी पड़ेगी। इसकी आवश्यकता तथा उपयोगिता के बारे में वाणिज्य-विभाग से पत्र-व्यवहार करना पड़ेगा, और संचालन आदि के बारे में संचालन-विभाग से बातचीत करनी पड़ेगी। यदि ये सारे विभाग विभागीय प्रणाली के अनुसार अलग-अलग अफसरों के अधिकार में हैं तो इस समस्या पर इन विभागों के मध्य पत्र-व्यवहार

करना पड़ेगा और इसमें काफी देर हो जायगी। प्रादेशिक पद्धति के अन्तर्गत सारे विभाग एक ही आफिसर के अधिकार में होते है, अतः न तो अधिक पत्र-व्यवहार की आवश्यकता और न अधिक विलम्ब ही होने की सम्भावना होती है।

(३) प्रत्येक विभाग एक दूसरे से पूर्ण पृथक न होने के कारण अथवा प्रत्येक विभाग के उच्च अधिकार पृथक-पृथक न होने के कारण विभागीय मतभेदों की अधिक सम्भावना नहीं रहती। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक विभाग का एक अउच्च अधिकारी तो होता है, पर वे सब मिलकर Divisional Suprintendent or manager के प्रति उत्तरदायी होते हैं, उसकी अधीनता में कार्य करते है, अतः वे सब मिलकर संयुक्त उत्तरदायित्व के साथ काम करते है।

(४) विभिन्न विभागों का एक कार्यालय में केन्द्रीकरण होने के कारण प्रत्येक अधिकारी के उत्तरदायित्व का पता शीघ्र ही लग जाता है। कोई अधिकारी दूसरे विभाग के अधिकारी पर किसी समस्या का उत्तरदायित्व नहीं टाल सकता।

(५) विभिन्न विभागों के एक ही स्थान पर संगठित होने के कारण प्रत्येक कर्मचारी को रेल सम्बन्धी प्रत्येक कार्य सीखने का अवसर मिल जाता है।

(६) प्रादेशिक पद्धति में क्षेत्र सीमित होने के कारण रेल-अधिकारी को जनता से निकट सम्पर्क स्थापित करने का अधिक अवसर प्राप्त होता है, जिससे जनता की शिकायतें भी शीघ्र ही दूर हो सकती हैं, और अधिकारी भी जनता की सेवा भली प्रकार कर सकते हैं।

(७) प्रत्येक प्रदेश की परिस्थितियाँ भिन्न होती है। भारत ऐसे विस्तृत देश के लिए यह बात और भी अधिक सत्य है। अतः रेल का प्रबन्ध यदि प्रादेशिक पद्धति के अनुसार होगा, तो उस विशेष प्रदेश की आवश्यकताओं के अनुसार रेल-यातायात में उन्नति अथवा सुधार किये जाते हैं। विशेषकर यदि देश की आर्थिक प्रगति क्षेत्रीय नियोजन के आधार पर करनी है तो इसके लिए प्रादेशिक पद्धति द्वारा ही रेलो का बन्ध हितकर होगा।

प्रादेशिक पद्धति के दोष :—

(१) इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस में श्रम-विभाजन की पद्धति नहीं अपनाई जा सकती। विशेषीकरण के लिए इसमें कम अवसर रहता है; एक उच्च अधिकारी को प्रत्येक विभाग के बारे में कुछ न कुछ ज्ञान रखना पड़ता है, इसलिए उसे किसी एक विभाग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता। बहुत से कर्मचारियों की भी यही दशा होती है, अतः कर्मचारियों का कार्य-कौशल उस कोटि का नहीं होता जितना विभागीय पद्धति के अन्तर्गत कार्य करने वाले कर्मचारियों का होता है।

(२) इस प्रणाली के अन्तर्गत एक क्षेत्र में विभिन्न विभागों के अनेक अधिकारी, तथा कर्मचारी होते हैं, इसलिए न तो अधिकारियों में आपस में निकट सम्पर्क हो पाता है और न अधिकारियों तथा कमचारियों में। इस सम्पक की कमी के कारण बहुत-सी समस्याओं के हल करने में काफी देरी हो जाती है।

(३) यदि प्रदेशों का क्षेत्र छोटा है तो प्रादेशिक पद्धति खर्चीली साबित हो सकती है।

विभागीय (departmental) **प्रणाली**—के अन्तर्गत कार्य-विभाजन विषयों के आधार पर किया जाता है। इसके अनुसार रेल क्षेत्रों में नहीं बाँटी जाती वरन सारी

रेल विभिन्न विभागों में विभाजित करदी जाती है। इस में प्रत्येक विभाग का एक उच्च अधिकारी होता है, जो सारी रेल के अपने विभाग की सम्पूर्ण समस्याओं का उत्तरदायी समझा जाता है। उदाहरण के लिए इंजीनियरिंग विभाग का सर्वोच्च अधिकारी मुख्य इंजीनियर Chief Engineer होता है और सारी रेल के इंजीनियरिंग सम्बन्धी सम्पूर्ण-समस्याओं तथा कार्यों का उत्तरदायित्व इसी के ऊपर होता है, इसी प्रकार और भी विभागों के अलग-अलग उच्च अधिकारी होते हैं। विभागीय सर्वोच्च अधिकारी के नीचे प्रत्येक क्षेत्र में उप-अधिकारी होते हैं, जो उसके सहायक की भाँति काम करते हैं। इस पद्धति के अनुसार रेलवे के प्रबन्ध का केन्द्रीकरण हो जाता है।

इस पद्धति के निम्नांकित गुण हैं :—

(१) प्रत्येक विभाग का कार्य पृथक होता है और विभागीय प्रबन्ध का केन्द्रीकरण होता है, अतः प्रत्येक अधिकारी अपने विभाग के बारे में अत्यन्त कुशल बन जाता है और अपने विषय का विशेषज्ञ हो जाता है। अतः वह अपने कार्य को अधिक योग्यता तथा कुशलता के साथ कर सकता है।

(२) प्रधान कार्यालय में कार्य करने वाले अधिकारी सारी रेल के विभागीय विषयों को भली भाँति अध्ययन करके सम्पूर्ण विभाग के हित को ध्यान में रखते हुए इस प्रकार समस्याओं का हल निकाल सकते हैं कि जिससे थोड़े व्यय में अधिक काम बन जाय।

(३) विभागीय प्रणाली के अन्तर्गत उपक्षेत्रीय अधिकारियों का एक दूसरे से घनिष्ट सम्पर्क हो जाता है, जिससे जटिल समस्यायें भी सरलता से हल हो जातीं हैं।

(४) प्रत्येक कर्मचारी का कार्य-क्षेत्र सीमित होता है, अतः वह अपने कार्य में शीघ्र ही कुशल हो जाता है, अपनी कार्य-कुशलता दिखलाकर स्वयं अपनी भी उन्नति कर लेता है और साथ-ही-साथ अपने विभागीय कार्य एवं रेल-सेवा में भी उन्नति करने में सफल होता है।

(५) इस प्रणाली के द्वारा केन्द्रीकरण होने के कारण कर्मचारियों में अनुशासन अच्छा रहता है, जिसके फलस्वरूप कार्य में शिथिलता नहीं आती।

(६) प्रत्येक विभाग की नीति व व्यवहार में एकीकरण हो जाता है। सारी रेल पर प्रत्येक विभाग में अपने एक ही मापदंड के अनुसार कार्य होता है, अतः एक ही विभाग में नीति सम्बन्धी विभिन्नता के लिए कोई अवसर नहीं रहता।

(७) विभागीय पद्धति के आधार पर प्रत्येक विभाग का कार्य अधिक बढ़ जाता है, अतः यथा सम्भव महामात्रोत्पादन के लाभ रेलों को इसी पद्धति के द्वारा अधिक प्राप्त हो सकते हैं।

विभागीय पद्धति के दोष:—

(१) क्षेत्र विस्तृत होने के कारण किसी निर्णय तक पहुँचने मे काफी देर लग जाती है। किसी कार्य का निर्णय करने के लिए नीचे के अधिकारी से सर्वोच्च अधिकारी तक पत्र-व्यवहार करने में काफी देर लग जाती है तभी निर्णय हो पाता है।

(२) प्रत्येक विभाग के कर्मचारी विभिन्न समस्याओं को अपनी विभागीय दृष्टि से ही देखते हैं और उसी दृष्टि से उसका हल निकालते हैं। कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि इस प्रकार का हल दूसरे विभागों के अनुसार अहितकर हो, तो दोनों विभागों में काफी

पत्र व्यवहार होता है, कभी कार्य विरोध भी हो जाता है और उच्च अधिकारियों को किसी निर्णय तक पहुँचने में काफी देर लग जाती है।

(३) विभिन्न विभागीय कार्यों में कोई एकीकरण नहीं होता अतः कर्मचारियों में सम्मिलित उत्तरदायित्व का अभाव होता है।

(४) विशेष केन्द्रीकरण होने के कारण स्थानीय अधिकारियों को पूर्ण अधिकार नहीं होते, वे स्थानीय परिस्थितियों के आधार पर भी कोई निर्णय अपने आप नहीं कर सकते, वे केवल अपनी राय उच्च अधिकारियों को दे सकते हैं। अन्तिम निर्णय उच्च अधिकारियों के हाथ ही में होता है। इससे स्थानीय समस्याओं के हल होने में भी देर हो जाती है, स्थानीय जनता में असंतोष बढ़ जाता है और वे जनता का विश्वास खो बैठते हैं। वास्तव में यह प्रणाली छोटी रेल इकाइयों के लिए अधिक उपयुक्त है।

Finance.

From 1858 to 1898 railways in India ran in a loss and it had to be made good by the tax-payers. In 1898 railways showed a surplus. For the first 12 years the gain was small, but thereafter it increased specially during the First World War. Till 1924 the finances of the railways were a part of the general Finance. Railway income was credited to the central Exchequer; allotments were made for the railways from the general budget in the same manner as for the other departments of the Government of India. The Acworth Committee urged the separation of railway finance from general finance as it would remove the element of uncertainty in the annual budget estimates and would not prevent railways from being run on commercial lines. The separation of the two budgets was calculated not only to enable the railways to be conducted as a business undertaking but also to free the Government from many difficulties and uncertainties of the old system The scheme for separating railway finance from general finances on the condition of ensuring to the latter a definite ascertainable annual contribution from railways, which was first charge on their net receipts was accepted by the legislature. This contribution was settled upon the basis of one per cent on the capital at charge of commercial lines excluding capital contributed by companies and Indian states at the end of the penultimate financial year, plus one-fifth of the surplus profits in that year, interest on capital at charge of strategic lines and loss in working being deducted. The Legislative Assembly stipulated that if after payment of the contribution so fixed, the amount available for transfer to the Railway Reserve should exceed Rs. 3 crores, one-third of the excess should be paid to the general revenue. The Railway Reserve was to be used to secure the payment of the annual contribution, to provide, if necessary, for arrears of depreciation and for writing down capital and generally to strengthen the financial position of the railways. The first separate railway budget under this scheme was presented to the assembly in March 1925.

After the year 1924 till the year 1930 there was a surplus revenue earned by the railways during this period, but in the next

six years there was a deficit, and owing to the successive deficits the railways failed to make any contribution to general revenue after 1931-32. By the end of the year 1939-40 the deficit was 36¼ crores of Rupees. During the same period the railways had to borrow from the depreciation Fund a large sum of money to meet their obligations regarding interest charges. It was after the year 1936-37 that the state railways began to show a surplus of net receipts over the interest charges and appropriations to the Depreciation Fund. After the declaration of the War, however, there was a marked change especially in the goods traffic earnings and later in passenger earnings with an initial improvement in the economic condition of the people. The transfer of traffic from sea to rail-routes further assisted the financial position of the railways.

The convention of 1924 became inoperative from 1st April 1943. According to a resolution adopted by the Assembly in March 1943, the surplus on commercial lines in 1943.44 was to be shared with the general revenues in the proportion of three to one after repaying any outstanding loan from the depreciation Fund. Further surpluses on commercial lines were to be divided between the general revenues and the railways reserves according to the needs of each. This convention was again modified in 1951, since then the railways have become more independent of the Central Government with regard to the control of their funds.

As a result of the partition, the Indian Union came into possession of a total railway mileage of 33,865 with capital at charge of Rs. 678 crores, Depreciation Fund equal to Rs. 93·22 crores, Railway Reserve Rs. 7·98 crores, and Betterment Fund Rs. 11·71 crores.

Q. 42. Discuss the question of the separation of railway finance from the general budget.

रेलवे बजट का सामान्य बजट से पृथक्करण

अकवर्थ कमेटी ने रेलवे बजट को सामान्य बजट से पृथक करने की बहुत जोर से सिफारिश की थी। कमेटी के मतानुसार भारतीय रेलों का उचित विकास शीघ्रता से तब तक असम्भव था जब तक कि रेलवे बजट सामान्य बजट में सम्मिलित रहता। इसलिए कमेटी ने रेलवे बजट को सामान्य बजट से पृथक करने के पक्ष में निम्नांकित कारण दिये।

(१) रेलों का लाभ औद्योगिक तथा व्यापारिक परिस्थितियों के कारण घटता-बढ़ता रहता है, इसलिए यदि रेलवे बजट सामान्य बजट के साथ रहेगा तो सामान्य बजट में काफी अनिश्चितता रहा करेगी, जो जनहित के विरुद्ध रहेगा।

(२) इसी प्रकार यदि रेलवे बजट सामान्य बजट के साथ रक्खा जाय तो उसे भी अनिश्चितता का शिकार होना पड़ेगा। क्योंकि भारतीय सरकार का बजट देश के कृषि प्रधान होने के कारण अनिश्चित ही रहता है। इसका प्रभाव रेल-विकास को अहितकर होगा।

(३) सामान्य बजट का वर्ष एक अप्रैल से प्रारम्भ होकर ३१ मार्च को समाप्त हो जाता है। यदि रेलवे बजट इसी में रहता है तो प्रत्येक ३१ मार्च को यह समझना

पड़ता है कि रेल-उद्योग आज समाप्त हो गया और १ अप्रैल से नये सिरे से प्रारम्भ किया जायगा। यह वास्तविकता से परे है।

(४) यदि दोनों बजट पृथक हो जायँगे तो सरकार व रेलों का दोनों का कार्य अधिक सुगमता से चल सकेगा और बजट सम्बन्धी बहुत-सी जटिलताएँ स्वयं समाप्त हो जायँगी।

कमेटी की सिफारिश के आधार पर सन् १६२१ ई० में इस सम्बन्ध का एक प्रस्ताव लेजिस्लेटिव असेम्बली में पेश किया गया और इस प्रश्न पर दोनों धारा-सभाओं की संयुक्त बैठक ने विचार किया। इस कमेटी ने भी पृथक्करण के पक्ष में ही राय दी। साथ ही साथ कमेटी ने इसकी सिफारिश की, कि रेलवे के पुनर्निर्माण व जीर्णोद्धार के लिए ५ साल तक १५० करोड़ रु० व्यय किये जाने चाहिए, जिसमें युद्धकाल में रेलवे लाइनों में जो कमियाँ व टूट-फूट हो गई थी वह दूर की जायँ व उनकी भली-भाँति मरम्मत हो सके, और तीसरी श्रेणी के यात्रियों को अधिक सुविधाएँ प्रदान की जा सकें। १६२४ ई० में असेम्बली ने सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और योजना भी स्वीकार की, जिसके अनुसार रेलवे-बजट का पृथक्करण हो सके। पृथक्करण की एक शर्त रक्खी गई कि रेलवे प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि अपने लाभ में से सरकार को दिया करेगी, और इस धनराशि के भुगतान को रेलों की आय में से प्राथमिकता दी जायगी। इसके अतिरिक्त कुछ और शर्तें निम्नांकित थीं।

(१) उक्त निश्चित धनराशि कम्पनियों व रियासतों द्वारा लगाई हुई पूँजी को छोड़कर रेलों में लगी हुई शेष पूँजी का १ प्रतिशत व बचे हुए अतिरिक्त लाभ का ⅕ भाग होगी। यदि किसी वर्ष रेलों की आय १ प्रतिशत धन राशि के देने में कम हो तो वह कमी सर्वप्रथम, दूसरे वर्ष के लाभ से पूरी की जायगी। उसमें से अनुत्पादक रेलों में लगी पूँजी का ब्याज और उनकी हानि घटा दी जायगी। क्योंकि इस धन-राशि की देनदार सरकार ही ठहराई गई।

(२) उपर्युक्त धनराशि देने के पश्चात् जो लाभ बच रहेगा वह रिजर्व फण्ड में जमा किया जायगा और जिस साल यह धन ३ करोड़ रु० से अधिक हो उस साल ३ करोड़ से ऊपर के लाभ का केवल दो तिहाई रिजर्व फण्ड में जमा किया जायगा और एक तिहाई सरकारी कोष में दिया जायगा।

(३) यह निधि सरकारी कोष को वार्षिक धनराशि देने, पूँजीगत व्यय को मिटाने या कम करने, रेलों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने तथा depreciation के लिए रक्खी जायगी।

(४) आवश्यकता पड़ने पर रेलें रिजर्व-फण्ड से ऋण ले सकती हैं।

(५) १२ सदस्यों की एक स्थायी वित्त-समिति की स्थापना की जायगी, जिसका सभापति विधान सभा के सदस्यों में से सरकार द्वारा मनोनीत किया जायगा। शेष ११ सदस्य विधान सभा द्वारा निर्वाचित किए जायँगे, और ये ही १२ सदस्य केन्द्रीय मन्त्रि परिषद (central Advisory council) के ex-officio सदस्य समझे जायंगे। इस कौंसिल के कुल २५ सदस्य हुआ करेंगे। स्थायी वित्त समिति रेलों के व्यय सम्बन्धी अनुदानों पर विधान सभा में जाने से पूर्व विचार किया करेगी।

(६) रेलों का बजट देश के सामान्य बजट से पूर्व विधान सभा के सामने रक्खा जायगा और उसके वाद-विवाद के लिए अलग दिन निश्चित किए जायँगे। कमेटी के

अन्य सिफारिशों के अनुसार रेल-सम्पत्ति के नवीनीकरण के लिए एक depreciation fund स्थापित किया गया तथा बड़े-बड़े रेल-कर्मचारियों का भारतीयकरण और भारत सरकार द्वारा सामान खरीदने की व्यवस्था का आग्रह किया गया।

रेलवे बजट की नवीन व्यवस्था के अनुसार रेलों के आय-व्यय पर सरकारी वित्त विभाग का कोई अधिकार न रहा। सरकारी बजट में भारी कमी-बेशी की सम्भावना कम हो गई। रेलें अपने बजट के अनुसार नीति बरतने में स्वतन्त्र हो गई। रिजर्व फण्ड तथा depreciation fund के बनने से रेलों की आर्थिक स्थिति में काफी दृढ़ता आ गई।

(१) इस नवीन व्यवस्था में कुछ दुर्बलताएँ भी थीं। यह व्यवस्था तभी तक सफलता से चल सकती थी जब तक कि रेलों की आय अच्छी होती रहे, यदि हानि होने लगे, तो इस व्यवस्था के अनुसार कार्य असंभव हो जाता।

(२) एक प्रतिशत धन-राशि देने के लिए रेलें बाध्य थीं, और यदि काम न हो तो ऋण लेकर भी उक्त धनराशि देना अनिवार्य था। रेलों के लिए यह व्यवहार कठोर सिद्ध हुआ।

(३) यदि रेलें किसी वर्ष धनराशि देने में असफल रहें तो आगामी वर्ष में वह तब तक लाभ न पा सकती थीं जब तक पिछली रकम अदा न कर दी जाय। पिछले दायित्व को बिना चुकाए न तो लाभ घोषित हो सकता था न रिजर्व फण्ड में जमा किया जा सकता था और न जनता को सस्ती सेवाएँ दी जा सकती थीं। इस प्रकार वास्तव में जब उद्योग व व्यवसाय में depreciation का समय आया तो इसका पालन नहीं हो सका। नई व्यवस्था के प्रारम्भ होने के ५ साल बाद तक तो रेलों को काफी लाभ होता रहा, और निश्चित धनराशि सरकार को दी जा सकी तथा रिजर्व फण्ड व depreciation fund में भी नियमानुसार जमा किया जा सका। लेकिन सन् १९२९ व ३० से व्यापार में शिथिलता आरम्भ हुई। रेलों की आय कम होने लगी। लाभ-मात्रा भी घट गई। इस वर्ष लाभ, देने वाली धन-राशि से कम रहा। कुछ रु० रिजर्व फण्ड से उधार लेना पड़ा। यही हाल सन् १९३० व ३१ ई० में भी हुआ। १९३१ व ३२ में स्थिति और भी बिगड़ गई। इन ३ सालों में ही रिजर्व फण्ड प्रायः समाप्त हो गया। रेलों की आय के उत्तरोत्तर ह्रास से घबड़ा कर सरकार ने १९३१ में रेल-व्यय कम करने के सुझाव देने के लिए एक Retrenchment Committee की स्थापना की। उसने निम्नांकित सुझाव दिये।

(१) रेलवे बोर्ड के पदाधिकारियों की संख्या कम की जानी चाहिए। सदस्यों की संख्या ३ के स्थान पर २, ५ संचालकों के स्थान पर ३ तथा ५ उपसंचालकों के स्थान पर ४ चाहिए।

(२) रेलवे Rates Advisory कमेटी के स्थान पर 'एड हॉक' कमेटी के द्वारा काम चलाया जाना चाहिये।

(३) सेण्ट्रल Publicity विभाग का कार्य Railway Board को सौंप देना चाहिए।

(४) भारतीय रेलों के लंदन-स्थित कार्यालय के कर्मचारियों की संख्या कम की जानी चाहिये।

(५) रेलों के कर्मचारियों के वेतन में से २० प्रतिशत के लगभग कटौती की जानी चाहिये।

इन सुझावों में से बहुत से सुझावों को भारत सरकार ने स्वीकृत कर लिया। इनके कार्यान्वित करने से रेलों के वार्षिक व्यय में ३ करोड़ रु० की कमी की जा सकी। इससे रेलवे की आर्थिक स्थिति संतोषजनक न हो सकी। विशेष कर उपर्युक्त सुझावों से रेल-व्यय के प्रथम भाग संचालन-व्यय में किसी प्रकार की कमी न हुई। इसलिए १९३२ ई० में भारत सरकार ने पोप समिति नियुक्त की, जिसका कार्य रेलों के व्यय में मितव्ययता की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालना था।

पोप समिति ने सैद्धान्तिक रूप से उचित सुझाव दिये। परन्तु ये सब सुझाव दूरदर्शितापूर्ण और अति उपयोगी होते हुए भी तत्कालीन परिस्थितियों के सुधारने को पर्याप्त न थे, और रेलों की आर्थिक स्थिति खराब ही होती चली गई। पोक कमेटी की सिफारिशों के अनुसार कुछ काम किया गया, जिसके फलस्वरूप बजट की कमी में कुछ न्यूनता तो हुई पर इच्छित लाभ नहीं हुआ और १९३५-३६ तक रेलों को depreciation fund से उधार लेना पड़ा। यह नीति ठीक नहीं थी। depriciation fund से लगातार लेते जाना और व्यय कम करके आय-व्यय में सन्तुलन स्थापित करने के सफल प्रयत्न न करना न्यायसंगत नहीं था। ऐसा करने से depreciation fund में कमी हो जाने के कारण रेलों के वार्षिक जीर्णोद्धार मरम्मत आदि के कार्य के लिए पर्याप्त पूँजी मिलना कठिन होता जाता था। इसके साथ-साथ ऋण लेने की स्वतन्त्रता होने के कारण रेलवे कर्मचारी सुधार की ओर ध्यान भी न देते थे। Public Accounts ने १९३६ की अपनी वार्षिक रिपोर्ट में इस नीति की बहुत निन्दा की है।

सर ओटो नीमियर ने भी अप्रैल १९३६ में सरकार का ध्यान रेल-व्यय में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता की ओर आकर्षित किया। इन सब सुझावों के फल से तथा १९३० से १९३६ तक की रेलवे की वित्त परिस्थिति में कोई सुधार न होने के कारण सरकार ने १९३६ में एक वैजवुड समिति की नियुक्ति की। इस समिति का कार्य रेलों की वर्तमान दशा का अध्ययन करके ऐसे सुझावों को प्रस्तावित करना था जिससे रेलों की शुद्ध आय में काफी वृद्धि हो। उनकी आर्थिक स्थिति दृढ़ हो और धीरे-धीरे रेल-उद्योग से लाभ भी होने लगे।

वैजवुड कमेटी की रिपोर्ट जून सन् १९३५ में प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट के अन्दर कमेटी ने रेलवे की प्रत्येक समस्या पर काफी विचार किया। और उनकी कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिए, मितव्ययता के लिए तथा आय-वृद्धि के लिए बहुत से महत्वपूर्ण सुझाव दिये। संक्षेप में इस कमेटी ने पोक कमेटी की अधिकांश सिफारिशें दुहराईं। कमेटी के मतानुसार depreciation fund में ३० करोड़ रु० का Normal Balance रखने की सिफारिश की और साथ-साथ यह भी सिफारिश की, कि एक सामान्य रिजर्व फण्ड बनाया जाय जिससे पूँजी तथा ब्याज का भुगतान होता चला जाय। आय बढ़ाने के लिए कमेटी ने रेलवे का ध्यान जनता से अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने की ओर दिलाया। कमेटी ने रेल और सड़क यातायात की प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए भी जोर दिया और जो रुपया पिछले वर्षों में रेलवे भुगतान न कर सकी थी उससे रेलों को मुक्त किये जाने में भी समिति को कोई आपत्ति न थी। परन्तु depreciation fund से जो रु० दिया गया था उसका अदा करना रेलों के लिए अनिवार्य-सा था। संयोगवश १९३६ व ३७ में रेलों को इतना लाभ हुआ कि जिससे depreciation fund का ऋण चुका दिया गया। परन्तु फिर भी रेलों को ६१ करोड़ का ऋण चुकाना था। इसके लिए निश्चय किया गया कि अप्रैल १९४० से पहिले रेलों से

उपर्युक्त ऋण चुकाने को न कहा जाय। इस समय में जो कुछ लाभ हो उसे सरकारी कोष के प्रति वार्षिक दायित्व के चुकाने के काम में लाया जाय; परन्तु रेलों की आर्थिक दशा में विशेष सुधार न हुआ और वे केवल वार्षिक दायित्व के एक अंश चुकाने में ही समर्थ हो सकीं। अतः ऋण चुकाना आरम्भ करने की अवधि १ अप्रैल १९४२ तक बढ़ा दी गई।

अब तक के इतिहास से सिद्ध होता है कि सन् १९२४ ई में सरकारी कोष के प्रति जो रेलों का दायित्व निश्चित किया गया था वह न्यायोचित न था। और १९४०–४१ ई० तक रेलों को कोई विशेष लाभ नही हुआ। परन्तु इसी साल उनको कुछ लाभ दिखाई दिया किन्तु साथ-ही-साथ द्वितीय महायुद्ध का संकट सामने आ गया और अब लाभ का प्रयोग रेलों की दशा सुधारने की अपेक्षा युद्ध के कार्यों में किया जाने लगा। फिर भी १९४३ ई० तक रेलों ने अपना प्राचीन ऋण चुका दिया। १९२४ के प्रस्ताव को अव्यावहारिक समझ कर १९४३ में विधान सभा द्वारा रेलों के दायित्व वाली बात समाप्त कर दी गई। और अब यह निश्चय किया गया कि उत्पादक रेलों के लाभ में से कुछ भाग depreciation fund में जमा किया जायगा, कुछ ऋण चुकाने में प्रयोग किया जायगा, जो कुछ बचेगा उसका २५% रिजर्व फण्ड में और ७५% सरकारी कोष में दिया जायगा। और जब तक कोई नई व्यवस्था निश्चित न की जाय, तब तक उत्पादक रेलों द्वारा कमाया हुआ लाभ हर साल सरकार तथा रेलों में आवश्यकतानुसार बाँट लिया जाया करेगा।

उपर्युक्त प्रबन्ध ३१ मार्च सन् १९५० ई० तक चलता रहा। इसके पश्चात् एक प्रस्ताव द्वारा एक संशोधित प्रणाली निश्चित की गई, जिसके अनुसार रेलों के आय-व्यय को सरकारी आय-व्यय से पृथक रखने तथा रेलों द्वारा सरकारी कोष को प्रति वर्ष अपनी पूँजी का एक निश्चित लाभांश देने का निश्चय किया गया। यह दर प्रथम पाँच वर्ष के लिए ४ प्रतिशत रक्खी गई। (अनुत्पादक रेलों में लगी हुई पूँजी को छोड़कर) रेवेन्यू फण्ड का नाम रेवेन्यू फण्ड रख दिया गया, जो सरकारी कोष को निश्चित धन देने तथा रेलों के आय-व्यय की वार्षिक कमी को पूरा करने के लिए प्रयोग में लाया जायगा। एक development fund की भी स्थापना की गई जो यात्रियों को सुविधाएँ देने, श्रम-कल्याण तथा अनुत्पादक रेल-योजनाओं पर व्यय करने के लिए काम में लाया जा सकता है। Renewal तथा replacement के लिए प्रथम पाँच वर्ष तक १५ करोड़ रुपये वार्षिक के हिसाब से depreciation fund में जमा करने का निश्चय किया गया तथा यह धनराशि संचालन व्यय का ही एक भाग समझी जायगी। रेलों के लिए एक standing finance committee तथा एक central advisory council स्थापित करने का निश्चय किया गया। रेलवे सम्बन्धी वार्षिक माँगें विधानसभा में उपस्थित करने से पूर्व standing finance committee के सामने रखने की प्रणाली भी अपनाई गई।

यह नवीन व्यवस्था प्राचीन व्यवस्था से किन्हीं बातों में अच्छी है। अब रेलों का सरकारी कोष के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं है, वे केवल लाभांश देने के लिए उत्तरदायी हैं। अब यह आवश्यक नहीं है कि रेलों को चाहे लाभ न हो, हानि ही हो फिर भी उन्हें सरकारी कोष में एक निश्चित धनराशि देनी पड़ती थी, यह अनिवार्यतः समाप्त हो गई है। नवीन व्यवस्था के अनुसार दायित्व की दर भी प्रति पाँच वर्ष परिस्थितियों के अनुसार घटती-बढ़ती रहेगी। आय और पूँजी का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया है और दोनों के लिए अलग-अलग निधियाँ हैं। पहिले एक ही

संचित निधि थी। परन्तु अब जैसा ऊपर लिखा जा चुका है अलग-अलग उद्देश्यों के लिए तीन अलग-अलग निधियाँ हैं। रेलों का अतिरिक्त लाभ इन तीनों निधियों में आवश्यकतानुसार बाँट दिया जाता है. इस पर अब सरकार का कोई अधिकार नहीं रहा। इन सब गुणों के होते हुए भी, वर्तमान व्यवस्था पूर्णतः दोषमुक्त नहीं है। सरकारी कोष अभी भी रेलों के बैंक का काम करता है. वास्तव में रेलों का अपना अलग-अलग खाता होना चाहिए, जिसमें इनके सारे कोष संचित रहें, जिसका उपयोग रेलें स्वतन्त्रतापूर्वक हर समय कर सकें।

CHAPTER VIII

Selected Problems of Indian Railways.

1—**Ticketless travelling including the cheat, the penniless passenger, the victim to circumstances and the easy going public.** The type of travelling is increasing in spite of the Govt.'s efforts to check it. The problem has to be tackled rigidly and strong and inpartial officials are posted for this purpose. The problem can not be solved.

2—**The provision of Amenities to passengers**—is another problem more accommodation in trains, in waiting room and on platforms is necessary. Other conveniences of light, water and sanitation are also badly needed, overcrowding in trains still persists. The Govt. is making an attempt in this direction also but the progress is very slow. Efferts on an extensive scale are necessary.

Electrification of the Railways—on account of a number of advantages resulting from the electrification of the railways. This has been regarded as a necessary step for improvement. And as India has a great potentiality for the supply of electric power, it would not be very difficult for the railways to electrify the trains. Electrification would enable the locomotives to maintain a better average speed and to reduce operating cost. Besides it would eleminate smoke nuisance.

The Problem of Accidents—is also becoming a very important one these days. The number of accidents is increasing. It may be partly due to the old rolling stock and permanent way which could not be replaced during the war time or it may be due to the comparative inefficiency and carelessness of the Indian supervising staff. Whatever the cause may be the number of accidents has to be minimised and for which, besides making necessary repairs and renewals, the railway staff concerned must be strictly taken to task for the negligence of their duty as a minor accident may be responsible for the loss of many lives and a great amount of material.

In short, the replacement, renewal and development of railways, the removal of overcrowding, the discouragement to ticketless travel, electrification, the reduction in the number of accidents to minimum and the removal of corruption are some of the important problems facing the railway administration in India at present.

Q. 43. Do you agree with the view that the Indian Railways are unpopular, if so, what must be done to improve public relation and in handling merchandise ?

वैसे तो संसार की प्रत्येक वस्तु को कुछ लोग चाहते हैं, कुछ नहीं चाहते। बहुत से वृहत मात्रा के उद्योगों का भी यही हाल है। कुछ लोग उन्हें पसन्द करते हैं, कुछ नहीं। रेलें भी संसार के और देशों में पूर्ण रूप से सर्वप्रिय नहीं हैं। किसी-न-किसी वर्ग को कुछ-न-कुछ शिकायत रहती ही है। यही बात भारतीय रेलों के बारे में भी है। भारतीय रेलें भी सर्वप्रिय नहीं हैं। राज्य की सरकारें तो उन्हें इसलिए पसन्द नहीं करतीं कि वे केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति हैं और उन्हीं को लाभ देती हैं। वे राज्य सरकार के हितों का विशेष ध्यान नहीं रखतीं। जनता एक तो उन्हें विदेशी पूँजी से बनी संपत्ति समझती है, और दूसरे उनको कम-से-कम निजी या राष्ट्र की संपत्ति की दृष्टि से नहीं देखती। जनता का अधिकांश भाग उन्हें राष्ट्रीय उद्योगों के विकास में बाधक समझता है और बहुत से मनुष्य रेलों को देश के परतन्त्र बनाने में सहायक मशीन समझते हैं। इनमें से बहुत सी रायें तो भावुकता प्राधान हैं। रेलों का सर्वप्रिय न होने का लक्षण तो हमें रेल-सेवा उपभोक्ताओं के भावों से जानना चाहिए। इसकी दृष्टि से हम जनता को ४ भागों में बाँट सकते हैं—

(१) यात्री
(२) व्यापारी
(३) कर्मचारी
(४) रेलवे लाइनों के आस-पास रहने वाले व्यक्ति।

इनमें से अन्तिम वर्ग के व्यक्ति रेलों को इसलिए पसन्द नहीं करते कि उनकी शान्ति में बाधा पड़ती है। बहुत सों की भूमि बिना मुआवजा या कम मुआवजा दिए ही ले ली गई हैं, और बहुतों के विशेष कर ग्रामीण क्षेत्र में जानवर आदि का जाया करती हैं। लेकिन रेलों का इस वर्ग को सर्वप्रिय न होना नगण्य-सा ही है। यदि हम रेलवे कर्मचारियों की ओर दृष्टि डालें तो अधिकांश कर्मचारी अपने वेतन तथा मिलने वाली और सुविधाओं से अप्रसन्न हैं और हमेशा इसी प्रकार का दावा करते हैं कि उनका वेतन भी अधिक होना चाहिए, और उन्हें विशेष सुविधाएं दी जानी चाहिए। लेकिन कर्मचारियों का असन्तुष्ट होना भी विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि उन्हें इस बात की पूर्ण आजादी है कि वे दूसरी अच्छी जगह नौकरी कर सकते हैं। फिर भी राष्ट्रीय स्तर का ध्यान रखते हुए इन कर्मचारियों को यथा सम्भव उचित सुविधाओं का शीघ्र ही प्रबन्ध किया जाना चाहिये। अब जनता के केवल दो वर्गों का विचार रह जाता है। यात्री और व्यापारी। रेलें विशेष कर यात्रियों व व्यापारियों को ही सुविधा प्रदान करने को बनाई गई हैं। यात्रियों व व्यापारियों को विभिन्न प्रकार की यातायात-सुविधाएँ देना ही रेलों का मुख्य कर्त्तव्य है और यदि रेलें इसमें असफल होती हैं या इनको पूर्ण संतोष नहीं दे सकतीं तो वास्तव में यह शोचनीय बात है। क्योंकि यदि वे यातायात की उचित सुविधा नहीं दे सकती हैं, तो सबसे पहिले तो अपने कर्त्तव्य से अलग होती हैं। दूसरे, जिन यात्रियों और व्यापारियों से रु० लेती हैं उनको पूर्ण संतोष न देना, अनैतिकता भी है। अब यह देखना है कि यात्रियों और व्यापारियों में रेलें सर्व प्रिय क्यों नहीं हैं। जहाँ तक यात्रियों का सम्बन्ध है इनको निम्नांकित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—

(१) रेलों का भाड़ा दिन पर दिन बढ़ता चला जाता है। जिस समय रेलों का प्रारम्भ हुआ था उस समय के भाड़े-दर की यदि आधुनिक भाड़े-दर से तुलना की जाय तो आजकल का भाड़ा लगभग ३ गुना या ४ गुना बैठता है। यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि सभी वस्तुओं के मूल्य में तेजी हो गई है। इस कारण से

यदि रेल-सेवा मूल्य में भी कमी हो जाय तो अनुचित नहीं कहा जा सकता। और रेलों के राष्ट्रीयकरण होने के बाद इस प्रकार की शिकायत कोई तथ्य नहीं रखती। यदि यात्रियों से अधिक भाड़ा लिया भी जाता हो तो अधिक आय होने के फलस्वरूप रेलों की जो अधिक बचत होती है वह जनता के हित में ही व्यय की जाती है।

(२) यात्रियों के अधिकांश भाग को विशेषकर तृतीय श्रेणी के यात्रियों को रेलें उचित सुविधाएं प्रदान नहीं करतीं। जनता की यह शिकायत, वास्तव में महत्व की है। परन्तु अभी तक भारतीय रेलें विदेशी कम्पनियों अथवा विदेशी सरकार के प्रबन्ध में चलाई जाती थीं। इसलिए तृतीय श्रेणी के यात्रियों की ओर विशेष ध्यान न देना स्वाभाविक था। जब से देश को स्वतन्त्रता मिल गई है, और रेलों का राष्ट्रीयकरण हो गया है, सरकार इस ओर पर्याप्त प्रयत्न कर रही है। और अब, प्रत्येक गाड़ी में तृतीय श्रेणी के यात्रियों के लिए अधिक डिब्बों, पंखों व सफाई आदि का प्रबन्ध किया जा रहा है। प्लेटफार्मों व मुसाफिर खानों में भी पंखों तथा जल का समुचित प्रबन्ध हो रहा है। हाँ, यह हो सकता है कि विस्तार अधिक होने के कारण इस प्रकार के सुधार में बहुत समय लग सकता है।

(३) यात्रियों की एक और बड़ी शिकायत टिकट घरों पर भीड़ की होती है। विशेष अवसरों को छोड़कर टिकट घरों पर अधिक भीड़ होने का उत्तरदायित्व अधिकांशतः रेलवे कर्मचारियों पर ही है। उन्हें टिकट खिड़की गाड़ी आने से जितने पहिले खोलनी चाहिए, उतने पहिले वे नहीं खोलते और बीच-बीच में भी दूसरे कार्य करने को चले जाते हैं, ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि टिकट बाँटने वाले कर्मचारी को उस समय और कोई कार्य न करना पड़े। जनता भी लाइन बनाकर भीड़ की समस्या को काफी हल कर सकती है। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर मुख्य कर विवाह आदि के दिनों में, पर्व अथवा मेलों के अवसरों पर रेलों पर अधिक भीड़ होती है। यह समस्या गाड़ियों में अधिक डिब्बे लगाकर हल की जा सकती है। बिना टिकट चलने वाले व्यक्तियों से भी यात्रियों को कुछ कष्ट पहुँचता है विशेषकर बिना टिकट यात्रा करने वाले उच्च श्रेणी के डिब्बों में बैठ जाते हैं, जिससे इन श्रेणी के यात्रियों को अधिक व्यय करने पर भी स्थान की सुविधा पर्याप्त नहीं मिल पाती। इस शिकायत के दूर करने को, रेलवे कर्मचारियों का अधिक सतर्क होना आवश्यक है। कभी-कभी यात्रियों के साथ, रेलवे कर्मचारियों अथवा रेलवे पुलिस द्वारा असभ्यता का व्यवहार भी किया जाता है। यह शिकायत सरकार द्वारा ही दूर हो सकती है। त्रुटि सिद्ध होने पर इन कर्मचारियों को कड़ा-से-कड़ा दण्ड दिया जाय।

(४) कुछ वर्षों से रेलों में जान-माल की रक्षा का प्रश्न भी महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। रेलों में माल चुराने तथा धनी यात्रियों को हत्या करके फेंक देने की घटनाएँ बढ़ती जा रही हैं। इसके लिए सरकार को प्रत्येक गाड़ी के साथ अधिक पुलिस नियुक्त करने की आवश्यकता है। इस प्रकार से और भी अनेक छोटी-छोटी शिकायतें हो सकती हैं, जिनके कारण भारतीय रेलें यात्रियों को सर्वप्रिय नहीं बना सकीं। इन शिकायतों को दूर करने के लिए सरकार को समय-समय पर गैर सरकारी कमेटी की नियुक्ति करनी चाहिए जो इन शिकायतों पर विचार करके सरकार को सुझाव दिया करे और सरकार उन सुझावों के आधार पर शिकायतों को दूर करने का प्रयत्न किया करे।

जहाँ तक व्यापारियों का सम्बन्ध है युद्धकाल से रेलें व्यापारियों में बहुत अप्रिय हो गई हैं। उन्हें अपने माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने में बहुत

कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कभी कभी उन्हें दो-दो माह तक माल भेजने के लिए डिब्बे ही नहीं मिलते, कभी किसी स्टेशन से माल का बुक करना ही बन्द कर दिया जाता है, कभी किसी दिशा को माल भेजना बन्द कर दिया जाता है। कभी किसी माल पर नियन्त्रण कर दिया जाता है। वास्तव में ये सब शिकायतें ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध इतना रेलों से नहीं जितना रेलों की उच्च नीति अथवा सरकारी नीति से सम्बन्ध होता है। फिर भी इस नीति का निर्धारण यदि सहानुभूतिपूर्वक किया जाय, तो व्यापारियों की बहुत सी शिकायतें दूर हो सकती हैं। व्यापारियों को इन नीतियों से इतना कष्ट नहीं होता जितना रेलवे कर्मचारियों में फैले हुए भ्रष्टाचार से। रेलवे का प्रत्येक कर्मचारी माल लादने में तथा माल छोड़ने में भी कुछ न कुछ हक लेने की आशा करता है और जब तक उसे उसका हक नहीं दे दिया जाता तब तक वह कार्य को नहीं करता। ऐसी जनता की आम धारणा है। व्यापारियों की यह शिकायत तो भ्रष्टाचार विरोधी विभाग द्वारा दृढ़तापूर्वक कर्त्तव्य पालन करने से दूर की जा सकती है। प्रत्येक औद्योगिक नगर के व्यापारी-मंडल की एक प्रतिनिधि कमेटी बनाई जाय जो स्थानीय रेलवे कर्मचारियों से सम्पर्क रक्खे और आपसी असुविधाएँ विचार-विनिमय द्वारा दूर की जा सकें। यदि दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति सहानुभूति रक्खें तो बहुत-सी असुविधाएँ अपने आप दूर हो जावें।

यात्रियों को टिकट लेने की असुविधा भी स्थानीय कर्मचारियों द्वारा दूर हो सकती है, यदि वे अपने कर्त्तव्य का भली-भाँति पालन करें। तृतीय श्रेणी के यात्रियों को डिब्बों में चढ़ने व उतरने सम्बन्धी प्रशिक्षण देना आवश्यक है। प्रत्येक डिब्बे में दोनों तरफ कम-से-कम दो-दो दरवाजे होने चाहिए। चढ़ने वाले दरवाजों का रंग हरा कर दिया जाय तथा उतरने वालों का लाल। कुछ दिनों के प्रशिक्षण के बाद यात्री अपने आप हरे दरवाजे से चढ़ने तथा लाल दरवाजे से उतरने लगेंगे। इसके फलस्वरूप उतरने-चढ़ने की धक्कम-धक्का भी समाप्त हो जायगी। रेलवे कर्मचारियों, विद्यार्थियों आदि को पास उदारतापूर्ण रियायत के साथ दिया जाना चाहिए, परन्तु नियमों का पालन उनके साथ भी कठोरता के साथ होना चाहिए, जिससे यात्रा में उच्छृङ्खलता न रहे। जिन स्थानीय रेलगाड़ियों में काफी विद्यार्थी लोग घर से पाठशालाओं को प्रतिदिन आते-जाते हैं उनमें एक विशेष विद्यार्थी डिब्बा होना चाहिए, यथा सम्भव वे लोग उसी में बैठा करें, इन डिब्बों में शिक्षाप्रद चित्र तथा तालिकायें टाँगी जा सकती हैं, जिनसे विद्यार्थियों को लाभ हो। रेलगाड़ियों में खाने-पीने की चीजों को छोड़कर और चीजों का बेचा जाना बन्द कर दिया जाना चाहिये। इसी प्रकार डिब्बों में भीख माँगना बन्द होना चाहिये। यदि सम्बन्धित कर्मचारी दृढ़तापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो इन समस्याओं का हल सरलता से हो सकता है। हाँ, सरकार को भी इन कर्मचारियों की उचित सहायता करनी चाहिए।

Q. 44. Write a note on—
(a) Corruption in Indian Railways.
(b) Indian Railways under the plans.
(c) Present position of Indian Railways.

भारतीय समाज में दस्तूर की प्रथा ने कहीं-कहीं पर बहुत ही बुरा प्रभाव डाला है। और यह दस्तूर धीरे-धीरे रिश्वत तथा भ्रष्टाचार में परिणत हो गया है। जब तक दस्तूर देने वाला अपनी खुशी से दे उस पर किसी तरह का दबाव न पड़े तब तक आर्थिक दृष्टि से तो वह ठीक है परन्तु नैतिक दृष्टि से दस्तूर का

देना व लेना दोनों अनुचित हैं। रेल-यातायात में भी यह दस्तूर प्रथा बहुत दिना से सम्भव है २०वीं सदी के प्रारम्भ से ही प्रचलित है। उदाहरण के लिए बारात वालों को टिकट तभी मिला करता है जब वह वहीं क्लर्क को दस्तूर दे दे। कभी-कभी तो बारात को गेट से पास तभी होने देते हैं, जब दस्तूर अदा कर दिया जाता है। साधारण परिस्थितियों में इस प्रकार के दस्तूर लोगों को बुरे नही लगते। जिस बारात में २-४ हजार रु० व्यय किए गए, उसमें यदि २-४ रु० दस्तूर के रूप में और देने पड़ें तो देने वालों को बुरे नहीं लगते। लेकिन बारातों का अवसर तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में २-४ बार ही आता है जहाँ उसे दस्तूर देना पड़े, परन्तु यही दस्तूर यदि दिन-प्रति-दिन का कार्य हो जाय तो लोगों को असह्य हो जाता है। इसी प्रकार के दस्तूर रेलवे अधिकारी तथा व्यापारी-वर्ग के बीच स्थापित हैं। यद्यपि इन दस्तूरों का जन्म तथा उनका अस्तित्व देने वाले की इच्छा पर ही निर्भर होता है, परन्तु जब इन दस्तूरों का न मिलना, रेलवे अधिकारियों द्वारा व्यापारियों के मार्ग में बाधा डालने का कार्य करने लगता है तो यह दस्तूर-प्रणाली असह्य हो जाती है। द्वितीय महायुद्ध के समय में इस प्रथा ने अपना भीषण रूप धारण कर लिया। गाड़ियों की कमी, उनमें स्थान की कमी, यातायात का बाहुल्य, द्राव्यिक आय की वृद्धि आदि ने इस प्रथा को और भी प्रोत्साहित किया। यदि यात्रियों को टिकट मिलने में अधिक असुविधा हुई, कुछ ने मिलकर अधिकारियों को उपहार स्वरूप कुछ रु० भेंट किये और टिकट प्राप्त कर लिया। इस प्रकार के उपहार का चलन इतना प्रबल यात्रियों में नहीं हुआ जितना व्यापारी वर्ग में। माल के यातायात पर प्रतिबन्ध, उस पर तरह-तरह के नियन्त्रण, उन पर priority आदि ने इसमें भी एक प्रकार का ब्लैक स्थापित कर दिया और कुछ रु० देकर व्यापारी अपने माल को दूसरे स्थान को भेजने में समर्थ होता था। इसी प्रकार माल के लादने व उतारने में भी उपहार स्वरूप द्रव्य दिया जाने लगा। यहाँ तक कि माल को कम तोलने में अन्दर कुछ भरा हो और कुछ लिखा देने में भ्रष्टाचार बड़ी मात्रा में फैल गया।

चीजों की बढ़ती हुई कीमतों के कारण व्यापारी-वर्ग को इस प्रकार रु० देने में खलता नहीं था और चूँकि रेलवे अधिकारियों की आय में काफी वृद्धि होती थी। इसलिए वे नये-नये तरीकों से रु० प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। साथ ही साथ जनता ने भी कभी इसे नैतिक दृष्टि से बुरा नहीं समझा और इसके साथ ही साथ रेल-यातायात सम्बन्धी नियमों की अज्ञानता व उनकी जटिलता के कारण भी अपना काम निकालने के लिए व्यापारी रेलवे अधिकारियों को रु० देने लगे। रेलवे विभाग के निरीक्षक अधिकारी इस ओर से कुछ तटस्थ से हो गये। वे रेलवे अधिकारियों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करने में ढील दिखाने लगे। इसके साथ-साथ स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद सारे राष्ट्रीय जीवन का नैतिक स्तर अस्त-व्यस्त-सा ही हो गया। इसके कारण भी रेलवे में भ्रष्टाचार प्रबल हुआ। जब यह भ्रष्टाचार असह्य हो गया और व्यापार में बाधक सिद्ध होने लगा तो व्यापारी-वर्ग द्वारा इसके विरुद्ध आवाज उठाई जाने लगी। धीरे-धीरे सरकार के कानों में भी यह बात पहुँची। उसके फलस्वरूप १९५५ ई० में सरकार ने corruption enquiry committee नियुक्त की।

इस कमेटी ने इस समस्या पर काफी खोजबीन की और देशव्यापी खोजबीन के बाद इसने उन सब कारणों का विश्लेषण किया जिनके कारण यह भ्रष्टाचार अधिक बढ़ता जा रहा है। और फिर इसको कम करने के लिए भी कुछ सुझाव दिये। संक्षेप में कमेटी ने भ्रष्टाचार के निम्नांकित कारण बतलाए—

(१) सामान के लादने व छुड़ाने में रेलवे अधिकारियों द्वारा परेशान किया जाना।
(२) माल की तोल-नाप में कमी या आधिक्य किया जाना।
(३) माल पर demerage आदि के रूप में अधिक वसूल करने की प्रवृत्ति।
(४) टिकट घर पर अधिक भीड़ अथवा समय पर टिकट न बाँटना।
(५) सामान वाले यात्रियों को परेशान करना।
(६) व्यापारियों द्वारा माल को शीघ्र भेजने का प्रयत्न।
(७) माल के डिब्बों की कमी।
(८) माल भेजने सम्बन्धी नियमों की जटिलता।
(९) बहुत से नियमों का जनता में प्रकाशित न होना।
(१०) रेलवे विभाग के निरीक्षकों की उदासीनता।
(११) उच्च अधिकारियों की अकर्मण्यता।
(१२) अनुशासनहीनता।
(१३) कम वेतन पाने वाले रेलवे अधिकारियों की शोचनीय आर्थिक दशा।
(१४) सामान्य वातावरण।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए कमेटी ने निम्नांकित सुझाव दिए, जिन्हें कार्यान्वित करने से वर्तमान भ्रष्टाचार बहुत कुछ हद तक कम किया जा सकता है।

(१) रेलवे विभाग द्वारा निर्देशों तथा नियमों का कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए।
(२) रेलवे विभाग के निरीक्षकों को न्याय के साथ निडर होकर कार्य करना चाहिए।
(३) पत्र-व्यवहार मे समय कम-से-कम लिया जाना चाहिए।
(४) रेलवे कर्मचारियों का तबादला भी यथा सम्भव शीघ्र ही करना चाहिए।
(५) रेलवे कर्मचारियों के प्रति बने हुए नियमों व उपनियमों का कठोरता के साथ पालन होना चाहिये।
(६) अपराधियों को दण्ड अवश्य मिलना चाहिए।
(७) अच्छे तथा सुयोग्य कर्मचारियों को प्रशंसा के साथ-साथ इनाम मिलना चाहिए।
(८) कर्मचारियों के कल्याणकारी कार्यों पर अधिक व्यय करना चाहिए, उन्हें यथाशक्ति काफी सुविधाएँ देनी चाहिए, जिससे उनका पारिवारिक जीवन सुखमय बना रहे।
(९) रेलवे पुलिस में सुधार होना चाहिए।
(१०) तहकीकात करने की प्रणाली अधिक सरल होनी चाहिए।
(११) चलती-फिरती अदालतों का प्रयोग अधिक होना चाहिए। ये अदालतें केवल जनता के विरुद्ध ही नहीं वरन् रेल-कर्मचारियों के विरुद्ध भी सुनवाई किया करें।
(१२) जिन रेलवे-कर्मचारियों के पास उनकी वेतन शक्ति से कहीं अधिक अनुचित रूप से धनराशि इकट्ठी हो गई है उसे सरकार को अपने कब्जे में कर लेना चाहिए।
(१३) अनुशासन पर अधिक बल देना चाहिए।
(१४) प्रत्येक क्षेत्र में एक रेलवे न्यायालय स्थापित होना चाहिए जो भ्रष्टाचार के मामलों पर शीघ्र निर्णय दे सके।

उपर्युक्त सुझावों के अतिरिक्त यह आवश्यक है कि रेलवे में फैले हुए भ्रष्टाचार के लिए जनता भी पूर्ण रूप से सहयोग दे। अपने व्यक्तिगत लाभ-हेतु किसी भी रेलवे कर्मचारी से नियम विरुद्ध कार्य न करवाना चाहिए। विशेषकर माल के यातायात में प्रतिबन्ध कम-से-कम होने चाहिए, क्योंकि इन्हीं की ओट में भ्रष्टाचार प्रबल होता है। यदि माल के आने-जाने में रेलवे कर्मचारी किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित न करें तो रु० लेने-देने का प्रश्न ही उठ जाये और यह कठिनाइयाँ प्रतिबन्धों की ओट में ही खड़ी की जाती हैं। इसलिए प्रतिबन्धों का न्यूनतम होना आवश्यकीय है।

इसके साथ-ही-साथ रेलवे कर्मचारियों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना चाहिए। रेलवे जन-उपयोगी उद्योग है और इसका सफलतापूर्वक संचालन जन-सेवा के ही भाव से अच्छी तरह हो सकता है। अतः रेलवे कर्मचारियों को अपने आपको अफसर न समझ कर एक-एक जन-सेवक अथवा कम-से-कम एक कर्मचारी ही समझना चाहिए। उन्हें सदैव यह ध्यान में रखना चाहिये, कि उनका कार्य जनता की सेवा करना है। यातायात में जनता को सुविधायें देना है, न कि उसमें बाधायें पहुँचाना। बहुत-से स्थान ऐसे हैं जिन पर विभागीय नियमों के अनुसार कार्य करने से जनता को कष्ट होता है, साथ-ही-साथ रिश्वत को स्थान मिलता है। ऐसे स्थानों के लिए रेलवे के स्थानीय कर्मचारियों द्वारा, विभागीय स्वीकृति से नियमों में कुछ शिथिलता कर देनी चाहिए, इसमें जनता की कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और भ्रष्टाचार के लिए स्थान नहीं रहता। उदाहरण के लिए, स्टेशन पर गाड़ी आने की सूचना से एक घण्टे पहिले टिकट बंटना प्रारम्भ होना चाहिए। मान लीजिए कि इस घण्टे के समय में २०० यात्रियों को टिकट बाँटा जा सकता है। यदि किसी स्टेशन पर किसी समय यात्रियों के जाने का औसत २०० से अधिक पड़ता है तो वहाँ यह समय बढ़ा देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो और बहुत से यात्रियों को टिकट नहीं मिलता तो दूसरी गाड़ी के लिए तो कुछ ही यात्री रुकेंगे। गार्ड भी सब को सर्टीफिकेट नहीं देता है, इसलिए प्रायः सब बिना टिकट ही गाड़ी में सवार हो जाते हैं। इनमें से बहुत से रेलवे कर्मचारियों की आँख बचा कर निकल जाते हैं और रेलवे को हानि होती है। कुछ अनुचित रूप से रु० देकर निकल जाते हैं जिससे भ्रष्टाचार बढ़ता है, कुछ निरीक्षकों द्वारा पकड़े भी जाते हैं तो उन्हें स्वयँ भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार एक रेलवे कर्मचारी में थोड़ी-सी जन-सेवा-प्रवृत्ति न होने के कारण बहुत से यात्रियों को कष्ट उठाना पड़ता है, रेलवे को हानि सहनी पड़ती है और भ्रष्टाचार को बल मिलता है। इस प्रकार यदि देखा जाय तो कमेटी ने जो सुझाव दिये है वे तो ठीक ही हैं, लेकिन सुधार नियमों के निर्माण से नहीं होता वरन् भावना के निर्माण से होता है। अतः इन सुझावों के कार्यान्वित करने के साथ-साथ सेवा-भाव पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से रेलवे में ही नहीं वरन् और विभागों में भी भ्रष्टाचार कम हो सकता है।

पंचवर्षीय योजनाएँ व भारतीय रेलें

भारतीय रेलों में अब तक ९८० करोड़ रुपयों की पूँजी लग चुकी है, देश में इनका ३५००० मील लम्बा जाल बिछा हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में गत महायुद्ध जन्य घिसावट, टूट-फूट, आदि को दूर कर रेल-सामग्री को सुधारने तथा आधुनिक बनाने ही में प्रयत्न किये गये, नवीन विकास की ओर प्रायः कुछ भी नहीं किया गया। फिर भी प्रथम योजना काल में ३८० मील नवीन लाइन डाली गई, युद्धकाल में

हटाई हुई ४३० मील लम्बी लाइन फिर से बिछाई गई और ४६ मील छोटी लाइन का बड़ी लाइन में परिवर्तन किया गया। चितरंजन लोकोमोटिव कारखाने ने ३३२ इन्जन तैयार किये। इसके अतिरिक्त कलकत्ते की समीपवर्ती रेलगाड़ियां बिजली द्वारा संचालित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। ४२७ मील नई लाइन बनाने का तथा ५२ मील छोटी लाइन को बड़ी लाइन में परिवर्तन करने का और प्रयत्न किया जा रहा है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारतीय रेलों की सबसे मुख्य समस्या यात्रियों तथा व्यापारियों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करना है। औद्योगिक विकास को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान किया जाता है कि सन् १९६०-६१ तक १२० मिलियन टन के स्थान पर १८१ मिलियन टन सामान ढोया जायगा अर्थात् आगामी पाँच वर्षों में रेलवे की माल ढोने की क्षमता में ५१ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए। इसी प्रकार यात्रियों के लिए भी कम-से-कम १५ प्रतिशत रेल-सेवा में वृद्धि होनी चाहिये। इतने पर भी यात्रियों की भीड़-भाड़ में कमी होने की कोई आशा नहीं है। उपर्युक्त वांछित वृद्धि के लिए सम्भवतः योजना के अन्तर्गत पूर्ण धनराशि रेलों को नहीं दी जा सकेगी और इस कारण रेल-वहन-शक्ति में वांछित वृद्धि से १५ प्रतिशत वृद्धि कम ही हो जायगी। इसी काल में ८५० मील नवीन लाइन डालनी है। सम्भव है इसके लिए भी पर्याप्त धनराशि न मिल सके।

रेलों के सामने दूसरी समस्या पुराने इन्जनों तथा डिब्बों का नवीनीकरण है। ऐसा अनुमान किया गया है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक ९२९२ इन्जिन, २६६०४९ माल-डिब्बे तथा २३७७९ यात्री-डिब्बे क्रियाशील होंगे। उनमें से ३२ प्रतिशत इन्जिन, १९ प्रतिशत माल-डिब्बे तथा २६ प्रतिशत यात्री-डिब्बे बदलने योग्य हो जायंगे। द्वितीय योजना के अन्तर्गत २२५८ इन्जिन, १०७२४७ माल-डिब्बे, तथा ११३६४ यात्री-डिब्बे प्राप्त हो सकेंगे, जिनमें से १३५२ इन्जिन, २३८५२ माल के डिब्बे तथा ६४४७ यात्री-डिब्बे, पुरानी सामग्री के बदलने में काम में आवेंगे। इस प्रकार बदलने वाले इन्जिनों, माल-डिब्बों, व यात्री-डिब्बों के प्रतिशत में क्रमशः १३·९, १०·५, तथा १५·५ कमी हो जायगी। इसी अवधि में १३००० मील लम्बी बदलने योग्य रेलवे लाइन में से १६०० मील प्रतिवर्ष के हिसाब से ८००० मील लम्बी लाइन का नवीनीकरण हो जायगा, इससे गाड़ियों की चाल अधिक तेज हो जायगी और रेलवे लाइन की कार्य-क्षमता अधिक बढ़ जायगी।

योजना के अन्तर्गत विद्युतीकरण तथा सिगनल-प्रणाली-सुधार की ओर भी प्रयत्न किये जावेंगे। १६०० मील लम्बी लाइन दोहरी की जावेगी। २६५ मील छोटी लाइन बड़ी लाइन में परिवर्तित की जावेगी। अतिरिक्त crossing stations, loop lines, extensions of loops तथा बहुत से yards को नवीन ढंग से बनाया जायगा। लगभग ८०० मील लम्बी लाइन का बिजलीकरण किया जायगा। १२९३ मील लम्बी लाइन पर डीज़ल के इन्जिन चलाये जाने का प्रयत्न किया जायगा। कार्य-क्षमता बढ़ाने के लिये स्वयं-चालित सिगनल प्रणाली का प्रारम्भ किया जायगा।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में यात्रियों को विशेषकर तृतीय श्रेणी के यात्रियों को यात्रा सम्बन्धी सुविधायें देने का प्रयत्न किया गया था, इस योजना के अन्तर्गत ये प्रयत्न जारी रहेंगे, तृतीय श्रेणी के यात्रियों के लिए पंखों, ठंडा जल, रात में सोने तथा स्थान सुरक्षित करने की सुविधायें कुछ सीमा तक तो दी जाने लगी हैं। भविष्य में इन सुविधाओं का और भी अधिक विस्तार किया जायगा। साथ-ही-साथ रेलवे

कर्मचारियों के कल्याण की ओर भी विशेष ध्यान दिया जायगा। योजना के अन्त तक रेल-विभाग में लगभग १२ लाख आदमी होंगे। इसी काल में लगभग २०००० क्वार्टर्स तथा ६००० मकान बनवाये जायँगे। १३ अस्पताल, ६५ दवाखाने आदि का भी प्रबन्ध किया जायगा। इन सब कार्यों को पूरा करने के लिए आन्तरिक साधनों के अतिरिक्त लगभग ४२५ करोड़ रुपयों के मूल्य की विदेशी मुद्रा तथा विदेशी स्टील की आवश्यकता पड़ेगी।

वर्तमान दशा

विगत वर्षों में भारतीय रेलों की आर्थिक दशा सन्तोषजनक रही है। सन् १९५३-५४ ई० में रेलों की आय २७२ करोड़ रुपयों की थी जब कि कुल व्यय १९७'६३ करोड़ रुपयों का था। ३० करोड़ रुपया घिसावट फण्ड में जमा किया गया था। ३४'४३ करोड़ सामान्य आय में देने के पश्चात् रेलों को ३'१८ करोड़ रुपयों की बचत हुई। सन् १९५३-५४ के अन्त में भारतीय रेलों की आर्थिक दशा निम्न प्रकार से थी—

रिजर्व फण्ड १९३'६६ करोड़ रुपया
घिसावट फण्ड १०७'८६ करोड़ रुपया
रेवेन्यू रिजर्व फण्ड ३७'१८ करोड़ रुपया
विकास फण्ड १८'६२ करोड़ रुपया

इस वर्ष ५ नये रेल-मार्गों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। चम्पा-कोबरा, गाँन्धीधाम-कण्डला, खण्डवा, हिन्गोली, आदि। पंजाब की नई राजधानी चण्डीगढ़ से विभिन्न रेल-मार्ग मिला दिये गये हैं। बून्दी-बरखेरा लाइन दोहरी कर दी गई है। युद्ध के समय उखाड़े गये ६ रेल-मार्ग फिर से ठीक कर दिये गये हैं। रेल-सामग्री की पूर्ति में भी इस वर्ष सन्तोषजनक कार्य हुआ है। ९६ नये इन्जिन विभिन्न लाइनों पर काम करने लगे हैं। इनमें से ५८ चितरंजन कारखाने में बनाये गये, १२ टेलको में तथा २५ इंजिन विदेशों से मँगाये गये थे। ५५४ सवारी गाड़ियों के डिब्बे और जोड़े गये, जिनमें से ७७ को छोड़कर शेष देश में ही बने। इसी प्रकार ५४७६ मालगाड़ी के डिब्बे और जोड़े गये, इनमें ४८१७ देश में निर्मित किये गये और ६५९ विदेशों से मँगाये गये थे।

सवारी गाड़ियों में भीड़ कम करने के भी पर्याप्त प्रयत्न किये जा रहे हैं। यद्यपि यात्रियों की संख्या में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, फिर भी इस वर्ष १९० नवीन गाड़ियाँ चलाई गईं तथा १२६ गाड़ियों का मार्ग बढ़ाया गया। सीटों को अधिक चौड़ा करने तथा यात्रियों को अधिक-से-अधिक सुविधायें देने के प्रयत्न बराबर किये जा रहे हैं। पंखों, रोशनी, पाखानों, मुसाफिर खानों, पीने का पानी, तथा प्लेटफार्मों आदि का अच्छा प्रबंध किया जा रहा है।

इस वर्ष यात्रियों को भाड़े में भी कुछ रियायतें प्रदान की गईं। १५०० मील से अधिक यात्रा करने वाले यात्रियों को तीन-चौथाई किराये पर टिकट बेचने की रियायत दी गई। विद्यार्थियों को पर्यटन के लिए तथा मासिक टिकटों का भाड़ा घटाया गया। इसी प्रकार पहाड़ी स्वास्थ्यप्रद स्थानों को आने-जाने के लिए भी रियायती टिकटों की सुविधा दी गई। कुछ स्टेशनों से श्रीनगर तक रेल-सड़क तथा रेल-वायु-मार्ग द्वारा यात्रा करने के लिए वापसी टिकट १$\frac{1}{3}$ किराये पर वितरित किये गये। इसके अतिरिक्त जनरल मैनेजरों को अपने-अपने क्षेत्रों में यथोचित सस्ते टिकट वितरण करने के अधिकार दिये गये।

इस वर्ष रेलवे-प्रबन्ध तथा रेल-कर्मचारियों में अच्छे सम्बन्ध रहे। इण्डियन नेशनल रेलवे वर्कर्स फैडरेशन तथा आल इण्डिया रेलवे-मैन फैडरेशन दोनों में पारस्परिक समझौता हो गया और इन दोनों के स्थान पर नेशनल फैडरेशन आफ इण्डियन रेलवे-मैन नामक संस्था की स्थापना हुई। रेलवे कर्मचारियों की औषधि, मकान, शिक्षा आदि विभिन्न सुविधाओं पर १०·०५ करोड़ रु० व्यय किया गया।

Q. 45. After a certain stage it is not possible to cope with increased traffic on railways without increasing land.

यदि बढ़ते हुए ट्रैफिक को स्थानान्तर करने के लिए भूमि के क्षेत्र को न बढ़ाया जाय, केवल डिब्बों तथा गाड़ियों की ही अधिकता की जाय तो एक ऐसी अवस्था आ सकती है कि ट्रैफिक का बढ़ाना कठिन हो जाय। क्योंकि किसी एक लाइन पर यातायात-वहन की एक सीमा होती है। इससे अधिक यदि यातायात-वहन की आवश्यकता पड़े तो कुछ-न-कुछ नवीन मार्गों का बनाना आवश्यक हो जाता है। यह हो सकता है कि यातायात की वर्तमान प्रणाली में यदि कुछ सुधार कर दिया जाय, भाप-शक्ति की जगह यदि बिजली का प्रयोग किया जाय तो कुछ-न-कुछ अधिक यातायात-वहन हो सकता है। इस प्रकार से कुछ समय तक अधिक व्यक्तियों तथा वस्तुओं का स्थानान्तर किया जा सकता है। लेकिन कुछ समय बाद इस प्रकार से ही लागत-व्यय अधिक हो सकता है, और ट्रैफिक की प्रत्येक इकाई के स्थानान्तर करने में पहिले से अधिक व्यय होने लगता है, तथा कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि रेलवे-कम्पनी को इसके लिए सोचना पड़े, कि अधिक यातायात-वहन के लिए उसी लाइन पर अधिक व्यय किया जाय, अथवा और जमीन घेर कर मार्ग चौड़ा किया जाय। इसमें व्यय का ध्यान करना पड़ेगा। रेलवे-कम्पनी वही प्रणाली अपनायेगी जिसमें उसे व्यय कम करना पड़े। जब एक रेलवे-लाइन अपनी अधिकतम शक्ति के अनुसार यातायात-वहन करने लगती है और फिर इससे अधिक बढ़ाने की आवश्यकता हो तो इसका व्यय अनुपातिक दृष्टि से बहुत अधिक हो जाता है। तब कुछ समय तो विभिन्न कम्पनियाँ एक दूसरे से समझौता करके इस समस्या का हल निकाल लेती हैं। उदाहरण के लिए यदि अ कम्पनी को अधिक कार्य मिलता है जो उसकी वहन शक्ति से अधिक है और ब कम्पनी को कम काम मिलता है तो इन दोनों में इसका समझौता हो सकता है कि अ अपने ट्रैफिक का कुछ भाग ब को दे दे। यदि दोनों कम्पनियों को कार्य अधिक मिल रहा है तब भी अधिक तेज गाड़ियाँ चला कर तथा और प्रकार से प्रबन्ध को अधिक कार्य-क्षम बनाकर काम निकाला जा सकता है।

लेकिन इस प्रकार के उपायों की भी एक सीमा है। ट्रैफिक की वृद्धि के साथ एक ऐसा समय आ सकता है जब अधिक बड़े स्टेशन बनाने पड़ें, मालगोदाम अधिक बड़े बनाने पड़ें, रेलवे-लाइनें दूसरी बनानी पड़ें। यह सब तभी हो सकता है जब इन सब कामों के लिए अतिरिक्त भूमि का प्रयोग किया जाय। और उद्योगों के समान रेलवे उद्योग में भी भूमि का अधिक महत्व है। यदि रेलों के संचालन-विधि में उन्नति की जाय तो अधिक भूमि की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि बिना अतिरिक्त भूमि के रेलवे-संचालन में उचित सुधार नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए यदि किसी रेलवे-लाइन पर कुछ रेलगाड़ियों की चाल बढ़ाना है तो विभिन्न स्टेशनों पर अधिक साइडिंग आदि का प्रबन्ध करने के लिए कुछ अतिरिक्त लाइनें डालनी पड़ेंगी। नई साइडिंग का भी प्रबन्ध करना पड़ेगा। इन सब उपायों के लिए अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता है। भारत की रेलें इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। प्रारम्भ में मुख्य

रेलवे-लाइन पर भी एक ही ट्रैक से काम चल जाया करता था, अर्थात् एक लाइन में ही गाड़ियों का आना-जाना सुविधा से होता रहता था और प्रथम महायुद्ध तक इसी प्रकार से काम चलता रहा। इसके बाद यातायात सुविधाओं व साधनों की माँग इतनी बढ़ती गई कि एक ही लाइन द्वारा अधिक गाड़ियाँ चलाना कठिन पड़ा। इसलिए रेलवे-कम्पनियों को कहीं-कहीं पर दो लाइनें डालनी पड़ीं। इसके लिए अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता हुई। कहीं-कहीं स्टेशन व मालगोदाम भी बड़े-बड़े बनाने पड़े और इसके लिए भी अधिक भूमि की आवश्यकता पड़ी। द्वितीय महायुद्ध के बाद रेलों पर भीड़ का प्रश्न और भी जटिल पड़ गया। यात्रियों तथा वस्तुओं का स्थानान्तर इतनी अधिक संख्या व परिमाण में होने लगा कि करीब १०० साल से काम में लाये जाने वाले स्टेशन, प्लेटफार्म, मुसाफिरखाने आदि छोटे पड़ गये, और इसलिए अब पहिले की अपेक्षा स्टेशन, प्लेटफार्म, मुसाफिर खाने और भी बड़े-बड़े बनाये जा रहे हैं। इन सब के लिए अतिरिक्त भूमि की जरूरत होती हैं।

प्रत्येक उद्योग में प्रत्येक साधन की एक कार्य-क्षमता होती है। उसी कार्य-क्षमता के अनुसार प्रत्येक साधन से काम लिया जाता है। यदि क्षमता से अधिक काम लिया जाय, तो लागत-व्यय स्वयं बढ़ने लगता है। कभी-कभी तो एक सीमा से अधिक काम लेना असम्भव ही हो जाता हैं। ऐसे समय में फिर सम्बन्धित उत्पादन के साधन को ही बढ़ाना पड़ता है। यही बात रेलवे-उद्योगों में भूमि के लिए है। यदि, यातायात अधिक होता जाय तो उसकी पूर्ति के लिए पूँजी वृद्धि के साथ-ही-साथ भूमि वृद्धि की भी आवश्यकता हो ही जाती है। कुछ उद्योग ऐसे होते हैं जिनमें भूमि का प्रयोग मितव्ययिता से किया जा सकता है। कारखाने दुमंजिले-तिमंजिले बनाए जा सकते हैं। रेल-उद्योग में यह भी सम्भव नहीं। स्टेशन की कुछ इमारत को छोड़कर और इमारतें दुमंजिली भी नहीं बन सकतीं। रेल-उद्योग का सारा कार्य प्रायः भूमि की सतह पर ही हो सकता है। इसलिए यदि इस उद्योग का पैमाना बढ़ाया जाय तो अन्त में भूमि का बढ़ाया जाना आवश्यक है। हो सकता है कुछ समय तक बिना भूमि बढ़ाये काम चल जाय, परन्तु एक समय ऐसा आ जायगा, जब बिना भूमि बढ़ाये भी काम नहीं चल सकता। इसलिए यह कथन कि कभी-न-कभी बिना भूमि बढ़ाए हुए अधिक ट्रैफिक का प्रबन्ध करना असम्भव है, सत्य है।

Q. 46. Write brief notes on any four of the following—

(a) Tackling ticketless travel.
(b) More roads or railways.
(c) Fair return for railways.
(d) Zone system of passengers fare.
(e) Federal Railway authority in India.

(a) Tackling ticketless travel—

W. T. (without ticket) शब्द साधारण जनता में सामान्य रूप से प्रयोग किया जाता है, और अधिकांश लोग अपने को बिना टिकट यात्रा करने में गौरवान्वित अनुभव करते हैं। वास्तव में बिना टिकट यात्रा करने की प्रथा देश में बढ़ती चली जा रही है। स्वतन्त्रता-काल में इस प्रथा ने और भी उग्र रूप धारण कर लिया है। विशेषज्ञों के अनुसार बिना टिकट यात्रा करने वालों से देश की रेलों को लगभग ८ करोड़ रु० वार्षिक हानि उठानी पड़ती है। साधारण तौर पर बिना टिकट की यात्रा तीन कारणों से होती है। कुछ आदमियों के पास रु० तो होता है परन्तु उसे

वह यात्रा में व्यय नहीं करना चाहते। दूसरे प्रकार के वे यात्री होते हैं जिनके पास वास्तव में टिकट खरीदने को पैसा ही नहीं होता, और तीसरे प्रकार के वे यात्री होते हैं जिन पर पैसा होता है, टिकट खरीदना चाहते हैं परन्तु टिकट खिड़की पर अधिक भीड़ होने से खरीद नहीं पाते अथवा भीड़ से बचना भी चाहते हैं। वास्तव में बिना टिकट यात्रा करने के कारण बहुत से हो सकते हैं और इन सब का मूलाधार राष्ट्रीय नैतिक आचरण की कमी है। देशवासियों का नैतिक दृष्टि से ऐसा पतन हो गया है कि वे टिकट न लेकर चलने को अनैतिक न समझकर, उन्हें इसमें किसी प्रकार की धोखे वाली बात मालूम नहीं पड़ती। बहुत से लोगों से तो यह कहते हुए सुना गया है कि अब तो स्वराज्य हो गया है, देश हमारा, रेल हमारी, कर्मचारी हमारे, फिर टिकट क्यों लें। वे यह बात भूल जाते हैं कि उनका कथन तो सत्य है परन्तु उसके आधार पर भी टिकट न लेने की बात को उचित नहीं ठहराया जा सकता। रेलों पर जो कुछ पूंजी व्यय हो चुकी है उनके संचालन में जो कुछ व्यय करना पड़ता है वह सब धनराशि रेल-संचालकों को मिलनी चाहिये। यदि यात्री उसको नहीं देना चाहते तो उसका बोझ सारी जनता को कर के रूप में देना पड़ेगा चाहे वे यात्रा करें या न करें। यदि यह प्रथा अपनाई जाय तो यात्रा न करने वाली जनता के साथ घोर अन्याय होगा। इसलिए यात्रा करने वालों से ही रेलों के व्यय की पूर्ति की जानी चाहिए और बिना टिकट यात्रा करने की प्रथा को कड़ाई के साथ बन्द करना चाहिए। बिना टिकट विशेषकर विद्यार्थी, रेलवे-कर्मचारी उनके मित्र व सम्बन्धी और कुछ सफेदपोश प्राणी यात्रा किया करते हैं। इनको रोकना अति आवश्यक है। इनमें से विद्यार्थियों से तो रेलवे कर्मचारी विशेष कर डरते हैं इसलिए उन्हें बिना टिकट यात्रा करने का प्रोत्साहन मिलता है। या तो उनके साथ सामान्य नागरिकों के समान सख्ती होनी चाहिए और यदि सरकार उनको शिक्षा-प्राप्त करने के लिए यातायात सुविधाएँ देना चाहती है तो घर से कालिज तक के पास उन्हें बिल्कुल मुफ्त या कुछ रियायत से बना देने चाहिये, जिससे उनका बिना टिकट चलना नियम के अन्दर हो जाये। इसी प्रकार रेलवे-कर्मचारियों के साथ भी यही किया जा सकता है। उनके मित्रों और सम्बन्धियों को इस प्रकार की कोई सुविधा देने की आवश्यकता नहीं। उनके साथ तथा कथित सफेद पोश, सभ्य पुरुषों के साथ कड़ाई का व्यवहार किया जाना चाहिये। इसके लिए रेल-कर्मचारियों का ईमानदार होना आवश्यक है। इसके बाद स्टेशनों पर चेकिंग का कड़ा प्रबन्ध होना चाहिए। गाड़ियों में भी टिकट चेकरों की संख्या अधिक होनी चाहिये। मजिस्ट्रेट के बैंच का चलना लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस प्रथा का अधिक उपयोग किया जाना चाहिये। पुलिस विभाग को रेलवे-कर्मचारियों के साथ पूर्ण सहयोग से कार्य करना चाहिये।

(b) More Roads or more Railways :—

'अधिक रेलें अथवा अधिक सड़कें' इस वाक्यांश से यह प्रतीत होता है, मानों सड़कों और रेलों में प्रतिस्पर्धा स्वाभाविक है। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। ये दोनों के पूरक हैं और किसी देश में अधिक रेलों का विस्तार होना चाहिये या अधिक सड़कों का इसका निर्णय परिस्थितियाँ ही कर सकती हैं। यदि ट्रैफिक अत्यधिक है और उसका आना-जाना बहुत दूर तक होता है, ट्रैफिक कम कीमत का तथा भार स्वरूप है तो ऐसी परिस्थितियों में रेल-विकास ही अधिक हितकर होगा। इसके विपरीत ट्रैफिक कम है, दूरी भी कम है वस्तुएं शीघ्र बिगड़ने वाली भी हैं, ऐसी परिस्थिति में सड़क-यातायात विशेष हितकर है। पूँजी लागत की दृष्टि से सड़क यातायात ही अधिक सुगम है। जितना व्यय १०० मील रेल-यातायात बनाने में होता

है उतने व्यय से शायद सड़कों द्वारा कहीं अधिक दूर तक यातायात की सुविधा प्रदान की जा सकती है। सड़क-यातायात के और भी लाभ हैं। इनकी सेवा अधिक लचीली, प्रत्येक समय पर अपनी इच्छानुसार प्राप्त की जा सकती है। रेल के बारे में यह नहीं है। रेल की अपेक्षा सड़क-यातायात में अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिल जाता है। इसके विपरीत रेल-यातायात अन्त में कम खर्चीला होता है। रेल में एक बार जो पूँजी लग जाती है वह तो अधिक से अधिक होती है। परन्तु उस के बाद दैनिक व्यय बहुत कम रह जाता है। वास्तव में यातायात की सुविधाओं का देश में इस प्रकार संगठन किया जाय कि यातायात का हर प्रकार एक दूसरे का पूरक हो। ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क-यातायात का विकास अधिक होना चाहिये। शहरी क्षेत्रों में विशेष दूर-दूर के बड़े शहरों को बन्दरगाहों से मिलाने को रेल-यातायात की सुविधाएं होनी चाहिए। इस प्रकाए की संयुक्त यातायात प्रणाली से ही देश का अधिक लाभ हो सकता है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है यद्यपि और देशों की तुलना में यहां रेलों का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है फिर भी सामान्य रूप से रेलों की अपेक्षा सड़कें ही देश में यातायात विकास के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इसलिए यहाँ पर दोनों प्रकार के यातायात का विकास वांछनीय है फिर भी अधिक सड़कों की ओर ही ध्यान विशेष रूप से देना चाहिए।

(c) Fair Return for Railways—

रेलवे भाड़ा निर्धारण की समस्या बहुत कठिन है। प्रबन्धक को सदैव कार्य करने को बाध्य होना पड़ता है। किसी फ़ैक्टरी आदि चलाने का सारा भार उसी पर रहता है। उसे इसका ध्यान रखना पड़ता है कि वह किसी वस्तु या व्यक्ति से कितना रु० ले जिससे कि रेलों को किसी प्रकार हानि न हो सके। एकाधिकारी उत्पादक अधिक-से-अधिक लाभ चाहता है, चाहे उसमें रेलवे भोक्ताओं का लाभ न हो। रेलवे जनता की उपयोगी वस्तुएँ हैं। इनके ऊपर देश का आर्थिक विकास निर्भर होता है। इसलिए रेलों को इतना अधिक भाड़ा लेने को स्वतन्त्र न किया जाय कि वह अपने मनमाने ढंग से भाड़ा बढ़ा सकें। रेलवे एक ऐसा उद्योग है कि जनता के हित में जाता है। इसके ऊपर देश का आर्थिक विकास निर्भर होता है। इसलिए यह केवल लाभ के उद्देश्य से तो चलाया नही जा सकता, किन्तु फिर भी ऐसा भी नहीं हो सकता कि इससे लाभ प्राप्त न हो सके। सामान्य लाभार्जन करना भीं प्रत्येक उद्योग का उद्देश्य होता है। यह बात रेल के सम्वन्ध में भी सत्य है। हाँ, अधिकाधिक लाभ पाने का उद्देश्य रेलों का नहीं होना चाहिये और यदि यात्रियों व व्यापारियों की शक्ति के अनुसार भाड़ा लेते हुए अधिक लाभ होता रहे तो कोई बुरी बात भी नहीं, विशेषकर राष्ट्रीय रेलों के लिए। क्योंकि राष्ट्रीय रेलों द्वारा अर्जित लाभ अन्त में जनता की भलाई में ही व्यय कर दिया जाता है। इन सब दृष्टियों से यह आवश्यक है कि रेलों को उनकी सेवा का उचित प्रतिफल मिलता रहे। उचित प्रतिफल निर्धारण के लिये अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है। सबसे पहिले तो, रेलों को रेल-संचालन में कितना व्यय करना पड़ता है, उनमें लगी हुई पूँजी पर कितना व्याज देना पड़ता है। घिसावट तोड़-फोड़ नव-निर्माण में कितना व्यय होता है। विशेष परिस्थितियों के लिए कुछ धनराशि संग्रहीत रखने की आवश्यकता है। फिर यथासम्भव लाभ भी अधिक-से-अधिक होता रहे। इस प्रकार पूर्ति पक्ष में इन सब बातों का ध्यान रखना पड़ता है और यह सब धनराशि रेल-सेवा उपभोक्ताओं से ही प्राप्त की जा सकती है। इसलिए यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति किस प्रकार की है और रेल-सेवा उपभोक्ताओं से इसी प्रकार से भाग

लिया जाता है कि अधिक-से-अधिक उपभोक्ता उस भाड़े पर रेल-सेवा का उपभोग कर सकें। इसके लिये विभेदात्मक नीति का पालन करना अनिवार्य हो जाता है। भारत में १९४९ के रेलवे कमीशन के अनुसार भारतीय रेलों को सामान्य बजट में ४ प्रतिशत लगी हुई पूँजी पर देना पड़ता है। इसलिये कम-से-कम और सब सामान्य व्यय करने के बाद रेलों को इतनी बचत तो होनी ही चाहिये जिससे वे अपने हिस्सेदार सरकार के उत्तरदायित्व को पूरा कर सकें।

(d) Zone system of passenger fare.

यात्रियों से भाड़ा लेने की इस प्रथा के अनुसार दूरी की नाप मीलों के अनुसार नहीं की जाती। वरन् किसी व्यक्ति या वस्तु के लिये भाड़ा एक क्षेत्र के अन्दर निश्चित होता है और इस क्षेत्र में चाहे रेल-सेवा का उपयोग कम दूरी के लिये किया जाय चाहे अधिक दूरी के लिये भाड़ा वही देना पड़ता है। इस प्रकार इस प्रणाली के अन्तर्गत दूरी का विशेष ध्यान नहीं रक्खा जाता। भाड़ा निर्धारण की इस प्रथा के प्रनुसार दूर जाने वाले यात्रियों को लाभ रहता है फिर भी यदि किसी यात्री को एक से अधिक क्षेत्रों में यात्रा करनी हो तो इसका प्रभाव कभी-कभी ठीक नहीं पड़ता है। भारत में रेलवे-शताब्दी के अवसर पर इसी प्रथा को लागू किया गया था। इसके अनुसार देश उत्तरी दक्षिणी, पश्चिमी, पूर्वी, पूर्वीय-पश्चिमी तथा केन्द्रीय जोनो में विभाजित किया गया था। और कोई भी यात्री १५ दिन तक एक जोन की सीमा के अन्दर ३०) के टिकट में बराबर यात्रा कर सकता था। इस प्रथा से यात्रियों को विशेष कर घूमने वालों को अधिक लाभ होता है।

(e) Federal Railway authority in India—

सन् १९३५ ई० के भारतीय विधान एक्ट के अनुसार रेलों की सबसे उच्च सत्ता फेडरल रेलवे-अथोरिटी होनी चाहिए जो रेलवे-बोर्ड के स्थान पर काम करेगी। इस संस्था को राज्य की सारी रेलों पर पूर्ण अधिकार होगा। और यदि आवश्यक हो तो यातायात की और भी सुविधाओं पर यह नियन्त्रण रख सकती है और उनका प्रबन्ध भी कर सकती है। अपने कर्त्तव्यों के पालन में, सरकार की नीति के अनुसार ही यह कार्य करेगी और अपनी नीति के बारे में संघीय सरकार इस संस्था को बार-बार सूचित करती रहेगी। परन्तु साथ-ही-साथ यह व्यापारिक नीति को भी नहीं छोड़ेगी और इसकी सारी नीति कृषि, उद्योग, व्यापार तथा साधारण जनता के हित में ही होगी। इस संस्था के कम-से-कम $\frac{3}{7}$ सदस्यों को केन्द्रीय सरकार का सर्वोच्च अधिकारी मनोनीत करेगा। और यह संस्था एक निधि स्थापित करेगी और उसका नियन्त्रण करेगी और इस निधि में वह सारा रुपया जमा किया जायगा कि जो इस के कार्य करने के लिये चाहिए अथवा जो रु० इसे और भी व्यय करने के सम्बन्ध में मिले। १९३५ के एक्ट की फेडरल-रेलवे-अथोरिटी सम्बन्धी धारा का जनता ने स्वागत नहीं किया और साथ-ही-साथ इस संस्था का स्थापित करना भारत में संघीय शासन के स्थापित होने के ऊपर निर्भर था। न तो संघीय शासन स्थापित हुआ और न यह संस्था। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से इस संस्था का कोई महत्व नहीं है।

CHAPTER IX

Road Transport.

Roads are the veins and arteries of a country through which channels every improvement circulates. Roads have a number of characteristics, which are not possessed by railways. Roads can be used by various means of transport and by different types of vehicles. Construction and maintenance of roads is cheaper than those of railways. In most cases roads and road vehicles are owned by separate parties, in the case of railways, both tracks and rolling stocks are owned by the same party. In India, in past times, kings and emperors thought it their duty to construct roads. The country, however, entered upon a new epoch of road making during the time of Lord Dalhousie, who initiated a more vigorous policy, and for this purpose over and above the Central Public Works Department there were created in 1855 similar departments in each province. New roads continued to be built, still our road system even before the advent of motor transport was altogether insufficient for for her needs, and even insufficient roads perilous to the railways, in due course of time, the latter, consequently, had to adopt counter measures to meet road competition. To study this problem a small committee of two officers, K. G. Michell, and Mr. Kirkners was appointed. Their report suggested a better control of motor transport as one of the methods of making this competion fair. To tackle the problem of unfair competion, a Transport Advisory Council was formed in 1935. For the construction of new roads and for the maintenance of the old ones a Central Road Development Fund had already been created in 1930. During the Second World War, road construction activities increased.

In 1943, the Government of India convened a meeting of provincial chief engineers to consider ways and means of road development in future. The conference decided upon a twenty year road plan known as the Nagpur Plan. According to this plan, roads are classified into National High ways, Provincial High ways, major district roads, minor district road and village roads. A scheme has been prepared, under the plan, to construct 4 lakh miles of roads at an estimates cost Rs. of 448 crores. In April 1947, a five year road development plan was started. The Central Government also undertook the responsibility of constructing national highways. In september 1950, a Central Road Research Institute was established to to co-ordinate the activities of road boards located at Madras, Lucknow, Calcutta and Patna.

At the beginning of the first Five year Plan India had 97000 miles of metalled roads and about 147000 miles of unmetalled roads.

By the end of the first plan about one-third of the target set in the Nagpur plan may be said to have been achieved, and at the end of the second plan about two-third of the target set in the same plan is expected to be realized.

With the development of motor transport, the regulation of motor traffic becomes necessary. The motor vehicles Act of 1939 supersedes the earlier Act of 1914, which was found inadequate The act imposed a number of restrictions regarding speed of vehicles and working time of drivers.

The development of roads is financed mostly by the Central Government through the State, local governments including village Panchayat and the people themselves through Shramdan and Sampatidan movements also render necessary financial help as circumstances permits. Some of the sources of road Finance are motor vehicle tax, Petrol tax and sales tax on motor spirit. The motor vehicles Taxation Enquiry Committee in 1950 had made a number of recommendations in this respect

To meet the needs of the people for motor vehicles, an Automobile industry is necessary Previously motors were manufactured in India by assembling, the imported parts, but now the Hindustan motors limited has the complete equipment for manufacturing processes to undertake the manufacture of complete cars.

During recent years. there had been a great deal of controversy on the question of nationalisation of transport, including road transport Those who were against nationalisation maintained that nationalisation would kill private enterprise and incentive to technical research and inventions, would create bitterness between the Government and the employees. It would mean a great deal of capital expenditure to the Government. Compensation to the private owners will have to be paid. It would cause incon eniences to the public. Those who favoured nationalisation argued that nationalisation would mean more efficiency, uniform and fixed rates and improved conditions of work of bus operators. Undeveloped tracts of the country could be developed. Irregularities committed by the private owners would be stopped. Profits could be utilised for the general benefits of the public. Greater co-operation and co-ordination of different types of transport would be possible. However the controversy has been hushed up, as the Nationalisation of transport has been an accomplished fact. Various state governments have nationalised road transport. The U. P. Government also nationalised road transport in 1947. The scheme has made a considerable headway. The U. P. Government Roadways in the very beginning showed a net earning of Rs. 20 lakhs.

The planning Commission has asked the State Governments to pursue the policy of nationalizing road transport with due caution and in gradual stages.

In a letter to all State Governments, the Commission stated that nationalization of road transport was not accorded high priority in the first Five-Year Plan, since it was considered that the bulk of the

resources of State Government should be devoted to other purposes, as for example, development of agricultural production, irrigation and power and roads. This basic policy regarding road transport development under the Plan was again underlined last year when the Commission requested all State Governments to review their present licensing policies which in several cases appeared to be severely hampering the growth of private road transport.

The Commission has expressed its concern at the fact that most State Governments have continued to follow restrictive licensing policies. Some have also sent up new and ambitious schemes for expansion of their nationalized services for which financial assistance has been sought from the Central Government. Instances have also come to the notice of the Commission where the State Governments have spent from their own resources large funds on nationalization programmes not included in the Plan, thus diverting funds from other urgent schemes which were provided for in the Plan.

In the present context of deficit financing, a special responsibility devolves on the Central and State Governments not to divert funds to schemes outside the Plan, more particularly to schemes for which, with proper encouragement, considerable investment would be forthcoming from the private sector. It is obvious that the continuance of the restrictive licensing policies in road transport undermines the confidence of private operators who are thus discouraged from expanding their business. Given a reasonable assurance of security of tenure they would be prepared to make appreciable investments.

There is much less justification for following these restrictive policies in the field of goods services where most State Governments cannot envisage nationalization in the near future owing to the need for funds in other fields.

The Planning Commission has reviewed the policy regarding road transport development under the Five-Year Plan and in consultation with the Central Ministry of Transport has decided that the following principles should be followed regarding road development during the next few years.

Goods Services—

(i) Schemes for nationalization of road freight services will not be considered for inclusion in the Plan until 1961, i. e., the end of the second Five-Year Plan.

(ii) Permits should be granted freely for periods of not less than three years in accordance with the provisions of the Motor Vehicles Act, 1939; and

(iii) A special incentive should be given to viable units by granting them permits for a maximum period of five years under the provision of the Motor Vehicles Act.

Passenger Services –

(i) State Governments desiring to nationalize road passenger services should prepare phased programme for consideration by the Planning Commission for inclusion in the Plan, defining clearly the

areas of proposed nationalization up till 1960-61 ; and these will be considered provided ii and (iii) are accepted by the State Government.

(ii) In the areas that would be left outside the approved nationalized schemes permits should be granted freely for periods of not less than three years in accordance with the provisions of the Motor Vehicles Act, 1939.

(iii Within the areas which are included in the approved nationalization schemes, permits should be granted for the longest period permissible under the expansion schedule, but within the maximum limit set by the Motor Vehicle Act

(iv) Where Government participation is contemplated, the setting up of a tripartite organization in which State Governments, Railways and Private Operators will participate should be favoured.

(v) In areas to be left entirely to private operators, special encouragement should be given to the formation of viable units.

It is possible that problems may arise in respect of road transport in large cities and hilly areas which will require special treatment. The Planning Commission will be prepared to consider such schemes on their merits.

The Commission has requested all State Governments to review their nationalization schemes with a view to prepare programme on the lines indicated by the Commission for consideration for inclusion in the second Five-Year Plan.

Q. 47. Discuss the advantages and limitations of road transport (A.U. 1946)

सड़कों का महत्व—

यातायात के साधनों में सड़कें अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारत जैसे विशाल तथा धनहीन देश के लिए तो सड़कों का विकास अनिवार्य है। प्राचीन समय में भी इस देश में सड़कें यातायात का मुख्य साधन थीं। बड़े-बड़े राजा तथा बादशाह सड़कें बनवाने, उनके किनारे पेड़ लगवाने, स्थान-स्थान पर कुआ खुदाने, सराय बनवाने आदि में गौरव समझते थे। प्राचीन भारत के राष्ट्रीय व्यापार में भी सड़कें अपना महत्व रखती थीं। आधुनिक काल में भी यद्यपि आकाश-मार्ग, रेल-मार्ग तथा जल-मार्ग का प्रयोग किया जा रहा है, परन्तु सड़कों का महत्व अब भी कम नहीं हुआ है। यद्यपि भारत में क्षेत्र तथा क्षेत्र-विस्तार एवं जनसंख्या के अनुपात में अच्छी सड़कें बहुत कम हैं, फिर भी जो कुछ हैं वे आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। ग्रामीण क्षेत्र में तो सड़कें ही बहुधा यातायात में सहायक होती हैं। और इस देश में पूर्ण आर्थिक विकास के लिए सड़कों का विकास अनिवार्य है। यहां पर आकाश-मार्ग का प्रयोग सार्वजनिक रूप से नहीं किया जा सकता और न रेलें ही सब गाँव को सम्बन्धित कर सकती हैं। ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए और गाँवों को आपस में तथा शहरों से जोड़ने के लिये, सड़कों का ही सहारा लेना पड़ेगा। सड़कें विशेषकर कृषि तथा घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए बहुत बड़ी मात्रा में सहायक हो सकती हैं। सड़कों के विकास से कृषिभूमि की मात्रा बढ़ाई जा सकती

है । देश में अब भी बहुत-सी ऐसी भूमि है जिस पर सड़कों के अभाव से अच्छी प्रकार खेती नहीं हो सकती, क्योंकि वहाँ पर कृषि सम्बन्धी पदार्थों का ले जाया जाना कठिन है । सड़कों के विकास से विस्तृत कृषि तो संभव है ही साथ-ही सड़कों की सहायता से गहन कृषि अधिक सफलता के साथ की जा सकती है । अच्छे खादों, बीजों, कृषि-यन्त्रों तथा अन्य आवश्यक पदार्थों को सरलता से सस्ते मूल्य पर हर गाँव में सड़कों के द्वारा ही पहुँचाया जा सकता है । इससे भूमि की उत्पादन-शक्ति बढ़ेगी और हमारी खाद्य-समस्या बहुत अंश तक हल हो जायगी । सड़कों के विकास के द्वारा कृषि-प्रणाली तथा कृषि-प्रकारों में पर्याप्त परिवर्तन किया जा सकता है । खाद्यान्न के स्थान पर बिकने वाली फसलें अधिक उगायी जा सकती है, जिससे हमारे कृषकों की आय अधिक होने लगेगी और उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो जायगा । सड़कों के विकास से गाँव वालों को शहरी वस्तुएँ भी आसानी से प्राप्त होने लगेगी और इससे भी उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो जायगा । सड़कों के विकास से कृषि-पदार्थों की बिक्री पर भी अच्छा प्रभाव पड़ेगा । यदि सड़कों का विकास नहीं होता है तो गाँव से विभिन्न कृषि-पदार्थों का शहरों तक आना कठिन हो जाता है । साथ-ही-साथ यातायात का व्यय भी अधिक हो जाता है । इसके विपरीत यदि सड़कें पूर्णरूपेण विकसित हैं तो यह कठिनाई नहीं रहती । सड़कों के विकास से वैलगाड़ी, मोटर तथा ट्रक के स्वामियों को अधिक कार्य मिलने लगता है, उनकी आय बढ़ जाती है और इससे उनका भी जीवन-स्तर ऊँचा हो जाता है । यदि ग्रामीण क्षेत्र में सड़कें पर्याप्त मात्रा में हो जावें तो बहुत से किसान अपनी बैल गाड़ियों द्वारा कुछ अतिरिक्त आमदनी कमा सकते हैं । सड़कें कृषि, छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे तथा ग्रामीण क्षेत्र के विकास में सहायक ही नहीं होतीं वरन् वे बड़े-बड़े उद्योगों के विकास में भी सहायता करती हैं । उच्चकोटि का औद्योगिक विकास सड़कों के द्वारा ही होता है । उद्योग-धन्धों के विकेद्रीकरण के लिए उपयुक्त वातावरण उपस्थित करना सड़कों का ही काम है । सड़कें और सड़कों पर चलने वाली सवारियाँ, छोटे व कुटीर-उद्योगों के लिए विशेष उपयोगी हैं । बड़े-बड़े उद्योग भी सड़कों की सहायता से शीघ्र पनपते हैं । सड़कों के विकास द्वारा उद्योग-धन्धों को अपने उत्पादन कार्य और परिवहन में ही सुविधाएँ नहीं मिलती वरन् अनेक ऐसे सहायक साधन उपलब्ध हो जाते हैं जो उनकी उत्तरोत्तर वृद्धि और विकास के लिए उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं । सड़कों से और भी अनेक आर्थिक लाभ होते हैं । अकाल पीड़ितों की रक्षा करना, अकालों के भयावह प्रभाव को कम करने में सड़कों का महत्वपूर्ण स्थान है । बेकारी दूर करने में भी सड़कों का सहारा लिया जा सकता है । संकट काल में नई-नई सड़कों का निर्माण करके बेकार मनुष्यों को कार्य दिलाया जा सकता है । सड़क-निर्माण समाज की प्रारम्भिक आवश्यकता की पूर्ति करता है । सड़कों से बिजली और टेलीफोन के तारों तथा पानी के नलों के लिये आवश्यक मार्ग मिलता है । व्यापारिक विस्तार, बैंकों की व्यवस्था तथा बीमा के विकास के लिये भी सड़कों का महत्व बहुत अधिक है । यदि सड़कें अच्छी हैं तो माल ढोने वालों को कम व्यय करना पड़ता है । अच्छी सड़कों के कारण माल ढोने वालों के लिए संचालन-व्यय में ही कमी नही हो जाती वरन उनका बहुत-सा समय बच जाता है ।

Q. 48. "Road transport possesses the great advantages of flexibility as the roads lead everywhere."—Consider this statement, and give the advantages and limitations of road transport.

(A.U. 1952)

Q. 49. Marketing of agricultural produce in India suffers from many disabilities. To what extent would the provision of efficient rural motor transport secure better markets to the producers and eliminate some of these disabilities.

मोटर यातायात

यान्त्रिक यातायात के साधनों मे आधुनिक काल में मोटर यातायात सबसे उत्तम समझा जाता है। अधिकांश यान्त्रिक यातायात के साधन विशेष कर रेल-मार्ग और जल-मार्ग को प्रयोग करने वाले यान्त्रिक साधन निश्चित रास्ते से ही आते-जाते है। रेलगाड़ियों के लिये रेल-मार्ग निश्चित होता है। जलयानों के लिये भी नदियों अथवा नहरों द्वारा जल-मार्ग निश्चित ही रहता है। मोटर-यातायात के लिये यह बात नहीं है। यद्यपि मोटर के लिये भी अच्छी सड़कों की आवश्यकता है परन्तु विशेष परिस्थितियों में मामूली व कच्ची सड़कों पर भी मोटरें आ जा सकती हैं। मोटर-यातायात में रेल-यातायात की अपेक्षा कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। इसके द्वारा कृषि-उपज, दूध, साग-भाजी, कच्चे फल, आदि शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाई जा सकती है। विशेषता यह है कि ये वस्तुएँ उपज-स्थान से ही मोटर में भर दी जाती है और सीधी बाजार तक पहुँचा दी जाती है। यह बात और यान्त्रिक-यातायात के साधनों में नहीं पाई जाती है। इसके साथ-ही-साथ मोटर द्वारा थोड़ा माल लादा जाता है जो एक या दो व्यक्तियों का ही होता है; उसकी देख-भाल भी मोटर ड्राइवर तथा एक या दो अन्य कर्मचारी, रास्ते में भली-भाँति कर सकते है। इसलिये इन पर लादे जाने वाले माल की चैकिंग की समस्या विशेष कठिन नही होती। माल किसी भी समय कितने भी परिमाण में और किसी भी स्थान से लादा जा सकता है। एक गाड़ी से दूसरी गाड़ी में माल लादने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसके विपरीत रेलों में जंक्शनों आदि पर बहुत देर लग जाती है। मोटर के द्वारा भेजे जाने वाले माल के सम्बन्ध में उपर्युक्त किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होती।

इसी प्रकार मोटर-यातायात से यात्रियों को भी सुविधा होती है। यात्री थोड़ी-थोड़ी दूर से मोटर बस द्वारा लिये जा सकते हैं। बड़े-बड़े शहरों में चौराहों तथा अन्य सुविधाजनक स्थानों से यात्रियों को बैठाला जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र के लिये भी मोटर-यातायात सुगम तथा सुविधाजनक है। इससे गाँव का सम्बन्ध शहरों से अधिक दृढ़ हो जाता है, जिससे ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक व सामाजिक उन्नति में पर्याप्त सहायता मिलती है। मोटर-यातायात शहरों की जनसंख्या के घनत्व को कम करने में भी सहायक हो सकते है यदि विभिन्न शहरों का सम्बन्ध आस-पास के गाँवों से मोटर-यातायात के द्वारा स्थापित कर दिया जाय।

मोटर-यातायात के संचालन में विशेष कर व्यक्तियों को अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होती। सड़कें सरकार के द्वारा निर्मित की जाती हैं। मोटर-मालिकों को केवल मोटरों में पूँजी लगानी पड़ती है। इसी प्रकार घिसावट, टूट-फूट, तेल आदि संचालन-व्यय मोटर में रेल की अपेक्षा कम होता है। इन उपर्युक्त कारणों से थोड़ी दूरी प्रायः ५०, ६० मील तक रेलवे की अपेक्षा मोटर बसें ही अधिक उपयुक्त यातायात के साधन होती हैं।

मोटर-यातायात की कुछ सीमाएँ भी है। ऊंचे-नीचे स्थानों में, पहाड़ियों, घने जंगलों में मोटर का प्रयोग लाभदायक नहीं हो सकता। इसी प्रकार जहाँ बहुत अधिक ट्रैफिक होता है, वहाँ भी मोटर-यातायात पूर्ण रूप से सफल नहीं होता। इसके

अतिरिक्त भारतवर्ष जैसे देश के लिये मोटर-यातायात के संचालन में कुछ और भी कठिनाइयाँ हैं। हमारे देश में अभी तक मोटरों का बनना आवश्यकतानुसार प्रारम्भ नहीं हुआ है। विदेशी मोटरों का ही प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर पैट्रोल की भी कमी है, इस कारण से भी मोटर-यातायात विस्तृत रूप से नहीं चलाया जा सकता। यद्यपि धीरे-धीरे पैट्रोल के स्थान पर अन्य पदार्थों के प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें पर्याप्त सफलता मिल गई है। यहाँ पर सबसे बड़ी कठिनाई सड़कों की है। देश लम्बा-चौड़ा है और साथ-ही-साथ निर्धन भी है। जगह-जगह नदियों तथा नालों का बहाव है। वर्षा ऋतु में अधिकांश क्षेत्र पानी से भर जाता है। कुछ वर्षों से बाढ़ों की भयंकरता भी बढ़ती चली जा रही है। इन सब कारणों से इस देश में उपयुक्त सड़कों की बहुत कमी है और जब तक अच्छी सड़कें नहीं होंगी, मोटर-यातायात सफल नहीं हो सकता। केन्द्रीय व राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत सड़कों के निर्माण-कार्य में लगी हुई हैं।

मोटर यातायात की आय—मोटर-यातायात में भाड़ा, लागत व्यय के आधार पर निर्धारित किया जाता है और इसमें इतनी आय होनी चाहिए जिससे संचालन व्यय के अतिरिक्त घिसावट-व्यय, तथा लगी हुई पूँजी पर कुछ ब्याज के रूप में भी प्राप्त होता रहे। मोटर-यातायात का भाड़ा निर्धारण करने में रेल-भाड़ा निर्धारण से भिन्न सिद्धांत लागू होता है। मोटर-यातायात प्रतिस्पर्धात्मक है। रेलवे-यातायात में एकाधिकरण पाया जाता है। मोटर गाड़ियाँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र पर भेजी जा सकती हैं। रेलवे-मार्ग इस प्रकार से नहीं बदले जा सकते। अतः रेल-भाड़ा निर्धारण से मोटर भाड़ा निर्धारण का कार्य अधिक सरल है। मोटर भाड़ा निर्धारण में (Flat rate) व (Zonal system) का प्रयोग किया जाता है।

मोटर यातायात का व्यय—मोटर-यातायात का पूँजीगत व्यय तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम मोटर-गाड़ियों पर व्यय की गई पूँजी। द्वितीय, मोटरखानों तथा अन्य भवनों पर लगाई गई पूँजी। तृतीय अन्य पूँजीगत व्यय। मोटर-यातायात का संचालन-व्यय दो प्रकार का होता है। कुछ तो सामान्य व्यय जिसका व्यय होना अनिवार्य है, चाहे मोटर चले या न चले। दूसरा संचालन व्यय जो तभी होता है, जब मोटर गाड़ियाँ चलती हैं। पहले प्रकार का व्यय एक प्रकार का पूँजीगत व्यय होता है, जो लगभग स्थिर होता है और वह यातायात की वृद्धि के साथ न बढ़ता है और न यातायात की कमी के साथ कम होता है। इस प्रकार के व्यय में पूँजी का ब्याज, घिसावट व्यय, बीमा व्यय, दफ्तरों तथा प्रबन्धकों का व्यय और लाइसेंस फीस आदि सम्मिलित होते हैं। दूसरे प्रकार के व्यय में मरम्मत का व्यय, पैट्रोल आदि का व्यय तथा ट्यूब टायर का व्यय सम्मिलित होता है। उपर्युक्त वर्णन से मोटर-यातायात के व्यय के बारे में निम्नांकित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(१) पूँजीगत व्यय का अनुमान किसी विशेष ट्रैफिक के सम्बन्ध में लगाया जा सकता है और ट्रैफिक के परिवर्तन के साथ-ही-साथ गाड़ियों की संख्या में कमी व वृद्धि की जा सकती है।

(२) रेलवे-यातायात की अपेक्षा इसका संचालन-व्यय अनुपात से अधिक होता है।

(३) प्रत्येक ट्रैफिक का लागत-व्यय मोटर-यातायात में आसानी से निकाला जा सकता है जो रेल-यातायात में सम्भव नहीं है।

Q 50. Examine carefully the causes of supersession of horse transport by motor transport. Is the motor more economical than the horse? Under what conditions can horse transport maintain its position against motor transport?

मोटर-यातायात द्वारा अश्व-यातायात वृथा किये जाने वाले कारणों की विवेक-पूर्ण व्याख्या कीजिये। क्या मोटर घोड़े से कम खर्चीली है? किन परिस्थितियों में अश्व-यातायात मोटर-यातायात के समक्ष टिक सकता है?

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। मानव अपनी नवीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खोज करके नवीन वस्तुओं का निर्माण कर लेता है। समाज की प्रारम्भिक दशा में समाज का आर्थिक संगठन सरल था, आवश्यकताएँ कम थीं, विभिन्न क्षेत्र आत्म-निर्भर हुआ करते थे। मनुष्यों तथा वस्तुओं का स्थानान्तर होना तो था, परन्तु कम परिमाण में और कम दूरी पर। और इस आवश्यकता की पूर्ति अधिकतर पशु-यातायात के द्वारा हो जाती थी। ऊँट, बैल, घोड़े आदि से यातायात का कार्य लिया जाता था। इस प्रश्न में घोड़े से सम्बन्ध है। घोड़ा लद्दू जानवर की तरह तथा गाड़ी, इक्का, ताँगा आदि में जोत कर यातायात में उपयोगी बनाया जाता था। आजकल भी देश के अधिकांश भाग में घोड़े का प्रयोग इसी प्रकार से किया जाता है। पहाड़ी स्थानों पर, जंगलों में, ग्रामीण क्षेत्र में घोड़ा तथा घोड़ागाड़ी अब भी प्रयोग किये जाते हैं। हाँ, शहरी क्षेत्रों में तथा पक्की सड़कों पर मोटर-यातायात प्रारम्भ हो गया है, कहीं पर मोटर-यातायात ने घोड़ा-यातायात को बिल्कुल समाप्त कर दिया है और कहीं पर दोनों साथ-साथ प्रयोग में आते हैं।

आर्थिक उन्नति के साथ-साथ व्यापार की उन्नति हुई, लोगों का आना-जाना तथा वस्तुओं का इधर से उधर भेजा जाना बढ़ गया। यातायात की सुविधाओं की माँग बढ़ती गई। इस माँग को पशु-यातायात पूरा न कर सका। अतः मनुष्य यातायात के और साधनों की खोज करने लगा। नवीन चालक शक्तियों के साथ मोटर-यातायात प्रारम्भ हुआ और इसका चारों ओर विकास होने लगा। सबसे प्रथम, आधुनिक युग में प्रत्येक मनुष्य समय की बचत चाहता है, मोटर-यातायात में अश्व-यातायात से समय बहुत कम लगता है। दूसरे शीघ्र ही नष्ट होने वाली वस्तुओं का व्यापार आजकल अधिक बढ़ गया है यह व्यापार मोटर-यातायात के द्वारा ही अधिक सुगमता से किया जा सकता है। हरी साग-भाजी, अंडे, मछलियां, हरे फल आदि मोटर के द्वारा बहुत दूर-दूर शीघ्रता से भेजे जाते हैं, जो अश्व-यातायात से सम्भव नहीं। महामात्रोत्पादन के साथ व्यापार में भी वस्तुओं का परिमाण अधिक हो गया है। अश्व-यातायात के द्वारा थोड़ी-थोड़ी वस्तुएँ ही एक बार एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जा सकती हैं। इसके विपरीत मोटर-यातायात के द्वारा अधिक परिमाण में वस्तुएँ स्थानान्तर की जा सकती हैं। मोटर-यातायात का प्रति इकाई लागत-व्यय अश्व-यातायात के लागत व्यय से कम होता है, अतः मोटर-यातायात के द्वारा लोग सरलता से तथा सस्ते दर पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं और वस्तुओं को भेज सकते हैं। आज का युग यान्त्रिक युग है। यन्त्रों के आगे मनुष्यों अथवा पशुओं की शक्ति प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकती, इस कारण से मोटर-यातायात भी यान्त्रिक-यातायात होने के नाते अश्व-यातायात को प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहरने देती। इसके अतिरिक्त पूँजीवादी युग में अधिक पूँजी का बोलबाला है। जिस प्रकार छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों को बड़े उद्योग-धन्धों ने पराजित कर दिया है उसी प्रकार पूँजीवादी यातायात मोटर-यातायात ने घरेलू-यातायात, अश्व-यातायात को पराजित

कर दिया है। अन्त में आजकल मनुष्य आराम अधिक पसन्द करता है। मोटर यातायात अश्व-यातायान से अधिक आरामदायक है तथा पूर्ति की दृष्टि से मोटर-यातायान का दैनिक खर्च कुछ नहीं, यदि उससे काम न लिया जाय। परन्तु अश्व यातायान में अश्व से काम लो चाहे न लो, उसका दैनिक खर्च कम नहीं हो सकता। यद्यपि तुलनात्मक दृष्टि से अश्व-यातायात में प्रारम्भिक पूँजी कम चाहिए, परन्तु दैनिक-व्यय का अनुपात मोटर-यातायान से अश्व-यातायात में ही अधिक पड़ता है। इन कारणों से मोटर-यातायान् ने पशु-यातायात को आजकल व्यर्थ कर दिया है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि मोटर के न चलने पर दैनिक खर्च कुछ भी नहीं रहता, परन्तु अश्व-यातायात पर दैनिक खर्च करना पड़ता है चाहे उसका प्रयोग किया जाय या न किया जाय। इसके साथ-ही-साथ मोटर में एक बार तो पूँजी अधिक लगानी पड़ती है, परन्तु बाद में इसमें कम खर्च रहता है। मान लीजिये एक घोड़ागाड़ी तथा एक मोटर बस दोनों १२ मील की सड़क पर चलते हैं तो घोड़ागाड़ी तो एक बार में ४ या ६ आदमी ले जायगी और दो या तीन बार ही आ-जा सकेंगी, परन्तु मोटर बस में ४० आदमी तक बैठाले जा सकते हैं और दिन भर में ८ या १० चक्कर लगा सकती है। इन सब बातों से मोटर, घोड़े से कम खर्चीली पड़ती है। फैशन के अतिरिक्त यह भी एक कारण है, जिसकी वजह से धनी लोग घोड़ागाड़ी न रखकर मोटरकार ही रखना पसन्द करते हैं।

अश्व-यातायात मोटर-यातायान से उपर्युक्त वर्णनानुसार हीन होते हुए भी निम्न परिस्थितियों में उसकी प्रतिस्पर्धा में ठहर सकता है—

(१) जहाँ दूरी कम हो वहाँ मोटर-यातायात लाभदायक नहीं हो सकता, विशेषज्ञों के अनुसार ५ ६ मील की दूरी के लिये आर्थिक दृष्टि से अश्व-यातायात ही उपयुक्त है।

(२) जहाँ सवारियाँ कम आती-जाती हों अथवा कम माल स्थानान्तरित करने को हो, ऐसे स्थानों में भी मोटर चलाने में कोई लाभ नहीं हो सकता। ऐसी जगहों में भी अश्व-यातायात ही ठीक रहेगा, क्योंकि मोटर को पूरा काम नहीं मिल सकता। मोटर में पूँजी अधिक लगती है। फिर यदि काम कम मिले तो पूरा नहीं पड़ सकता, हानि रहेगी।

(३) जहाँ सड़कें कम चौड़ी हों, भीड़ अधिक हो, माल लादने तथा उतारने में देर लगती हो, रास्ता अधिक घुमावदार हो वहाँ भी अश्व-यातायात ही उपयुक्त होता है। ऐसी जगहों में एक तो मोटर ही नहीं जा सकती, यदि चली भी जावे तो दुर्घटना होने की अधिक आशंका रहती है।

(४) ग्रामीण क्षेत्र में अश्व अधिक उपयुक्त है, जहाँ सड़कें नहीं होती। माल भी घोड़े की पीठ पर ही लादा जा सकता है और उस पर सवारी भी की जा सकती है। यह सब ऋतुओं में तथा सब प्रकार के मार्गों पर काम दे सकता है, जो बात मोटर-यातायात में नहीं पाई जाती।

(५) तुलनात्मक दृष्टि से जिस प्रकार रेलों के समक्ष मोटर-यातायात सुगम है और उससे द्वार-सेवा (door to door service) सम्भव है उसी प्रकार घोड़ों द्वारा मोटरों की अपेक्षा द्वार-सेवा अधिक सम्भव है।

(६) जहाँ अधिक मनुष्यों को रोजगार देना हो, वहाँ अश्व-यातायात ही अधिक वांछनीय है, क्योंकि मोटर-यातायात की अपेक्षा अश्व-यातायात में अधिक मनुष्यों को काम दिया जा सकता है।

इसी प्रकार जहां (पहाड़ी स्थानों में) घोड़ा आदि जानवर भी यातायात के उपयोग में नहीं लाये जा सकते, वहां मानव को ही उपयोग में लाया जा सकता है। थोड़ी दूर तक तथा थोड़ा बोझा ढोने के लिये भी मानव ही अधिक उपयुक्त है।

Q. 51. Explain the principle modern devices introduced to relieve congestion in large over crowded cities giving the outstanding merits and limitations of each. (A.U.1944)

Q. 52. Discuss. The problem of adequate, cheap and efficient passenger transport in urban areas is one of considerab'e social significance, greatest economic efficiency and highest administrative requirements. (A.U. 1950)

Q. 53. Adequate, cheap, well organised and efficient transport facilities are of first importance in the economic and social life of our cities and towns. The problem of how these are to be provided is of a pressing nature though not one of easy solution. Discuss. (A.U. 1954)

Q. 54. In view of the rapid growth of large urban areas suggest with adequate reasons two alternative forms of inland transport best suited to cope with the suburban and rush hour traffic (A.U. 1951)

Q. 55. Urban and suburban traffic presents peculiar problems. What are these problems and how would you solve them ? (A.U. 1953)

नागरिक जीवन के लिए सुगम सस्ते तथा शीघ्रगामी यातायात के साधनों की अति आवश्यकता है। प्रत्येक नगर में विशेषकर बड़े-बड़े राजनैतिक व औद्योगिक शहरों में शीघ्रगामी यातायात की समस्या बहुत कठिन हो गई है। इन शहरों में जनसंख्या का घनत्व इतना अधिक हो गया है कि थोड़े से स्थान में सहस्रों नर-नारी अपना नारकीय जीवन बिताते हैं। चूँकि इन शहरों में कार्य करने के स्थान बहुत अधिक होते हैं और प्रत्येक कार्य करने वाली संस्था में चाहे वह कारखाना हो या कोई दफ्तर इतने अधिक व्यक्ति कार्य करते है कि वे सब अपने कार्य करने के स्थानों के पास नहीं बसाए जा सकते, इसलिए व्यक्तियों को अपने कार्य करने के स्थानों से दूर-दूर रहना पड़ता है। इन स्थानों तक आने के लिए यातायात के शीघ्रगामी साधनों की आवश्यकता है। जहां इस प्रकार के साधन नहीं होते वहां जनसंख्या का घनत्व कुछ विशेष क्षेत्रों में ही अधिक-से-अधिक हो जाता है। यही नहीं इन बड़े-बड़े शहरों में दूकानों, अस्पतालों, स्कूलों, कचहरियों तथा बाजारों आदि में आने-जाने के लिए भी शीघ्रगामी यातायात के साधनों की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह शहरों की यातायात की समस्या के अनेक पहलू हैं। आर्थिक दृष्टि से शहरी यातायात के साधन सस्ते होने चाहिए। समय की दृष्टि से वह शीघ्रगामी होने चाहिए। समाज की दृष्टि से वे इस प्रकार के चारों ओर फैले होने चाहिए, जिससे जनता के हरेक वर्ग को उन सुविधाओं के उपयोग करने का अवसर मिल सके। इस समस्या के साथ-ही-साथ यातायात के साधनों का प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए, जिससे दुर्घटनाएँ कम-से-कम हों। जहां तक यातायात की सवारियों का प्रश्न है वे व्यक्तिगत तथा संस्थागत दोनों प्रकार की हो सकती है। परन्तु जहां तक यातायात के सम्बन्ध में सड़कों का प्रश्न है, ये सड़कें [illegible] अथवा राज्य के द्वारा ही निर्मित की जा सकती हैं और इन्हीं संस्थाओं द्वारा इनकी मरम्मत हो सकती है।

आधुनिक काल में केन्द्रीकरण की नीति बलवती होती जाती है। यह बात प्रत्येक क्षेत्र के लिए सत्य है। जनसंख्या भी बड़े-बड़े शहरों व नगरों में केन्द्रित होती जाती है। केन्द्रित जनसंख्या की अनेक हानियाँ हैं। इस प्रकार की बस्तियों में अनेक स्वास्थ्य सम्बन्धी व सामाजिक दोष आ जाते हैं। इस प्रकार जनसंख्या का विकेन्द्रीकरण करने की आवश्यकता होती है। और इसके लिए यह आवश्यक है कि बड़े-बड़े शहरों व नगरों के आसपास छोटी-छोटी बस्तुएँ बनाई जायँ और सरल, सस्ते व शीघ्रगामी यातायात के साधनों के द्वारा उनका सम्बन्ध जोड़ दिया जाय।

पहिले तो नगरों व शहरों में इक्के, ताँगे, साइकिल आदि साधन व्यक्तियों को एक से दूसरे स्थानों को ले जाने के लिए अधिकतर प्रयोग में लाए जाते थे। परन्तु कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि बड़े शहरों में इक्के तथा ताँगों का प्रयोग घटता जा रहा है। क्योंकि इनमें समय भी अधिक लगता है, व्यय भी ज्यादा होता है, गन्दगी भी अधिक फैलती है। साइकिलों का प्रयोग बढ़ता जाता है। लेकिन अधिकांश शहरी जनता पर साइकिलें नहीं होतीं, ऐसे व्यक्तियों के लिए कोई-न-कोई सार्वजनिक यातायात का साधन होना चाहिये। साधारण रूप से शहरों में मोटर बस यातायात का प्रचार बढ़ रहा है और इसी के द्वारा शहरों की साधारण यातायात की आवश्यकता तथा rush hour traffic की समस्या को हल होती है। मोटर-बस-सेवा बड़े-बड़े नगरों के लिए अनिवार्य-सी होगई हैं। और जहाँ यातायात सेवा की माँग अधिक है वहाँ पर मोटर बस यातायात-समस्या सुलझाने में काफी सफल हुआ है, यहाँ तक कि थोड़ी-थोड़ी दूर के लिए तो मोटर-यातायात रेल-यातायात से भी अच्छा है। इसका संचालन-व्यय कम होता है। यह यात्रियों को स्थान-स्थान से ले और उतार सकता है। रेल अथवा ट्राम्वे विशेष रास्तों से ही जा सकती है। बस के लिए यह बात लागू नहीं। चूँकि शहरों में प्रायः सभी जगह सड़कें होती हैं, इससे ये बसें सभी जगह जा सकती हैं। मोटर-बसों के चलाने के लिए किसी विशेष प्रकार के रास्ते की आवश्यकता नहीं पड़ती, इससे समयानुसार मोटर-बसों के रास्तों में घटा-बढ़ी अथवा परिवर्तन किया जा सकता है। मोटर-बसों के द्वारा दूसरे प्रकार के यातायात के साधनों को भी किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। मोटर-बस चलने वाली सड़कों पर इक्के, ताँगे, साइकिल, रिक्शा आदि सभी चल सकते हैं। परन्तु ट्राम्वे अथवा रेल वाली सड़कों पर यह सम्भव नहीं है। मोटर-बस के सम्बन्ध में और किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। इसके अतिरिक्त मोटर-बस rush hour traffic का सामना भी अधिक सफलता से कर सकती हैं। प्रत्येक बस ऐसे अवसरों पर अधिक चक्कर लगा सकती है। इसके अतिरिक्त यात्रियों को रेलों के स्टेशनों पर टिकट लेने आदि असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता। इन सब कारणों से नागरिक यातायात की समस्या हल करने में मोटर बसें एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। दूसरा साधन ट्राम्वे हो सकता है। यद्यपि ट्राम्वे मोटर बस से अधिक टिकाऊ होती है, परन्तु यह एक विशेष रास्ते ही से जा सकती है। इसलिए आजकल अब उसका प्रयोग अधिक नहीं होता। अधिक कुहरा आदि पड़ने पर बसें बन्द हो जाती है, लेकिन ट्राम्वे चलती रहती हैं, क्योंकि इनका रास्ता इन्हीं के लिए होता है। मोटर बसों की अपेक्षा ट्राम्वे-यात्रा अधिक सुविधाजनक है। ट्राम्वे में कान फोड़ने वाली आवाज नहीं होती। तेल, पेट्रोल या धुएँ से बचाव रहता है। ट्राम्वे का व्यय भी अधिक नहीं होता और मोटर बस की अपेक्षा इनके द्वारा अधिक यात्री भी आ-जा सकते हैं। परन्तु इनका प्रयोग कुछ विशेष रास्तों पर ही हो सकता है, केवल ऐसे शहरों में जहाँ यातायात सेवा की माँग बहुत है।

इसके अतिरिक्त, इन दो साधनों के अलावा बिजली की रेल—विशेषकर ज़मीन के नीचे चलने वाली रेलें भी शहरी यातायात की समस्या हल करने में सहायक हो सकती है। परन्तु इनका व्यय अधिक होता है। इनका प्रयोग कुछ विशेष शहरों पर नहीं हो सकता है। इसका बड़े-बड़े शहरों में ही प्रयोग सम्भव है। इसलिए साधारण तौर पर आजकल नागरिक यातायात समस्या हल करने के लिए मोटर, बसें व ट्राम्वें ये दो ही साधन अधिक उपयुक्त समझे जाते है।

संक्षेप में शहरी यातायात की निम्नलिखित समस्याएँ है—

(१) औद्योगिक श्रमिकों को निवास-स्थान से कार्य-स्थान पर पहुँचाना और फिर उन्हें वापस ले जाना।

(२) साधारण जनता को बाजार तक पहुँचाना और वहाँ से उनके मकानों तक लौटाना।

(३) अधिकांश व्यक्तियों को उनके निवास-स्थानों से दफ्तरों, दूकानों स्कूलों में पहुँचाना वहाँ से फिर उनके मकानों को ले जाना।

(४) इस प्रकार के यातायात-साधनों को जुटाना जो सस्ते, सुगम और शीघ्रगामी हों, दुर्घटनाएँ कम-से-कम हों तथा वे नगर के अन्य जीवन में बाधा न डालें।

(५) औद्योगिक शहरों में जहाँ पर फैक्टरियों में दो-दो तीन-तीन शिफ्टों में काम होने लगा है वहाँ पर यातायात-सेवा की माँग और भी बढ़ गई है और इस समस्या का हल करना भी आवश्यक ही हो गया है।

(६) विभाजन के बाद नगरों में जनसंख्या का घनत्व बढ़ता चला जा रहा है। ग्रामीण भी शहरों को आते चले जा रहे है। इस तरह शहरों की जनसंख्या बराबर बढ़ती जा रही है। इस बढ़ोतरी के कारण शहरों में [illegible] की माँग बहुत बढ़ गई है।

(७) यातायात-सेवा की माँग बढ़ने के साथ सवारियों की माँग तो बढ़ती ही है इसके अतिरिक्त अच्छी सड़कों की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। टूट-फूट अधिक होने लगती है। अधिक मरम्मत की जरूरत होती है। इन सब कार्यों के लिए धन अधिक चाहिए।

(८) यदि सड़कों की भली प्रकार मरम्मत न की जाय तो साधनों को हानि तो पहुँचती ही है यात्रियों को भी असुविधा होती है। दुर्घटनाएँ होती है, समय भी अधिक लगता है। इसी प्रकार यदि विभिन्न प्रकार की गाड़ियाँ पुरानी, टूटी-फूटी व बे-मरम्मत रहें तो उनसे भी यात्रियों को असुविधा व दुर्घटनाएँ आदि हानियाँ होती है। अतः आजकल की यातायात आवश्यकता पूर्ति के लिए यह अनिवार्य है कि यातायात के साधन व सड़कें हर तरह सुसज्जित रहें। इसके लिए पर्याप्त धनराशि चाहिए। यह धनराशि कुछ तो यात्रियों से भाड़ा रूप में आती रहती है। सड़कों की मरम्मत की ओर विशेष कर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को ध्यान देना चाहिये।

शहरी यातायात में पारस्परिक समन्वय तथा सुप्रबन्ध की बहुत आवश्यकता है। विभिन्न यातायात के साधनों में पारस्परिक पूर्ण सहयोग होना चाहिए। छोटी-छोटी गलियाँ रिक्शों आदि के लिए सुरक्षित की जा सकती है। कोई-कोई क्षेत्र जहाँ ट्रैफिक अधिक नहीं है रिक्शों, इक्कों के लिये सुरक्षित किये जा सकते है। किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में धीमे चलने वाले इक्के-ताँगों को बन्द किया जा सकता है। बस सर्विस व

ट्राम्वे सर्विस के रास्ते इस प्रकार से निर्धारित किये जा सकते हैं कि इन दोनों में प्रतिस्पर्धा न हो और इस बात का ध्यान जमीन के अन्दर चलने वाली रेलों के लिये भी रखना चाहिए। स्टेशन, बस स्टेण्ड व इक्का, ताँगा, रिक्शा स्टैण्ड ऐसे केन्द्रीय स्थानों पर होने चाहिए, जहाँ यात्रियों को असुविधा न हो सके। यथा संभव सड़कों के किनारों पर, चौराहों पर इक्के, ताँगे व रिक्शों का खड़ा किया जाना रोका जाना चाहिए, क्योंकि इनसे सर्वसाधारण की गतिविधि में बाधा पहुँचती है और कभी-कभी बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ भी हो जाया करती हैं। जहाँ-जहाँ स्टेण्ड बनाये जायँ वहाँ वर्षा व धूप से बचने के लिए छाया का तथा पानी आदि का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। वास्तव में शहरी यातायात की समस्याएँ अब इतनी जटिल हो गई हैं कि अब वे पुराने ढंग से नहीं सुलझाई जा सकती हैं। अनुभवी नगरपालिकाओं के कर्मचारियों द्वारा यातायात-समस्या अच्छी तरह सँभल सकती है। अब तो जनहित में यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्थानीय संस्था यातायात-प्रबन्ध के लिये अनुभवी कर्मचारियों को रक्खे, जिससे वे इस समस्या का हल समुचित रूप से कर सकें।

नागरिक यातायात की समस्या केवल घनी बस्तियों का विघटन ही नहीं है, वरन् उसका कार्य कुछ सामाजिक समस्याओं का हल करना भी है। यातायात के साधन जिस सीमा तक घनी बस्तियों का विघटन कर सकेंगे उस सीमा तक वे कुछ सामाजिक समस्याओं का हल भी कर सकेंगे। यदि सस्ते तथा सुगम यातायात के साधनों के कारण घनी बस्तियों के लोग शहर से बाहरी क्षेत्रों में रहने लगें तो उनका किराये का भार तो कम हो जायगा, साथ-साथ वे लोग बहुत-सी सामाजिक बुराइयों से बच जायँगे जो घनी बस्तियों में विशेष रूप से पाई जाती हैं। मुख्यतः उनके स्वास्थ्य में तो पर्याप्त परिवर्तन हो जायेगा, अच्छी जलवायु तथा साफ-सुथरे स्थान में रहने से दवाइयों और डाक्टरों पर किया जाने वाला व्यय कम-से-कम हो जायगा और इस बचे हुए रु० को वे और भी आवश्यक मदों में व्यय कर सकेंगे। स्वच्छ वातावरण में पले हुए बच्चे भी आगे चलकर अधिक सभ्य नागरिक बन सकेंगे। घनी बस्तियों में यदि दुर्भाग्यवश आग लगने आदि की दुर्घटनाएँ हो जायँ तो जनता को बहुत क्षति सहनी पड़ती है। यदि यातायात की सुलभ सुविधाओं से घनी बस्तियाँ कम हो जायें तो इस प्रकार की दुर्घटनाओं से क्षति भी कम हो जायेगी। यही नहीं दुर्घटनाओं के समय भी यातायात के अच्छे साधनों का होना आवश्यक है। आग लगने पर पानी से बुझाने की दमकलें तभी सुगमता से काम कर सकती हैं जब उस स्थान तक जाने के लिये अच्छी सड़कें हों। यदि राजनैतिक व साम्प्रदायिक दंगे हो गए हैं वे भी तभी रोके जा सकते हैं जब अच्छी सड़कें और यातायात के शीघ्रगामी साधन हों। यदि सड़कें ठीक नहीं हैं, शहर में शीघ्रगामी यातायात के साधनों का अभाव है तो राज्य-प्रबन्ध भी अच्छी प्रकार से नहीं हो सकता। इसलिए आर्थिक दृष्टि से ही नहीं वरन् स्वास्थ्य, सफाई, प्रबन्ध की दृष्टि से तथा सामाजिक व राजनैतिक कारणों से भी शहरों में यातायात के अच्छे साधनों का होना आवश्यक है।

यातायात के साधनों की आवश्यकता तो स्पष्ट है यह सभ्य जीवन के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य हैं। परन्तु इस समस्या का सुलझाना विशेष कर शहरों के लिये कुछ कठिन है और सबसे बड़ी कठिनाई शहरों का बेढंगे प्रकार से बसा हुआ होना है। विशेषकर शहरों के पुराने-पुराने भागों में कम चौड़ी सड़कों की प्रधानता है और ये ही सबसे घने बसे हुए हैं। इन्हीं स्थानों में दुमंजिले व चौमंजिले मकान

बने हुए हैं परन्तु कम चौड़ी सड़कों के होने से यातायात के आधुनिक स्थान उन स्थानों पर कार्य नहीं कर सकते ।

उन स्थानों की उन्नति करने के लिए यदि सड़कें चौड़ी की जायें अथवा और किसी प्रकार का प्रबन्ध किया जाय तो उसमें बहुत व्यय की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि सड़कें चौड़ी करने के लिए दुमंजिले, तिमंजिले गिराने पड़ें तो सर्व प्रथम तो जनता से ही विरोध की सम्भावना है और यदि जनता सहमत भी हो जाय तो उसमें व्यय भी अधिक पड़ता है। बने हुए मकानों को गिराने में संपत्ति का नाश तो हो ही गया इसके पश्चात् नये मकानों को बनाने के लिए और भी धनराशि चाहिए। इस प्रकार के शहरों के लिए यातायात की समस्या का हल करना बहुत ही कठिन है। यद्यपि बड़े-बड़े शहरों में Improvement trusts बन गए हैं या बनाए जा रहे हैं, परन्तु ये संस्थाएँ भी पुरानी बस्तियों को लाभ पहुँचाने में यथोचित सफलता नहीं पा रहीं हैं। ऐसी बस्तियों के लिए या तो नवीन प्रकार के यातायात के आधुनिक साधन बनाए जावें या इक्कों तांगों का ही सहारा लिया जाय।

नगर आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्रियाओं के केन्द्रीय स्थान हुआ करते हैं। इनमें जनसंख्या का घनत्व भी अधिक होता है। यद्यपि एक बड़े नगर की जनसंख्या कई लाखों में होती है, और वह कई वर्ग मील के क्षेत्र में बसा हुआ होता है, फिर भी उस नगर के मुख्य कार्यालय, कारखाने, बाजार आदि किसी विशेष स्थान में ही केन्द्रीभूत होते हैं, अतः व्यक्तियों को प्रतिदिन मीलों दूर चल कर कार्यालयों अथवा कारखानों में कार्य करने, बाजारों में सामान बेचने व मोल लेने, तथा अन्य स्थानों व संस्थाओं में अन्य प्रकार के कार्य करने के लिए आना-जाना पड़ता है। जीवन-निर्वाह तथा दैनिक आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त मनोरंजन, सैर-सपाटे आदि के लिए भी लोगों को बहुत दूर चलना पड़ता है। प्रत्येक बड़ा नगर किसी न किसी रेलवे का स्टेशन अथवा जंकशन हुआ करता है अथवा चारों दिशाओं से आने जाने वाले मोटरों का अड्डा होता है, जिससे रात-दिन चौबीसों घंटे यातायात की सुविधाओं की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक दिन कुछ समय ऐसा होता है जिसमें यातायात के साधनों की मागें एक दम बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए प्रातःकाल ९½ बजे से लेकर १०॥ बजे तक प्रायः सब आफिसों, कार्यालयों, संस्थाओं तथा अधिकांश बाजार आदि के खुलने का समय होता है, इस समय प्रत्येक व्यक्ति कम-से-कम व्यय में, आराम के साथ अपने कार्य करने के स्थान पर पहुँचने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार सायंकाल ४॥ बजे से लेकर ५॥ बजे तक लोग अपने-अपने कार्यालयों से घर वापस आते हैं और प्रातःकाल ही की भांति यातायात के साधनों की माँग एकदम अधिक बढ़ जाती है। इन दो अवसरों पर नगर की मुख्य-मुख्य सड़कों पर इतना अधिक यातायात हो जाता है कि उन सड़कों को पार करना एक अत्यन्त कठिन समस्या बन जाती हैं। बहुत-सी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं। यदि सड़कें खराब हुईं, कम चौड़ी हुईं, यातायात के साधन शीघ्रगामी न हुए, बड़े-बड़े चौराहों पर कोई नियन्त्रण न हुआ तो जल्दबाजी में दुर्घटनाओं की संख्या और भी अधिक हो जाती है। अतः नागरिक यातायात की समस्या जटिल तथा महत्वपूर्ण है। इस समस्या को सफलतापूर्वक सुलझाने पर ही नागरिक जीवन, सरस, सुरक्षित तथा आकर्षक होता है।

नगर यातायात की समस्या दो विभागों में विभाजित की जा सकती है—

(१) मार्ग (२) साधन

नगर में जहाँ तक मार्गों का सम्बन्ध है मार्गों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। भारत के इने-गिने नगरों को छोड़कर सड़कों की हालत संतोषजनक नहीं है। इन नगरों में भी मुख्य-मुख्य सड़कों को छोड़कर, बहुत-सी सड़कें तो सड़कें कहलाने के योग्य ही नहीं होतीं। भारत के एक प्रसिद्ध नगर आगरे को ही ले लीजिये। नगर के मुख्य भाग की मुख्य सड़कों पर दो मोटरें एक साथ नहीं चल सकतीं। यदि दो विपरीत दिशाओं से मोटरें आ जावें तो प्रायः १० मिनट तक सारा ट्रैफिक रुक जाता है, सवारियों पर बैठकर उछलते-कूदते जाना तो साधारण बात है। बहुत-सी गलियाँ ऐसी हैं कि वहाँ कोई सवारी नही जा सकती, सवारी ही नहीं कहीं-कहीं तो शुद्ध वायु तथा सूर्य-किरणों का जाना भी कठिन हो जाता है। बरसात में थोड़ा ही पानी लगातार बरसने से नगर की अधिकांश सड़कें नाले के रूप में परिणत हो जाती हैं। इन परिस्थितियों में आगरा शहर यातायात के सम्वन्ध में एक पिछड़ा शहर माना जाता है।

नगर-मार्गों के विषय में नगरपालिकाओं की एक निश्चित नीति होनी चाहिए। अब तक जो कुछ हो चुका वह तो हो चुका, परन्तु भविष्य में यह ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि प्रत्येक सड़क इतनी चौड़ी हो कि एक ताँगा सरलता से निकल सके। सड़कें यथासम्भव सीधी होनी चाहिएँ। मुख्य सड़कें परिस्थितियों के अनुसार काफी चौड़ी होनी चाहिएँ। नगर की प्रत्येक सड़क का पक्की होना अनिवार्य है। मुख्य सड़कों के दोनों ओर फुटपाथ होना चाहिए। नालियों आदि का प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिए कि बरसात में पानी शीघ्र ही निकल जाया करे। सड़कों की बनावट ऐसी होनी चाहिए कि बरसाती पानी जहाँ-तहाँ न भरा रहा करे।

नगर में यातायात के साधनों की ओर यदि ध्यान दिया जावे तो सबसे प्रथम महत्वपूर्ण बात यह दृष्टिगोचर होती है कि नगरों में यान्त्रिक वाहनों की प्रधानता होती है, एक तो यांत्रिक वाहनों में व्यय कम पड़ता है, रखने में सुविधा होती है, प्रतिदिन गन्दगी फैलने तथा सफाई रखने की समस्या नहीं उठती, और ये शीघ्रगामी भी होते हैं। नगरों में निम्न प्रकार के वाहन पाये जाते हैं—

(१) पशु-वाहन, बैलगाड़ी, इक्का, ताँगा आदि। बैलगाड़ी थोड़ी दूर तथा थोड़ा सामान ढोने में काम आती है। शहरों में बहुत से ऐसे स्थान होते हैं, जहाँ ट्रक नहीं जा सकते, ऐसे स्थानों पर बैलगाड़ियाँ सामान लादकर पहुँचाती हैं। कानपुर आगरा, ऐसे शहरों में तो बैलगाड़ी प्रायः सामान ढोने के काम आती हैं। मनुष्य द्वारा चलाये जाने वाले ठेले भी सामान ढोने के काम में आते हैं, जब इतना कम सामान होता है कि एक बैलगाड़ी के लिये काफी नहीं और इतना अधिक भी है कि इक्का, ताँगा व रिक्शा द्वारा नहीं जा सकता, तो ऐसी हालत में मानव द्वारा खींचे जाने वाले ये ठेले ही काम में आते हैं।

इक्के, ताँगे यात्रियों के स्थानान्तर करने में ही काम में लाये जाते हैं। वर्तमान समय में आदमियों द्वारा चलाये जाने वाले रिक्शे, इक्के व ताँगों का स्थान ले रहे हैं। इनमें कम सवारियों से काम चल जाता है, इसलिए सवारी को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती तथा अकेले जाने के लिए सस्ता भी पड़ता है। प्रारम्भ में लोग रिक्शे में बैठने में संकोच करते थे, यह विचार कर कि इसे आदमी खींचते हैं, परन्तु बेकारी ने इस भावना को समाप्त कर दिया है और अब कम से-कम रोजी देने के विचार से लोग रिक्शों का प्रयोग करने लगे हैं।

(२) यान्त्रिक वाहन। साइकिल अथवा मोटर साइकिलों का प्रयोग उनके स्वामियों

के द्वारा ही अधिक होता है। इनके अतिरिक्त मोटरटैक्सी, मोटर-बस, मोटर ट्रक, मोटर रिक्शा तथा ट्रामवे शहरी यातायात के साधन होते हैं, परन्तु ये सब बड़े शहरों में ही अधिकतर पाये जाते हैं। छोटे शहरों में इनके लिये पर्याप्त क्षेत्र नहीं होता। इनमें से ट्रामगाड़ी रेल के समान ही होती है, इसके सफल संचालन के लिए साधन तथा नियमित यातायात की आवश्यकता होती है। भीड़ के घन्टों के सफल यातायात के लिये ट्राम से बढ़कर और कोई वाहन नहीं हो सकता। परन्तु यह दिल्ली, कानपुर कलकत्ता ऐसे बड़े शहरों के लिए ही सम्भव है। छोटे शहरों में इसके लिये काफी ट्रैफिक नहीं मिल सकता। ट्राम के दो दोष मुख्य है एक तो इसके लिए धन अधिक चाहिए, दूसरे इसका मार्ग भी रेल की भांति निश्चित होता है, यह मोटर के समान सब सड़कों पर नहीं जा सकती। मार्ग में तारों का जाल बिछाना पड़ता है, इस कारण से बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली व मदरास आदि कुछ बड़े शहरों को छोड़कर ट्रामगाड़ी और स्थानों पर पसन्द नहीं की जाती।

वर्तमान समय में शहरों में मोटर यातायात बढ़ रहा है। रेल तथा ट्राम से यह सस्ती तथा लोचदार पड़ती है। इक्के, तांगों की अपेक्षा भी सस्ती तथा शीघ्रगामी होती हैं। इसमें स्थायी व्यय बहुत ही कम होता है, बड़े शहरों में स्थानीय राज्य संस्थाएँ अथवा विशेष कम्पनियाँ इस सेवा की पूर्ति करती है।

अनेक बड़े शहरों में मोटर टैक्सी का प्रयोग भी होता है, परन्तु इनका प्रयोग लम्बी यात्राओं के लिए धनी लोग ही करते हैं।

Q. 56. Examine carefully the following—
The general objects of 'Motor carriers regulations in India.

प्र० ५६ निम्नांकित का विवेकपूर्ण विवेचन कीजिये —
भारत में मोटर कैरियर्स रेगूलेशन के सामान्य उद्देश्य।

General objects of motor carriers regulation in India

बहुतों का मत है कि मोटर-यातायात का नियन्त्रण रेलों की रक्षा के लिये किया जाता है, जिससे रेलों को ढोने के लिए सवारी तथा माल पर्याप्त मात्रा में मिलता रहे। वैसे मोटर तथा हवाई यातायात के समक्ष रेल-यातायात एक प्रकार का प्राचीन साधन हो गया है, जो प्रतिस्पर्धा में इनके सामने नहीं ठहर सकता, इसलिये रेलों को बचाने के लिये यह आवश्यक है कि मोटर-यातायात पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये जाँय। परन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि मोटर-यातायात पर प्रतिबन्ध केवल इसलिए नहीं लगाये जाते, जिससे रेलवे को ट्रैफिक मिल सके, वरन् यह प्रतिबन्ध मोटर-यातायात की उन्नति के लिये भी आवश्यक है। यातायात के क्षेत्र में मोटर तथा रेलवे दोनों एक दूसरे के पूरक है, प्रतिस्पर्धात्मक नहीं। अतः दोनों के उपयुक्त विकास से ही दोनों की उन्नति हो सकती है।

वास्तव में मिचेल किर्कनैस कमेटी ने रेल-मोटर प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिये यह सिफारिश की थी कि यदि रेलों को होनेवाली आर्थिक हानि से बचाना है तो शीघ्र ही मोटरों का नियन्त्रण करने के लिये कठोर नियमों का बनाना आवश्यक है। एक निश्चित कर का लगाया जाना, क्षेत्र का नियत किया जाना, समय-विभाग तथा दरों, भाड़ा-सवारियों की तादाद आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के सुझाव रक्खे गये, ये सब सुझाव शिमला सम्मेलन में रक्खे गये। इस सम्मेलन ने यह अनुभव किया कि न केवल रेल-हित वरन् राष्ट्रीय तथा जनता के हित में भी यह आवश्यक है

कि मोटर-यातायात पर उचित प्रतिबन्ध लगाये जावें और रेल व मोटर-यातायात के साधनों में सहयोग तथा समन्वय स्थापित किया जाये, जिससे आर्थिक क्षति रोकी जाये। सड़क-यातायात के राष्ट्रीयकरण की नीति लागू होने के पश्चात्, मोटर-यातायात पर प्रतिबन्ध लगाने की समस्या प्राय: समाप्त हो जाती है, क्योंकि अब दोनों रेल व मोटर राष्ट्रीय हित ही में चलाये जाते हैं, फिर भी मोटर कैरियर्स रेगूलेशन की आवश्यकता दुर्घटनाओं को रोकने के लिये अब भी बनी हुई है। सवारियों के नम्बर, माल का परिमाण, चाल, ड्राइवरों की शिक्षा आदि के बारे में नियमों की आवश्यकता अब भी है। इस प्रकार के नियमों की अनुपस्थिति में राज्य मोटर बसों द्वारा और भी अधिक दुर्घटनाओं की सम्भावना है। अत: इन नियमों का जन-हित में लागू होना आवश्यक है और इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए ये नियम बनाये जाते हैं।

Q, 57. Explain and criticise the main provisions of the India Motor vehicles Act 1938. (A.U. 1943)

Q. 58. Comment. The motor vehicles Act is not a measure intended to create either a state monopoly or nationalisation of the motor vehicular business on the highways of the country. (A.U. 1951)

सन् १९३० के पश्चात् मोटर-यातायात रेलों के साथ प्रतिद्वन्द्विता के अतिरिक्त आपस में भी प्रतिद्वन्द्विता करने लगा, जिससे सड़कों की दशा बिगड़ने लगी और साथ-ही-साथ यात्रियों को भी काफी असुविधाओं का सामना करना पड़ा। अत: यात्रियों की असुविधाओं को दूर करने, सड़कों की दशा सुधारने तथा प्रतिद्वन्द्विता सम्बन्धी अन्य दोषों को दूर करने के लिये भारत सरकार को Motor vehicles Act सन् १९३८ में पास करना पड़ा, इस मोटर अधिनियम की लगभग सारी धारायें प्रबन्ध एवं नियन्त्रण में उन्नति से सम्बन्धित थीं।

यह सिद्ध करने के लिये कि Motor vehicles Act का उद्देश्य देश के राज-मार्गों पर मोटर-यातायात उद्योग का न तो राष्ट्रीयकरण करना है और न उसके ऊपर राज्य का एकाधिकार करवाना है यह आवश्यक है कि पहले इस एक्ट की धाराओं पर विचार कर लिया जाय। सबसे पहले मोटर-यातायात को नियन्त्रित करने के लिए १९१४ में एक एक्ट बनाया गया था। परन्तु बढ़ते हुए मोटर-यातायात के कारण यह एक्ट अपर्याप्त सिद्ध हुआ। इसलिये इसके ऊपर सन् १९३९ ई० में एक मोटर व्हीकल एक्ट पास किया गया। इस एक्ट के अन्तर्गत दो प्रकार की धारायें हैं। प्रथम नियन्त्रण सम्बन्धी, द्वितीय समन्वय सम्बन्धी। इसकी सामान्य योजना यह है कि प्रत्येक राज्य के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में यात्रियों तथा माल को ले जाने वाली मोटर गाड़ियों के नियन्त्रण हेतु एक क्षेत्रीय यातायात अधिकारी नियुक्त किया जाय। और समन्वय करने के लिये सारे राज्य के लिए एक अधिकारी नियुक्त किया जाय, इन पदों पर किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो सकती है जिसका यातायात-उद्योग से कुछ निजी स्वार्थ न हो। प्रत्येक मोटर गाड़ी अपने क्षेत्र के क्षेत्रीय अधिकारी द्वारा आज्ञा मिलने पर ही चलाई जा सकती है। और जिसे ऐसा आज्ञा-पत्र मिल जाय उसे कुछ विशेष शर्तों का पालन करना पड़ता है। जैसे मोटर गाड़ी को ठीक दशा में रखना। चाल सम्बन्धी नियमों का पालन करना। गाड़ी में स्थान से अधिक यात्रियों को न बैठालना। चालकों से अधिक कार्य न लेना। मोटर गाड़ियों अथवा ठेलों को आज्ञा देने में अधिकारियों को कुछ नियमों का

ध्यान रखना पड़ता है। उदाहरणार्थ, इसकी जनता को आवश्यकता है या नहीं इससे सुविधा होगी या नहीं, इससे व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा तो नहीं बढ़ जायगी, क्या सड़क इस प्रकार की गाड़ी के प्रयोग के योग्य है। इसी प्रकार माल ढोने के लिये भी कुछ नियमों का ध्यान रखना आवश्यक है। उदाहरण के लिये, मोटर गाड़ियों द्वारा माल के स्थानान्तर में इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा न होने लगे जिससे रेलों को मिलने वाला कार्य कम हो जाय। इस प्रकार से सड़क-यातायात को नियन्त्रित करने का अधिकार राज्य सरकारों को दे दिया गया है। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि जिस व्यक्ति को किसी सड़क पर मोटर चलाने का अधिकार दे दिया जाय उसका यह कर्त्तव्य है कि वह उस सड़क पर मोटर-यातायात का प्रबन्ध बनाये रक्खे। अधिकारियों को यह भी अधिकार दिया गया है कि वे मोटर गाड़ियों का कम-से-कम अथवा अधिक-से-अधिक भाड़ा भी निर्धारित कर दें। इस ऐक्ट की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मोटर गाड़ियों का बीमा करना अनिवार्य कर दिया गया है। इस धारा पर बहुत वाद-विवाद रहा। इसके फलस्वरूप यह धारा जौलाई सन् १९४६ ई० से लगाई जा सकी। वास्तव में यह उपनियम मोटर द्वारा दुर्घटनाओं को रोकने के लिये बहुत ही आवश्यक है। इसी उपनियम से मोटर-संचालकों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना आ सकती है।

इन सब धाराओं से यह स्पष्ट होता है कि मोटर व्हीकिल्स ऐक्ट का उद्देश्य सड़क यातायात पर न तो राज्य का एकाधिकार जमाना है और न इस उद्योग का राष्ट्रीयकरण करना। वास्तव में रेलवे इनक्वायरी कमेटी ने जनता को अच्छी यातायात-सेवा देने के लिये यह सिफारिश की थी कि मोटर व्हीकिल्स ऐक्ट पास किया जाय। इसी सिफारिश के आधार पर १९३९ ई० में यह ऐक्ट पास किया गया था। ऐक्ट का उद्देश्य यही था कि मोटर-यातायात को नियन्त्रित किया जाय और यह नियन्त्रण एक ऐसी संस्था अथवा एक ऐसे अधिकारी के हाथ में सौंपा जाय जिससे मोटर-यातायात की पर्याप्त उन्नति हो सके और उससे जनता को अधिकाधिक लाभ हो सके। इस से पहले मोटरों की दशा बहुत खराब रहा करती थी। उनमें अधिक-से-अधिक यात्री भर लिये जाते थे। मनचाहा भाड़ा लिया जाता था। गाड़ी छूटने का कोई निश्चित समय नहीं होता था। रास्ते में भी निश्चित से अधिक समय लग जाया करता था। यद्यपि, राज्यों की सरकारें मोटर-यातायात को लाइसेन्स-प्रथा से नियन्त्रित रखती थीं, फिर भी प्रत्येक की नीति या शर्तें विभिन्न हुआ करती थीं और इसलिये इस उद्योग की उन्नति में विभिन्न प्रकार की बाधाएं सामने आती थीं। किन्हीं भागों में आवश्यकता से अधिक मोटर-यातायात की सुविधा थी और किसी भाग में इस प्रकार की सुविधा बिल्कुल ही न थी। इन सब दोषों को दूर करने को ही मोटर व्हीकिल्स ऐक्ट पास किया गया था। इस ऐक्ट में राज्य के एकाधिकार अथवा राष्ट्रीयकरण का कहीं भी नाम नहीं है और न प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भविष्य के बारे में उल्लेख है। राज्य का एकाधिकार का उद्देश्य तब माना जा सकता था यदि उस ऐक्ट में कहीं यह धारा होती कि अब भविष्य में व्यक्तिगत मोटर नहीं चल पायेंगी, किन्तु ऐसा कहीं उल्लेख नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि ऐक्ट का उद्देश्य राज्य का एकाधिकार स्थापित करना नहीं है। इसी प्रकार यदि राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य होता तो राष्ट्रीयकरण को कार्यान्वित करने के लिये उस ऐक्ट में कार्य-प्रणाली का उल्लेख होता। परन्तु ऐसा भी नहीं है। ऐक्ट की प्रत्येक धारा से यही स्पष्ट होता है कि ऐक्ट का उद्देश्य मोटर-यातायात पर केवल नियन्त्रण करना ही था।

Q. 59. Discuss the merits and demerits of the nationalisation of road transport.

मोटर यातायात के राष्ट्रीयकरण के गुण व दोष

गुण

राष्ट्रीयकरण के पक्ष में :—

(१) सरकार द्वारा संचालित मोटर-यातायात से जनता को सस्ती, कुशल, तथा संतोषजनक यातायात की सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं, क्योंकि सरकार का मुख्य कर्त्तव्य जनता को सुविधा तथा आराम देना है न कि उनसे किराया लेकर उनका शोषण करना। व्यक्तिगत मोटर मालिक यात्रियों को इतनी सुविधा नहीं दे सकते, क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

(२) मोटर द्वारा यातायात की उत्तरोत्तर वृद्धि के फलस्वरूप अधिक माँग बढ़ जाने के कारण व्यक्तिगत मोटर मालिक किराया बढ़ा सकते हैं और भिन्न-भिन्न स्थानों में किराये की दरों में अन्तर हो सकता है, जो व्यापार व व्यवसाय की प्रगति में बाधक होता है। मोटर-यातायात के राष्ट्रीयकरण हो जाने से किराये की दरों में एकता आ सकती है, जिससे यात्रियों व माल का आवागमन भली भाँति हो सकता है।

(३) राष्ट्रीयकरण हो जाने से मोटरों की कार्य-क्षमता बढ़ जाती है। बसें निश्चित समय पर चलाई जाती हैं। किराये तथा भीड़ में कमी होती है, क्योंकि मोटर-मालिक इन बातों की ओर ध्यान नहीं देता।

(४) व्यक्तिगत मोटर मालिक उन्हीं स्थानों पर मोटर चलाते हैं, जहाँ जनसंख्या अधिक होती है और यातायात की काफी माँग होती है। पिछड़े हुए गाँव व स्थानों का बिल्कुल भी ध्यान नहीं रक्खा जाता। सरकार द्वारा संचालित मोटर-सेवा से यह बात दूर हो सकती है, क्योंकि सरकार को एक सड़क पर यदि हानि होगी तो वह सरी सड़कों पर होने वाले लाभ से पूरी की जा सकती है।

(५) व्यक्तिगत मोटर कम्पनियों के समय में सड़क-यातायात पर दो पक्षों का प्रभुत्व था। सड़क प्रान्तीय सरकार की और मोटर किसी व्यक्ति विशेष की, इसलिये सरकार सड़कें ठीक रखने की ओर अधिक ध्यान न देती थी। अब जब मोटरें भी सरकार की ही होंगी तो उनकी अधिक क्षति रोकने के लिये सड़कों की दशा अपने आप ठीक की जायगी। इस प्रकार मोटर-यातायात के राष्ट्रीयकरण से सड़कों का स्वयं सुधार हो जायगा।

(६) राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत मोटर कर्मचारियों आदि को भी लाभ होने की सम्भावना है, क्योंकि उन्हें और सरकारी कर्मचारियों की तरह छुट्टी, वेतन, भत्ते आदि की सुविधाएँ मिलेंगी।

(७) इन सब लाभों के अतिरिक्त राष्ट्रीयकरण के पक्ष में यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में प्रत्येक आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण का बोलबाला है, और जब अन्य आर्थिक समस्याओं का हल भी राष्ट्रीयकरण में ही पाया जाता है तो यातायात में भी राष्ट्रीयकरण आवश्यक है। इसके अतिरिक्त स्थल-यातायात में मोटर-रेल दो ही यातायात के प्रमुख साधन हैं, इनमें से रेल-यातायात का राष्ट्रीयकरण हो ही गया है। अतएव मोटर-यातायात का राष्ट्रीयकरण स्वाभाविक प्रतीत होता है।

(८) व्यक्तिगत मोटर-यातायात में जो लाभ होता है वह पूंजीपतियों की जेबों में जाता है, जिससे समाज के धन-वितरण में असमानता बढ़ती है जो कि जनता में एक और अशान्ति का कारण बन जाती है। इसके विपरीत राष्ट्रीयकरण के अन्तर्गत जो लाभ होता है वह सरकारी कोष में जाकर सारी जनता के हित में व्यय किया जाता है। इसलिये वितरण की दृष्टि से भी मोटर-यातायात का राष्ट्रीयकरण आवश्यक है।

दोष

(१) विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संचालित मोटर-यातायात में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा होने के कारण नवीनतम आविष्कारों का प्रयोग, यात्रियों को अधिक सुविधाएँ, कार्य-क्षमता आदि लाभदायक बातें सम्भव है।

(२) राष्ट्रीयकरण हो जाने पर इच्छित स्थानों पर मोटर रुकने की सुविधा यात्रियों को न रहेगी।

(३) सरकार तथा सरकारी मोटर-यातायात के कर्मचारियों के आपसी सम्बन्ध शीघ्र बिगड़ने में हड़तालों की अधिक सम्भावना हो जायगी, विशेषकर सरकार के विरोधी पार्टी के नेता इन हड़तालों में सक्रिय भाग लेकर हड़तालों को अधिक लम्बा बनाकर, यातायात में विशेष कठिनाई उपस्थित कर सकते हैं।

(४) चुनाव-काल में सरकारी पार्टी सरकारी मोटर-यातायात का [illegible] रूप से प्रयोग कर सकती है।

(५) मोटर-यातायात के राष्ट्रीयकरण हो जाने के कारण हुई मोटर मालिकों की क्षति को पूरी करने के लिए सरकार को अधिक धन व्यय करना पड़ेगा।

(६) मोटर मालिकों ने अधिक पूँजी लगाकर तथा अनेकानेक जोखिमों को सहकर, तथा कभी-कभी आर्थिक हानि उठाकर भी मोटर-यातायात का विकास किया है। अब जब उससे आर्थिक लाभ होने की आशा है तब उन्हें इससे वंचित करना उनके साथ अन्याय होगा।

(७) व्यक्तिगत मोटर-यातायात में जनता इस सम्बन्ध की शिकायतें सरकारी कर्मचारियों से करके अपनी कठिनाइयों का निवारण कर सकती थी, राष्ट्रीयकरण में इस प्रकार की कठिनाइयों का निवारण करना मुश्किल हो जायेगा।

(८) उद्योग में एकाधिकार प्राप्त करने से जनता को जो हानि पहुँचती है वह मोटर-यातायात के राष्ट्रीयकरण से भी पहुँच सकती है।

Q. 60. Decsribe the way in which motor transport has been nationalised in U.P.

उत्तर प्रदेशीय राष्ट्रीयकृत यातायात का संक्षिप्त इतिहास

उत्तर प्रदेश में सड़क यातायात के राष्ट्रीयकरण की योजना प्रदेश के नवीनतम इतिहास की उल्लेखनीय घटनाओं में से एक है। प्रारम्भ से ही सरकार की यह इच्छा रही है कि जनता को कम व्यय पर अच्छे यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध हों। फलतः उसने यातायात के राष्ट्रीयकरण की योजना बनाई और मई, सन् १९४७ में सरकारी रोडवेज की सर्वप्रथम योजना चालू की गई। उसके बाद से इस योजना का तीव्र गति से विस्तार किया जा रहा है।

सरकार की इस सम्बन्ध में यह नीति रही है कि यातायात का उत्तरोत्तर राष्ट्रीय-करण हो। अतएव इसके अनुसार सरकार ने प्रारम्भ में एक ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी

स्थापित करने की योजना बनाई, जिसमें सरकार, रेलवे और निजी तौर पर मोटर-लारियाँ चलाने वाले हिस्सेदार हों, ताकि सड़क और रेल द्वारा यातायात में समन्वय स्थापित हो और यात्रियों को अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त हों। परन्तु इस योजना में इसलिए प्रगति न हो सकी कि निजी मोटर लारियाँ चलाने वाले इस त्रिदलीय योजना में भाग लेने के लिए प्रस्तुत न थे। चूँकि यातायात की दशाओं को अच्छा बनाना और लोगों के लिए सुविधाएँ उपलब्ध कराना अनिवार्य था, अतएव सरकार के लिये चुप बैठ रहना सम्भव न था। अन्ततः सरकार ने सरकारी मोटर-लारियाँ और बसें चलाने का निर्णय किया।

सड़क-यातायात की पहली सर्विस मई, १९४७ ई० में शुरू हुई थी और चूँकि यह प्रयोग सफल रहा, अतएव इसी योजना का प्रसार किया गया। परिणामतः उत्तर प्रदेशीय सरकार की रोडवेज़ सर्विस में तीव्रगति से विस्तार होने लगा। सन् १९४७-४८ ई० में इन सर्विसों की संख्या केवल ३१ थी जो सन् १९४८-४९ ई० में बढ़कर १२८ और सन् १९४९-५० ई० में २३१ हो गई। चूंकि सन् १९५०-५१ ई० का वर्ष आर्थिक संकट का वर्ष रहा, इसलिए इन सर्विसों की संख्या में लगभग १ दर्जन की ही वृद्धि हो सकी।

इसी प्रकार यात्री-बसों की संख्या में भी वृद्धि हुई। सन् १९४७-४८ ई० में ऐसी बसों की संख्या ५११ थी, मगर सन् १९५०-५१ ई० में यह संख्या १,३०४ हो गई। सरकारी बसों के मार्गों में भी वृद्धि हुई है। सन् १९४७-४८ ई० में यात्री-बसें ७० मार्गों पर चल रही थीं, किन्तु अब सन् १९५०-५१ में ये बसें ४,६६५ मार्गों पर चल रही हैं। सन् १९४८-४९ ई० में १.२ करोड़ यात्रियों ने इन बसों से यात्रा की। सन् १९५०-५१ ई० में इन यात्रियों की संख्या बढ़कर ३.८ करोड़ हो गई।

इन बसों का प्रबन्ध सुचारु एवं सक्षम ढंग पर करना था, ताकि इनका सिलसिला बराबर बना रहे। फलतः इनके प्राविधिक क्षेत्र का संगठन करना पड़ा। गाड़ियों की मरम्मत और उनके रख-रखाव के लिए कारखाने स्थापित करने पड़े। साथ ही गाड़ियों के ढाँचे तैयार करने और बड़ी-बड़ी मरम्मत के लिए कानपुर में केन्द्रीय-वर्कशाप स्थापित की गई, जिसमें शहर के अन्दर और एक शहर से दूसरे शहर को चलने वाली आरामदायक गाड़ियां तैयार होती हैं। आठ क्षेत्रीय कारखानों के अलावा गाड़ियों की दैनिक देखभाल के लिए ४० उप-क्षेत्रीय कारखाने और मरम्मत के केन्द्र खोले गये। केन्द्रीय वर्कशाप की योजना में कारीगरों को ट्रेनिंग देने की व्यवस्था भी है।

सड़क-यातायात सर्विस के राष्ट्रीयकरण के साथ ही साथ यात्रियों को आराम देने और उनकी सुविधा के लिए अन्य कई बातों की ओर भी सरकार को ध्यान देना पड़ा और उसने जनता को ऐसी-ऐसी सुविधाएं दीं, जिन्हें यातायात सेवाओं को उपयोग में लाने वाले व्यक्ति जानते भी न थे। पीने के पानी की व्यवस्था की गई है और रोडवेज के प्रमुख स्टेशनों पर मुसाफिरखानों का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। इसके अलावा महिलाओं के लिए अतिरिक्त टिकटघर, जगह रिजर्व कराने की व्यवस्था और गाड़ियाँ छूटने के समय की पाबन्दी रोडवेज सर्विस की विशेषताएँ हैं। मेले आदि के अवसर पर अतिरिक्त बसों का विशेष प्रबन्ध किया जाता है। राष्ट्रीयकृत यातायात-योजना के प्रसार के सम्बन्ध में नागर जनता की भी उपेक्षा नहीं की गई हैं। सरकारी रोडवेज विगत वित्तीय वर्ष के अन्त तक लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस और बरेली में सिटी सर्विस का और देहरादून, फर्रुखाबाद और मथुरा में उप-नगर सर्विसों का संचालन

कर रहा था। मेरठ, लखनऊ, कुमायूं, कानपुर, बरेली और आगरा क्षेत्रों में इसकी टैक्सियाँ भी चल रही थीं।

राष्ट्रीयकृत यातायात को उत्तरोत्तर विकसित करना सरकार की नीति है। फलतः जिन मार्गों पर सरकारी बसें नहीं चलतीं वहां अब भी निजी गाड़ियां चल रही हैं और उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। युद्धोत्तर कालीन आर्थिक विकास तथा उत्तर प्रदेशीय सरकार की अनेक विकास योजनाओं को देखते हुए यातायात की सुविधायें बढ़ाने की बड़ी मांग थी। फलतः इस समय यातायात की जितनी गाड़ियाँ चल रहीं हैं उनके देखने से पता चलता है कि सन् १९४६-४७ ई० की तुलना में उनकी संख्या अब प्रायः चौगुनी हो गई है। सन् १९४६-४७ ई० में निजी स्वामियों के मालिक ६९० यात्रिक बसें, १,२९१ पब्लिक कैरियर, ७८४ प्राइवेट कैरियर, १५८ टेंके की गाड़ियां और ४ लाश की गाड़ियाँ चला रहे थे। इनकी तुलना में सन् १९५०-५१ ई० में यात्रीगाड़ियों की संख्या २,३९७, पब्लिक कैरियर की ४,४१९, प्राइवेट कैरियर की १,९०१, टेंके की गाड़ियों की १२९, टैक्सियों की ३३३ और लाश की गाड़ियों की ४ हो गई। यह संख्या सरकारी रोडवेज की १,३०४ बसों, ५२० ट्रकों और ५० टैक्सियों और सरकार के अन्य विभागों की १,६०० गाड़ियों के अलावा है। इस काल में बेघर लोगों को प्रायः ४०० परमिट उन गाड़ियों के अलावा दिये गये, जो उन्होंने स्थानीय निवासियों से प्राप्त किये थे। राजनैतिक पीड़ितों को भी ९०० परमिट दिये गये।

जहाँ तक उत्तर प्रदेशीय सरकार के यातायात विभाग के कार्यों की वित्तीय स्थिति का सम्बन्ध है, विवरणों से पता चलता है कि रोडवेज की कुल जमा पूँजी में भी वृद्धि हुई है। यह पूँजी सन् १९४७-४८ ई० में ७७,७३,७३६ रु० थी जो सन् १९५०-५१ ई० में बढ़कर ३,१३,६२,३५२ रु० हो गई। वसूल की गई कुल प्राप्तियां जो सन् १९४७-४८ ई० में ३९,५७,३६६ रु० थी, वह सन् १९५०-५१ ई० में बढ़कर २,९९,८८,४९८ रु० हो गई। मोटर व्हीकिल्स ऐक्ट और रूल्स के अधीन वसूल किया गया धन जो सन् १९४७-४८ ई० में २,७९,०४५ रु० था टैक्सेशन ऐक्ट, सन् १९५०-५१ ई० में बढ़कर ७,०३,६६८ रु० हो गया। यू० पी० मोटर व्हीकिल्स सन् १९३५ ई० और तत्सम्बन्धी नियमों के अधीन सन् १९४६-४७ ई० में कुल प्राप्तियां २३,४४,६०२ रु० थीं, जो बढ़कर सन् १९५०-५१ ई० में ५०,७९,२२१ रु० हो गयीं। यातायात विभाग की जाँच पड़ताल शाखा ने मोटर व्हीकिल्स ऐक्ट और रूल्स के उल्लङ्घन सम्बन्धी कई मामलों का पता चलाया, परिणामतः उन लोगों के खिलाफ कानूनी कार्यवाही की गई, जिन्होंने ऐक्ट और नियमों का उल्लङ्घन किया था। सन् १९४६-४७ ई० में ऐसे मामलों की संख्या ६,४९७ थी और सन् १९५०-५१ ई० में १०,८७४।

उत्तर प्रदेशीय राष्ट्रीयकृत मोटर यातायात के सरकारी कर्मचारी

यातायात मन्त्री

|

यातायात कमिश्नर

- १ डिप्टी यातायात कमिश्नर राजमार्ग (Roadways)
- २ ,, ,, टैक्नीकल (Technical)
- ३ ,, ,, वर्कशाप (Work shop)
- ४ ,, ,, इन्फोर्समैण्ट (Enforcement)
- ५ ,, ,, प्रबन्ध (Administration)
- ६ ,, ,, इमारत (Budildings)

उपर्युक्त प्रत्येक विभागीय उप-कमिश्नर की सहायता के लिए एक सहायक कमिश्नर होता है। वर्कशाप विभागीय सहायक कमिश्नर की देख-रेख में केन्द्रीय वर्कशाप कानपुर तथा स्थानिक वर्कशाप कार्य करते हैं। रोडवेज विभागीय सहायक कमिश्नर की देख-रेख में राज्य के सातों क्षेत्र के सात जनरल मैनेजर कार्य करते हैं।

प्रत्येक क्षेत्र के जनरल मैनेजर के नीचे दो ट्रैफिक मैनेजर, एक सेक्रेटरी, अकाउन्ट्स आफीसर तथा सर्विस मैनेजर कार्य करते हैं। ट्रैफिक मैनेजर की देख-रेख में एक सीनियर स्टेशन सुपरिन्टेन्डेन्ट—जूनियर स्टेशन इञ्चार्ज—बुकिंग स्टाफ़ तथा ट्रैफ़िक स्टाफ़ कार्य करता है। सर्विस मैनेजर की देख-रेख में सीनियर फ़ोरमैन तथा जूनियर फ़ोरमैन कार्य करते हैं।

प्रारम्भ में यात्रियों से ६ पाई प्रतिमील लोअर क्लास के लिए तथा ९ पाई प्रति मील अपर क्लास के लिए भाड़ा लिया जाता था, बाद में लोअर क्लास का भाड़ा ७॥ पाई प्रति मील कर दिया गया। माल ढोने के लिए १२ आना प्रति मील के हिसाब से ठेला किराये पर किया जा सकता है।

भारतीय राज्यों में मोटरगाड़ियों की संख्या

भारतीय राज्यों में मोटरगाड़ियों की संख्या (१९४९)।

प्रदेश			संख्या
(अ) राज्य			
आसाम	....	....	११,०४९
बिहार	....	....	१४,४३६
बम्बई	....	....	५९,३८७
मध्य प्रदेश	....	....	११,०४७
मद्रास	....	....	३४,४९३
उड़ीसा	....	....	४,६८३
पंजाब	....	....	७,९४९
उत्तर प्रदेश	....	....	३६,४६१
पश्चिमी बंगाल	....	....	४५,४१४
(ब) राज्य			
हैदराबाद	....	....	१३,७७६
जम्मू और काश्मीर	....	....	२,५३२
मध्य भारत	....	....	३,६८७
मैसूर	....	....	८,४९९
पेप्सू	....	....	२,५८८
राजस्थान	....	....	३१,०२५
सौराष्ट्र	....	....	५,८००
ट्रावनकोर कोचीन	....	....	४,२८४
(स) राज्य			
अजमेर	....	....	१,२६५
भूपाल	....	....	८२५
बिलासपुर	....	....	१७

प्रदेश			संख्या
कुर्ग	....	....	६५८
दिल्ली	....	....	१२,३९९
हिमाचल प्रदेश	....	....	३५४
कच्छ	....	....	५६८
मनीपुर	....	....	८४०
त्रिपुरा	....	....	२३३
विन्ध्य प्रदेश	....	....	१,७८०
योग	....	....	२,६८,६६२

Q. 61. Write a note on Automobile Industry in India.

मोटर निर्माण उद्योग (Automobile Industry)

नागरिकों की यात्रा के लिये और भारतवर्ष की बढ़ती हुई सेना के लिए मोटरों की अत्यन्त आवश्यकता है, इसलिए मोटरें और लौरियाँ बनाने के कारखाने बनाने पर जितना जोर दिया जाय कम है। इसकी राष्ट्रीय महत्ता को देखते हुए इस प्रश्न पर १९३८ में राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) में विचार किया गया और सन् १९३९ में एक योजना स्वीकार कर ली गई। श्रीयुत बालचन्द हीराचन्द ने इस विषय में प्रमुख भाग लिया और एक ज्वाइंट स्टौक कम्पनी स्थापित करने का प्रस्ताव किया, जिसमें २ लाख मोटरें प्रतिवर्ष बनें। सन् १९४१ में भारत सरकार ने एक कारखाना स्थापित करने की योजना पर विचार किया, जिसमें मोटरों के ६० प्रतिशत पुर्जे भारतवर्ष में ही बनाए जाएँ। जो पूँजी इस उद्योग में लगाई जाय उस पर भारत सरकार १० वर्ष तक एक नियमित ब्याज की दर देने के लिए प्रस्तुत थी, परन्तु भारतवर्ष में तैयार की हुई मोटरों को नागरिक और सैनिक कार्यों के लिए मोल ले लेने को तैयार न थी। भारत सरकार ने कारीगर तक देने का बचन नहीं दिया। हाल ही में बिड़ला ब्रदर्स ने हिन्दुस्थान मोटर्स लिमिटेड नाम की एक कम्पनी स्थापित की है। परन्तु अभी तक मोटर बनाने की मशीनें नहीं लगी है। इस राष्ट्रीय उद्योग के लिए देश में कच्चे माल और मजदूरों की कमी नहीं है। यह आशा की जाती है कि हमारी अपनी सरकार भारत में मोटर बनाने के कारखाने स्थापित करने में कोई कसर उठा न रखेगी और सड़क द्वारा यातायात की अवहेलना न की जायगी।

मोटर निर्माण उद्योग ने गत तीन वर्षों में पर्याप्त प्रगति की है। आजकल ट्रक और कारों के विभिन्न भागों के जोड़ने में १३ कारखाने कार्य कर रहे हैं। इनमें से ५ मुख्य कारखाने १० करोड़ पूँजी से अपना कार्य कर रहे हैं। इस उद्योग की उत्पादन क्षमता भी काफी बढ़ गई है जैसा कि निम्नांकित तालिका से ज्ञात होता है :—

सन्			उत्पादन इकाइयों में	
१९४७	....	....	४७,७००	
१९५०	....	....	८,२५०	
		कार	ट्रक	योग
१९४९	....	.... ६,६७१	१५,१३७	२१,८०८
१९५१ (प्रथम ९ माह)		.... ८,८४२	७,७११	१६,५५३

इस समय भारत २०,००० कारों तथा १५,००० ट्रकों का वार्षिक आयात करता है, जिसके लिए भारत को करीब १७'५ करोड़ रुपया विदेशों को देना पड़ता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि १९५४ तक भारत में करीब ४०,००० कारों तथा ट्रकों की आवश्यकता पड़ेगी, इस हिसाब से विशेषज्ञों की धारणा है कि आगामी पाँच से दस साल के अन्दर भारत इस दिशा में स्वावलम्बी हो जायगा।

Q. 62. Discuss, should the organisation responsible for the management of nationalised road transport in the state, be under the direct control of the Govt. or an independent transport corporation?

यह प्रश्न कि राष्ट्रीयकृत सड़क यातायात का प्रवन्ध एक ऐसी संस्था द्वारा हो, जो सरकार के अधीन रहे या पूर्ण स्वतन्त्र हो, एक विवादपूर्ण विषय है। किसी भी संस्था की उपयोगिता किसी निश्चित उद्देश्य पूर्ति की सफलता पर निर्भर होती है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने सड़क यातायात की राष्ट्रीयकरण की नीति को स्वीकार कर लिया है और अधिकांश सड़कों पर सरकारी बसों का प्रयोग होने लगा है। इस समय यह सम्पूर्ण यातायात, यातायात विभाग द्वारा संचालित हो रहा है। और यह यातायात विभाग, यातायात-मन्त्री की देख-रेख में कार्य करता है। सरकारी रोडवेज का सर्वोच्च आफीसर ट्रान्सपोर्ट कमिश्नर कहलाता है जो सबसे उच्च प्रशासक तथा राज्य का सर्वोच्च यातायात अधिकारी है। यह ट्रान्सपोर्ट कमिश्नर मन्त्री के अधीन कार्य करता है। इसकी नीति मन्त्रिमण्डल द्वारा निर्धारित की जाती है। इसलिये यातायात सम्बन्धी निर्णय करने में काफी देर लग जाती है। बहुत से विदेशों में इस प्रकार के यातायात प्रवन्ध करने के लिए statutory corporations की स्थापना की गई है। उत्तर प्रदेश की रोडवेज के लिए भी इसी प्रकार की संस्था की आवश्यकता है।

राज्य सरकारों को इस प्रकार की संस्था स्थापित करने को केन्द्रीय सरकार ने सन् १९४८ ई० में रोड ट्रान्सपोर्ट कोरपोरेशन ऐक्ट पास कर दिया। इस ऐक्ट के अनुसार राज्य सरकारों को सड़क यातायात के उचित विकास के लिए statutory transport boards स्थापित करने का अधिकार दिया गया। बम्बई, मद्रास और पश्चिमी बंगाल के राज्यों ने इस प्रकार के बोर्ड स्थापित कर लिये हैं। ये संस्थाएं राजनीति से पृथक रह कर स्वतन्त्रता से राष्ट्रीय सड़क यातायात को व्यापारिक आधार पर संचालित करेंगी। ये संस्थाएँ कृषि, उद्योग, व्यापार तथा साधारण जनता के हितों का ध्यान रक्खेंगी।

इस प्रकार की संस्था के मेम्बर अनुभवी व्यक्ति होंगे। एक सदस्य राजस्व का विशेषज्ञ होगा, और रेल तथा सड़क यातायात में उचित समन्वय स्थापित करने के लिए एक सदस्य रेलवे द्वारा मनोनीत किया जायगा, एक श्रमिकों का प्रतिनिधि रहेगा। कोई भी सरकार स्वयं यातायात की समस्याओं को हल करने में अपना पूरा ध्यान इस ओर नहीं लगा सकती। इसलिए यातायात विशेष कर राष्ट्रीय यातायात को नियन्त्रित करने के लिये एक स्वतन्त्र संस्था की आवश्यकता हैं।

Q. 63. Indicate the present position in respect of the maintenance and developments of roads in India (A.U. 1953.)

यदि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से देखा जाय, भारत सड़क यातायात में आधुनिक देशों से बहुत पिछड़ा हुआ है। इस देश में अच्छी कंक्रीट की सड़कें प्रायः नहीं के बराबर हैं। देश के विस्तार अथवा यहाँ की जनसंख्या की दृष्टि से सड़कें बहुत ही कम है, जो

कुछ है वे भी टूटी-फूटी तथा असन्तोषजनक अवस्था में। नीचे की तालिका में भारत की सड़क-स्थिति अन्य देशों की तुलना में स्पष्ट की गई है :—

सड़कों की लम्बाई मीलों में—

देश		प्रतिवर्ग मील क्षेत्रफल के पीछे		प्रति एक लाख जनसंख्या पीछे
जापान	....	३.००	....	६६४
इंग्लैण्ड	....	२.०२	....	३६२
फ्रान्स	....	१.८४	....	६३४
सं० रा० अमेरिका		१.०२	....	२४६६
जर्मनी	....	०.९५	....	८६०
इटली	....	०·८६	....	२४७
भारत	....	०·२२	....	७२

इसी प्रकार मोटरगाड़ियों की दृष्टि से भी हमारा देश बहुत पीछे है जैसा कि निम्न तालिका से प्रकट होता है :—

देश		प्रति लाख जनसंख्या पीछे मोटर गाड़ियों की संख्या
सं० रा० अमेरिका	....	२५८०१
कनाडा	....	१३०००
आस्ट्रेलिया	....	१६६६६
न्यूजीलैण्ड	....	१४२८५
ग्रेट ब्रिटेन	....	५५६०
दक्षिणी अफ्रीका	....	४०२७
फ्रांस	....	३५६३
लंका	....	४६७
भारत	....	६३

उपर्युक्त तालिकाओं से स्पष्ट है कि हमारा देश सड़कों के सम्बन्ध में बहुत पीछे है। वास्तव में बृटिश राज्य में शहरी सड़कों तथा बड़े-बड़े शहरों को मिलाने वाली सड़कों पर ही अधिक ध्यान दिया गया, ग्रामीण सड़कों की ओर तो बिल्कुल उदासीनता रही, इसीलिये सड़कों का विकास इतना कम हुआ है। यहां सड़कों का योजनाबद्ध विकास तो नागपुर योजना से प्रारम्भ होता है।

सड़कों के भावी विकास के प्रश्न पर विचार-विनिमय के लिये १९४३ ई० में नागपुर में भारत के विभिन्न प्रान्तों तथा राज्यों के प्रधान इंजीनियरों का एक बृहत् सम्मेलन हुआ, जिसमें आगामी २० वर्ष की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सड़क-निर्माण सम्बन्धी एक योजना स्वीकृत की गई। इस योजना के अनुसार ४४८ करोड़ रुपयों का व्यय करके ४ लाख मील लम्बी सड़कों के निर्माण करने का प्रस्ताव किया गया। इस सम्मेलन में भारत सरकार से एक केन्द्रीय सड़क बोर्ड की स्थापना करने का अनुरोध किया गया, जिसका कार्य सड़क सम्बन्धी समस्याओं पर सरकार को सलाह देना था।

भारत का विभाजन हो जाने से अब इस योजना में कुछ परिवर्तन हो गया है। अब ३७३ करोड़ रुपये के व्यय से भारत सरकार को केवल ३ लाख ११ हजार मील लम्बी सड़कें बनानी हैं। इस सम्मेलन में केन्द्रीय सड़क-शोध संस्था आदि स्थापित

करने पर भी अधिक बल दिया गया था। भारत सरकार इस योजना को पूर्ण रूप से कार्यान्वित न कर सकी, फिर भी दस वर्ष के आधार पर ३०० करोड़ रुपये व्यय करके एक सड़क-निर्माण योजना बनाई गई, पर यह योजना भी आर्थिक कठिनाई तथा विशेषज्ञों के अभाव के कारण सफल न हो सकी। नागपुर योजना के अनुसार देश की सड़कें ४ भागों में विभाजित की गई हैं :—

(१) राष्ट्रीय राजमार्ग :—इनके अन्तर्गत वे सड़कें आती हैं, जो आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से विभिन्न राज्यों की राजधानियों, केन्द्रीय औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों और मुख्य-मुख्य बन्दरगाहों को एक दूसरे से मिलाती हैं।

(२) प्रान्तीय राजमार्ग :—इस वर्ग में वे सड़कें सम्मिलित की जाती हैं, जो प्रत्येक प्रान्त में व्यापार एवं उद्योग की दृष्टि से उस देश की मुख्य सड़कें समझी जाती हैं।

(३) जिलें की सड़कें :—इनका कार्य जिले के मुख्य नगरों को मिलाने तथा जिले के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यातायात की सुविधा प्रदान करना है और ये प्रान्तीय सड़कों से मिल जाती हैं।

(४) ग्राम्य सड़कें :—ये सड़कें ग्रामीण क्षेत्र में थोड़ी-थोड़ी दूर की होती हैं, जो गाँवों को आपस में एक दूसरे से मिलाती हैं। इनका सम्बन्ध निकटवर्ती प्रान्तों की सड़कों तथा जिले की सड़कों से होता है।

नागपुर सम्मेलन के आधार पर १९४७ ई० में केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय राजमार्ग बनाने तथा उनको सुव्यवस्थित रखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार ने यह निश्चय किया है कि वह किसी मार्ग को राष्ट्रीय राजमार्ग घोषित करने तथा उसके निर्माण में प्राथमिकता देने के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है और यद्यपि इनका निर्माण-कार्य प्रान्तीय सार्वजनिक कार्य विभाग ही करेगा, परन्तु व्यय आदि बातों पर केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक है, और केन्द्रीय सरकार अपनी इच्छानुसार यदि उचित समझे तो इन सड़कों के निर्माण व देख-भाल करने के लिये अपना निजी विभाग भी स्थापित कर सकती है। इसी प्रकार कर आदि के सम्बन्ध में भी सरकार ने अपने अधिकार सुरक्षित रखे हैं।

भारत सरकार की इस घोषणा के बाद प्रान्तीय सरकारों ने भी सड़क-निर्माण के लिये पंच वर्षीय योजनाएँ बनाईं, परन्तु मुद्रा संकुचन नीति के कारण सरकार को व्यय में कमी करनी पड़ी। इसके अतिरिक्त सड़क निर्माण सम्बन्धी मशीनों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के अभाव के कारण सड़कों का निर्माण संतोषजनक न हो सका।

भारतवर्ष की समस्त पक्की सड़कों की लम्बाई ९५ हजार मील हैं। ये सड़कें सब मौसमों में काम नहीं आ सकती हैं, और पूरे साल सुरक्षित भी नहीं रहती हैं। अनेक नदियों और चश्मों के होने के कारण मद्रास, कलकत्ते वाली सड़क में हर जगह पुल नहीं हैं।

दूसरी सड़कों पर भी बाढ़ के कारण रास्ते रुक जाते हैं, इसलिये दूसरी तीन सड़कों के भी सुधार की आवश्यकता है। सबसे अच्छी और अनेक सहायक सड़कें दक्षिण में हैं। इस विषय में सबसे पिछड़े हुए भाग राजपूताना, सिन्ध और पंजाब के कुछ हिस्से, उड़ीसा और बंगाल हैं। सड़कों की इस कमी के कारण स्पष्ट हैं। राजपूताना, सिन्ध और पंजाब में सहायक सड़कें इस कारण कम हैं कि वहाँ जनसंख्या कम है और भूमि मरुस्थली है। बंगाल और उड़ीसा में सहायक सड़कें इस कारण

कम हैं कि वहाँ की नदियों और चश्मों पर प्रायः पुल नहीं है और अनेकों पर पुल बन ही नहीं सकते। हिमालय की पहाड़ियों में भी सड़कों की कमी है, क्योंकि वहाँ अच्छी सड़कें बनाना कठिन है। कच्ची सड़कें काफी हैं, उनकी लम्बाई २ लाख मील है और उनमें से कुछ पर तो सिवाय वर्षा के मोटरें भी चल सकती हैं। यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि भारत के बढ़ते हुए व्यापार और उनकी [illegible] के लिये सड़कें अपर्याप्त हैं। कृषि के रायल कमीशन के मतानुसार भारतवर्ष में प्रति सौ वर्ग मील में केवल २० मील सड़कें हैं, और अमरीका में प्रति १०० वर्ग मील में ८० मील हैं। जो कुछ सड़कें हैं भी उनकी देख-भाल भली-भाँति नहीं होती। जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों की सड़कों की मुख्यतः यह दशा है। जनसंख्या के बढ़ने और अनाज के व्यापार के बढ़ने से उन पर आना-जाना बढ़ता जाता है, और उनकी दशा बिगड़ती जाती है। इनमें से बहुत-सी सड़कें तो कच्चे रास्तों से भी अधिक खराब हैं। जब कोई मोटर लौरी निकलती है तो १५ मिनट तक यात्री को आँखें खोलना दूभर हो जाता है। उड़ती हुई धूल केवल आँखों व फेफड़ों के लिये ही हानिकारक नहीं होती, बल्कि उसके कारण इन बुरी सड़कों पर दुर्घटना भी हो जाती है। यह सत्य है कि इन सड़कों की शोचनीय दशा का कारण उनके प्रबन्धक बोर्डों की हीन आर्थिक दशा है, परन्तु यह भी सत्य है कि उनका प्रबन्ध भी अत्यन्त दोषपूर्ण है। जो कुछ थोड़ा-बहुत धन इन बोर्डों के पास होता है, उसका भी सदुपयोग नहीं किया जाता। बोर्ड के सदस्य अधिकतर अनपढ़ होते हैं और प्रायः जातीय आधार पर चुने जाते हैं। शिक्षित और कुशाग्र बुद्धि मनुष्यों को वोटें इस कारण नहीं मिलतीं कि वे इन जातियों के नहीं हैं, जिनका बहुमत है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि अनेक बोर्डों के अध्यक्ष बजट की बातों को नहीं समझते, न वे राष्ट्र-निर्माण की महत्ता को ही समझते हैं। सर केनथ मिचल (Sir Kenneth Mitchell) जो भारत सरकार की सड़कों द्वारा यातायात का [illegible] (Controller) था, उसने यह ठीक प्रस्ताव किया था कि जिलों की सड़कें प्रान्तीय सड़क विभागों को दे दी जायें, और जिला बोर्डों और म्युनिसिपल बोर्डों पर उनके बनवाने या मरम्मत कराने का भी उत्तरदायित्व न रहे।

समिति ने इस मामले की अच्छी तरह जाँच की और यह बतलाया कि भारतवर्ष में सड़कों का इतना विस्तार हो गया है कि उनका प्रबन्ध जिला बोर्डों और म्युनिस्पल बोर्डों की आर्थिक शक्ति के बाहर होता जा रहा है। वह राष्ट्रीय-हित की चीज होती जा रही हैं और इसलिये किसी अंश तक उनका भार केन्द्रीय मालगुजारी पर उचित है। सड़कों के विस्तार से केन्द्रीय सरकार की आर्थिक दशा, मोटर और पैट्रोल व रेलों द्वारा यातायात के करों की वृद्धि के द्वारा सुधरती है, इसलिये यह बहुत ज्यादा सिफारिश की गई कि सब मुख्य सड़कों के बनाने और उनके आर्थिक प्रबन्ध करने का भार सरकार पर हो। देहात की सड़कें बनाने के लिये जिला बोर्डों को प्रान्तीय सरकारों को काफी आर्थिक सहायता करनी चाहिये। यदि रेलवे विभाग भी [illegible] सड़कों को बनाने में चन्दा दे तो और अच्छा हो, क्योंकि ये सड़कें रेलों के लिये उन स्थानों से माल लावेंगी जहाँ पर रेलें नहीं हैं। समिति ने माल पर कर लगाने के अतिरिक्त सड़कों का और कोई कर नहीं लगाया। समिति कर्जा लेकर नई सड़कें बनाने के पक्ष में भी न थी, क्योंकि प्रान्तों पर बहुत दिन तक इसका प्रभाव रहेगा। केवल वे ही सड़कें कर्जा लेकर बनाई जायें, जिनसे सूदसहित कर्जा चुकाने की आमदनी हो सके। सड़कों को एक दूसरे से सम्बन्धित करने के लिये नदियों पर पुल कर्जा लेकर बना लिये जायें, क्योंकि उनका कर्जा sinking fund सिंकिंग फण्ड द्वारा चुकाया जा

सकता है, और उनकी मरम्मत में नाम मात्र का ही खर्चा होता है। सड़क-विस्तार-समिति की ये सब सिफारिशें एक प्रस्ताव के रूप में सर बी०एन० मित्रा द्वारा केन्द्रीय धारा-सभा में ११ सितम्बर १९२९ को पेश की गईं। आर्थिक नियम (Finance Act) के द्वारा मार्च १९२९ में कमेटी की सिफारिश मान ली गई, और मोटर स्प्रिट पर आयात और आबकारी का कर चार आने गैलन से बढ़ाकर छह आने गैलन कर दिया गया। प्रस्ताव में यह भी था कि यह बढ़ा हुआ कर कम-से-कम ५ वर्ष तक लगता रहे और एक मुश्त सहायता के रूप में सड़क-विस्तार के लिये दे दिया जाय और सड़क-विस्तार के हिसाब में यह रकम लगा दी जाय तथा इस हिसाब की रकम जो खर्च न हो वह हर साल जमा होती चली जाय। प्रस्ताव में लोक सम्मति के अनुसार यह भी था कि सड़कों के वास्ते एक स्थायी समिति प्रतिवर्ष बनाई जाय, जिसमें कि चुने हुए और केन्द्रीय धारा-सभा द्वारा भेजे हुए सदस्य हों, जो सरकार को सड़कों के सम्बन्ध में सब मामलों में राय दें। विस्तार समिति की सिफारिश के अनुसार समय-समय पर सड़कों के विषय में सभाएँ हों, जिनमें समस्त सरकारों के प्रतिनिधि हों और जिनमें सार्वजनिक हितकारी विषयों पर वाद-विवाद हों। भारतीय सरकार ने ये सभाएँ बुलाने के लिये एक सड़कों का इंजीनियर नियुक्त किया।

सड़क-विस्तार का हिसाब

ऊपर लिखे हुए प्रस्ताव में फरवरी सन् १९३७ में संशोधन किया गया कि पैट्रोल कर में से १५ प्रतिशत मुख्य बातों के लिये रखकर उसका शेष प्रान्तों और रियासतों में उनके पेट्रोल की खपत के अनुपात के अनुसार बाँट दिया जाय। यह धन सड़कों की योजना में व्यय किया जाय परन्तु मामूली मरम्मत में खर्च न किया जाय। पहली अक्टूबर १९३१ से पैट्रोल पर अतिरिक्त कर (सर चार्ज) में से जो भाग रोड फण्ड को दिया जाता था वह बढ़ाकर ढाई आने गैलन कर दिया गया। मार्च सन् १९४७ के अंत तक फण्ड में लगभग २७ करोड़ रुपया आ चुका था, और लगभग ५ करोड़ सुरक्षित कोष में जमा किया गया शेष २२ करोड़ रुपया प्रांतों को बाँटा गया और छोटे-छोटे सड़क कार्यों पर व्यय किया गया। इसके अतिरिक्त प्रांत, हिसाब के अपने भाग में से उधार भी ले सकते थे। पेशगी रुपया अतिरिक्त व्यय करने के लिये दिया जाता है और वह उस रुपये में से काटा जा सकता है, जो उन्हें भविष्य में सड़क फण्ड के हिसाब में से दिया जाय।

सड़क-प्रबन्ध

प्रबन्ध की दृष्टि से सड़कें प्रायः सरकार के ही हाथ में रही हैं। सड़कों के निर्माण तथा उनका ठीक-ठाक रखना प्रांतीय सरकारों के हाथ में रहा है। स्थानीय स्वराज्य की स्थापना के बाद कुछ सड़कें जिला तथा म्युनिसिपल बोर्डों के हाथ में भी आ गई हैं। प्रबन्ध की दृष्टि से आजकल की सड़कें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं।

(१) **राष्ट्रीय राजमार्ग** :—इनका प्रबंध, निर्माण तथा संरक्षण केन्द्रीय सरकार के हाथ में है।

(२) **प्रान्तीय राजमार्ग** :—इनका प्रबन्ध, निर्माण तथा संरक्षण अ,ब,स श्रेणी के राज्यों के हाथ में है।

(३) **जिला सड़कें** :—इनका प्रबंध, निर्माण तथा संरक्षण स्थानीय जिला बोर्डों के हाथ में होता है।

(४) नगरी सड़कें :—शहरों की सड़कों का प्रबंध शहर की स्थानीय संस्थाओं, कार्पोरेशन, म्युनिसिपैलिटी और नोटीफाइड एरिया आदि के द्वारा होता है।

(५) ग्राम्य सड़कें :—ग्रामीण क्षेत्रों में एक गांव को दूसरे गांव से मिलाने वाली सड़कें ग्राम पंचायतों के द्वारा निर्मित की जाती है और उन्हीं के हाथ में उनका प्रबन्ध तथा संरक्षण है।

पूँजी :—सड़क-निर्माण के लिये पूँजी के स्रोत भिन्न हैं, और उनका अध्ययन दुष्कर है। संक्षेप में इस पूँजी के निम्न स्रोत हैं :—

(१) पैट्रोल कर :—यह कर केन्द्रीय सरकार एकत्र करती है पर वह एक निश्चित योजना के अनुसार इससे होने वाली आय को विभिन्न राज्यों में सड़क-निर्माण-कार्य के लिये बाँट देती है।

(२) मोटर कर :—मोटरों पर प्रांतीय सरकारों द्वारा कर लगाया जाता है और इससे होने वाली आय को प्रांत अपने सड़क-निर्माण पर व्यय करता है।

(३) स्थानीय कर :—शहरों में प्रयोग किये जाने वाले यातायात के साधनों पर म्युनिसिपैलिटी आदि कर लगा देती है और इस प्रकार वसूल किया गया रुपया सड़कों के निर्माण पर व्यय किया जाता है।

(४) स्थानीय संस्था, विशेषकर जिला बोर्ड या ग्राम पंचायतें अपनी साधारण आय का कुछ भाग सड़क निर्माण के लिये अलग कर देती हैं।

(५) ऋण :—केन्द्रीय तथा राजकीय सरकारें स्थानीय संस्थाओं को सड़क निर्माण के लिये ऋण देती हैं।

सितम्बर सन् १९५० ई०, में मद्रास, कलकत्ता, लखनऊ व पटना में स्थित road boards के कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक Central Road Research Institute की स्थापना की गई, जिसका उद्घाटन प्रधान मन्त्री के द्वारा किया गया है। यह Institute देहली-मथुरा राजमार्ग पर स्थित है। इस संस्था का मुख्य कार्य सड़क-निर्माण तथा सड़क-सामग्री पर विभिन्न प्रकार के अनुसंधान करना है। पुलों के रूपान्तर, सड़कों की चौड़ाइयां, धरातल, विभिन्न वाहनों का प्रभाव आदि अनेक विषयों का अध्ययन करके संस्था को इस प्रकार की सड़कें बनाने की खोज करने का कार्य सौंपा गया है जो सस्ती हों पर साथ ही साथ आधुनिक स्वयं-चालित गाड़ियों के भार को भली भांति सह सकें। यह संस्था Central Transport Ministry के द्वारा नियंत्रित की जाती है। इसे और भी ऐसी ही संस्थाओं का सहयोग प्राप्त है। इस संस्था के स्थापित करने में २९.९४ लाख रुपया खर्च हुआ है तथा यह देश की ११ राष्ट्रीय अनुसन्धानशालाओं में आठवीं है। इस संस्था का कार्य चार भागों में विभाजित है—प्रथम विभाग में सड़क-निर्माण में उपयोग किये जाने वाले यन्त्रों के बारे में खोज-बीन होती रहती है, दूसरे तथा तीसरे विभागों में मिट्टी, पत्थर तथा सड़क बनाने की अन्य सामग्रियों पर अनुसंधान होता है, तथा चौथे विभाग में सड़क-निर्माण की नवीनतम प्रणालियों पर अन्वेषण होता है।

केन्द्र में सड़कों का प्रबन्ध Transport Ministry के अन्तर्गत आता है। इस Ministry के दो wings है। प्रथम Roads wing जो सड़क-निर्माण तथा विकास सम्बन्धी विषयों का उत्तरदायी है, तथा Transportwing जो अन्य सब विषयों के लिए उत्तरदायी है। रोड विङ्ग का consulting engineer सर्वोच्च अधिकारी होता है। इसके नीचे आठ उपभागों वाला सचिवालय तथा ५ विभागों वाला व्यावसायिक विभाग

होता है। इन विभागों में विभिन्न विषयों के विशेष अधिकारी कार्य करते हैं, जिसमें योजना अधिकारी मुख्य होता है। योजना अधिकारी Public works department को सहायता करता है, केन्द्रीय सरकार को राष्ट्रीय राजमार्गों की योजना बनाने, बड़े-बड़े पुलों के स्थान नियुक्त करने आदि विषयों पर परामर्श देता है। इसप्रकार Central Roads organisation राष्ट्रीय राजमार्गों से सम्बन्धित अनेक कार्यों के अतिरिक्त और भी बहुत सी समस्यायों को हल करता है। सड़कों के विकास, राज्य की सरकार को अपने क्षेत्रों में सड़कों के विकास के लिए अनुदान देने, सड़कों से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य करने, उनसे सम्बन्धित आँकड़े इकट्ठे करने, मशीनें प्राप्त करने तथा सड़कों के इन्जीनियरों को विदेशों में प्रशिक्षण के लिए भेजने आदि विषयों पर यह संगठन उचित सलाह देता है। इस संगठन द्वारा छोटे इन्जीनियरों को सड़कों व पुलों के designs से सम्बन्धित प्रशिक्षण देने का भी प्रबन्ध किया गया है जहाँ विभिन्न राज्यों के इन्जीनियर प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

Q. 64 What has been done for developing roads in India in recent years ?

वर्तमान योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार के द्वारा राष्ट्रीय सड़कों के लिए १० करोड़ रुपयों के व्यय का प्रबन्ध किया गया है। इस प्रकार की सड़कों के विकास के लिए विभिन्न राज्यों द्वारा २० करोड़ रुपयों की लागत वाली सड़क-विकास-योजना बनाई गई है। इसमें १० करोड़ रुपया केन्द्रीय सरकार प्रथम पंचवर्षीय योजना में खर्च करेगी, शेष द्वितीय पंच वर्षीय योजना के प्रथम दो वर्षों में। सन् १९५३ ई० तक २ वर्षों के अन्दर २६३ मील लम्बी नई राष्ट्रीय सड़कों का निर्माण हुआ। १८०० मील लम्बी सड़कों की मरम्मत की गई, १९ पुल बनवाये गये। इसके अतिरिक्त ५६० मील टूटी-फूटी सड़कें ठीक की जा रही हैं, १८०० मील लम्बी सड़कों की मरम्मत हो रही है, तथा ४३ पुलों का निर्माण किया जारहा है। एक पंचवर्षीय राष्ट्रीय राजमार्ग विस्तृत योजना बनाई गई है, जिसके अन्तर्गत १२५० मील लम्बी नई सड़कों का निर्माण, ६००० मील वर्तमान सड़कों की मरम्मत, तथा ७३ नये बड़े-बड़े पुलों का निर्माण किया जायगा। साथ ही साथ प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत का लक्ष्य—६४० मील लम्बी नई सड़कों का निर्माण, ४० नये बड़े पुलों का निर्माण तथा २५०० मील वर्तमान सड़कों का सुधार पूरा किया जायगा।

सन् १९५२–५३ ई० में ३७८·५५ लाख रुपये सड़कों की मरम्मत पर व्यय किये गये थे और १९५३–५४ में ३८६ लाख रुपये के लगभग व्यय किये गये। वर्तमान पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत २७ करोड़ रुपयों का व्यय तथा पंच वर्षीय विस्तृत योजना के अन्तर्गत ५४ करोड़ रुपयों के व्यय करने का निश्चय किया गया है। 'स' व 'द' राज्यों में तथा सीमान्त प्रदेशों में भी सड़कों के विकास पर उचित ध्यान दिया जा रहा है। इन भागों में विस्तृत सड़क विकास योजनाएँ बनाईं गई हैं। भूपाल दिल्ली, मनीपुर, त्रिपुरा, विन्ध्य प्रदेश, सिकिम आदि स्थानों पर सड़क विकास की अधिक विस्तृत योजनाएँ स्वीकृत करली गई हैं तथा अजमेर, कच्छ, हिमाचल प्रदेश, बिलासपुर तथा उत्तर-पूर्व-सीमांत एजेन्सी के भागों के लिए भी इसी प्रकार की योजनाएँ स्वीकृत करली गई हैं। जम्मू तथा काश्मीर राज्य में बैनिहल सुरंग का कार्य प्रारम्भ होगया है।

योजना समिति, यातायात, रेलवे, उत्पादन, उद्योग तथा व्यापार, खाद्य तथा कृषि, एवं श्रम मंत्रालय के प्रतिनिधियों की एक विचार समिति (Study group) बनाई गई

है जो यातायात की सुविधाओं के बारे में समय-समय पर उचित सुझाव देती रहा करेगी। इसी साल दिल्ली की मोटर यातायान सेवामें पर्याप्त उन्नति करने का प्रयत्न किया गया है। इसमें लगभग २० लाख रुपयों के व्यय का अनुमान है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सड़कें

देश के विभिन्न स्थानों की पृथकता तथा दूरी को समाप्त करने और ग्रामीण क्षेत्र के विकास के लिए सड़को का विस्तार करना अत्यन्त आवश्यक है। सन् १६२६ ई० में सड़कों के विकास के लिए 'नागपुर योजना' इस प्रकार की तैयार की गई थी कि आगामी २० वर्षों में देश के विकसित क्षेत्र का कोई भी ग्राम किसी न किसी राजमार्ग से ५ मील से अधिक दूर न रहे। राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने इस योजना की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया, टूटी-फूटी सड़कों की मरम्मत की गई, पुल बनवाये गये है। इस काल में ग्रामीणों की सहायता से काफी लम्बी सड़कों का निर्माण किया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में भारत में ६७००० मील पक्की तथा १४७००० मील कच्ची सड़कें थीं। योजना काल में ६००० मील लम्बी पक्की सड़कें तथा २०००० मील कच्ची सड़कें बनाने की सीमा निर्धारित की गई है। केन्द्रीय सरकार की राष्ट्रीय राजमार्ग विकास योजना के अंतर्गत ६४० मील नई सड़कें, ४० बड़े पुल बनाये गये है तथा २५०० मील लम्बी सड़कों की मरम्मत की गई है। इस योजना के अतिरिक्त भी बहुत सी सड़कों का सुधार किया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक नागपुर योजना का एक तिहाई लक्ष्य पूरा हो जाने की आशा की जाती है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सड़क विकास के लिए काफी धनराशि व्यय की जायगी। राष्ट्रीय सड़क विकास योजना के अन्तर्गत पहले तो प्रथम योजना में प्रारम्भ किया गया कार्य पूरा किया जायगा, इसके पश्चात् ६०० मील लम्बी missing links ठीक की जावेंगी, ६० बड़े-बड़े पुल बनाये जावेंगे, १३०० मील लम्बी सड़कें ठीक की जावेंगी तथा ३७५० मील लम्बी सड़कें पहले से अधिक चौड़ी की जावेंगी, और ५०० मील लम्बी सड़कें ऊँची श्रेणी में परिवर्तित की जावेंगी। इसके साथ ही साथ ११५० मील लम्बी और सड़कें बनाई जावेंगी। विभिन्न राज्यों के द्वारा कुल मिलाकर ८००० से लेकर ६००० मील तक नवीन सड़कें बनाई जायेंगी। राष्ट्रीय विकास तथा सामूहिक विकास क्षेत्रों में ग्रामीणों की सहायता से ग्रामीण सड़कों में काफी उन्नति होने की आशा है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक नागपुर योजना का दो-तिहाई लक्ष्य पूर्ण होने की आशा की जाती है।

वास्तव में गत वर्षों में सड़क-यातायात का काफी विकास हुआ है। सरकारी तथा व्यक्तिगत प्रयत्नों द्वारा बहुत से गाँव नगरों से जोड़ दिये गये हैं।

अधिकांश राज्य अपनी मोटर सेवा को नये क्षेत्रों में विकसित करने के लिए इच्छुक हैं। योजना आयोग के अनुसार मोटर-यातायात का राष्ट्रीयकरण धीरे-धीरे ही होना चाहिए। जहाँ राज्य मोटर नहीं चलाना चाहती वहाँ व्यक्तिगत लोगों को उदारता-पूर्ण लाइसेन्स दिये जाने चाहिए। सरकारी सड़क यातायात का प्रबन्ध corporations के द्वारा किया जाना चाहिए, जिसमें रेल, व्यक्ति तथा राज्य तीनों भागीदार बनाये जावें। द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल में माल-वहन का कार्य व्यक्तियों पर ही छोड़ने का सुझाव रक्खा गया है, राष्ट्रीयकरण की सिफारिश नहीं की गई। मोटर यातायात के विकास में बाधा न पड़ने देने के लिए double taxation से बचाने का भी प्रयत्न किया जायगा। मोटर व्हीकिल्स ऐक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार अन्तर्राज्य मोटर

यातायात पर नियन्त्रण रखने का प्रयत्न करेगी जिससे इसके विकास में कोई विशेष बाधा न पड़े। मोटर-यातायात के विकास के लिये योजना काल में विभिन्न राज्यों द्वारा लगभग ५००० मोटर बसें और चलाई जावेंगी। मरम्मत करने के बहुत से कारखाने भी खोले जावेंगे।

Q. 65. In what ways can coordination between road and rail transport be effected ? What are main difficulties in effecting coordination ? In what ways would trades and the travelling public benefit from such coordination ?

(A. U. 1945)

यातायात के विभिन्न साधनों में पारस्परिक सहयोग तथा समन्वय की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि इनकी आपसी प्रतिस्पर्धा आर्थिक दृष्टि से हानिकारक होती है। यातायात के विभिन्न साधनों का कार्य जनता की सेवा करना होता है और सेवा करने वाली संस्थाओं को इस प्रकार से कार्य करना चाहिए जिससे धन व समय का दुरुपयोग न हो और जनता को कष्ट न हो। रेल तथा सड़क यातायात के लिए भी यही बात है। रेलें तथा सड़कें यातायात की सेवा इस प्रकार से प्रदान करें कि न तो किसी क्षेत्र में माँग से अधिक पूर्ति हो, न किसी में माँग से पूर्ति कम हो। ऐसा न होना चाहिए कि किसी क्षेत्र में जनता की आवश्यकताओं से अधिक यातायात के साधन हों जो बेकार रहें और दूसरे क्षेत्र में यातायात के साधनों के लिए जनता त्राहि-त्राहि करे। यह तभी हो सकता है जब विभिन्न साधनों में पूर्ण सहयोग व समन्वय हो। रेल तथा सड़क-यातायात के मध्य समन्वय का प्रश्न अब पहले से सरल हो गया है। पहले रेलें व्यक्तिगत कम्पनियों के द्वारा चलाई जाती थीं, तथा मोटर बस भी व्यक्तिगत स्वामियों द्वारा चलाई जाती थीं, बहुत-सी सड़कें रेलवे लाइन के पास समानान्तर होने के कारण, रेलों से सीधी प्रतिस्पर्धा करने लगती थीं, जिसके फलस्वरूप दोनों के किराये इतने कम हो जाते थे कि लागत व्यय भी नहीं निकालती थीं, बाद में समझौता करना पड़ता था। अब इस प्रकार की समस्यायें प्रायः समाप्त-सी होगई हैं। सबसे प्रथम गलाघोंट प्रतिस्पर्धा ने लोगों की आँखें खोलदी हैं, उन्होंने समझ लिया है कि इससे यातायात-साधन-स्वामियों की ही हानि है। द्वितीय रेलें अब सरकार के द्वारा चलाई जाती हैं, सब रेलों का राष्ट्रीयकरण हो गया है, जिससे रेलों की आपसी प्रतिस्पर्धा का प्रश्न नहीं उठता। अधिकांश सड़कों पर भी राष्ट्रीयकृत मोटरों का आवागमन प्रारम्भ होगया है, इस प्रकार दोनों साधन सरकार अथवा जनता के हो गये हैं। दोनों साधनों के स्वामी अन्त में एकही हैं, यद्यपि रेलों का राष्ट्रीयकरण केन्द्रीय सरकार द्वारा तथा सड़क-यातायात का राष्ट्रीयकरण राज्य सरकारों द्वारा किया गया है, दोनों जनता की सरकारें हैं। इस प्रकार रेलों तथा सड़कों के समन्वय में कोई विशेष कठिनाई नहीं रही। हाँ, दोनों में क्षेत्र-विभाजन होना आवश्यक है। जिन क्षेत्रों में रेलें अपना कार्य करती हैं वहाँ सड़कों का विकास इस प्रकार से होना चाहिए कि सड़कें रेलों की पूरक बनें, न कि प्रतिस्पर्धा करने वाली। नई रेलवे लाइनों के बनाने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्या रेलवे लाइन के अनुसार काफी परिमाण में traffic मिल सकेगा। अब रेलों के स्थान पर सड़क-यातायात को ही लोग अधिक पसन्द करते हैं, अतः जहाँ कम यातायात की सम्भावना है वहाँ सड़कों का विकास किया जाना चाहिए। इसी प्रकार से वस्तुओं तथा यात्रियों का भी विभाजन किया जा सकता है। कुछ वस्तुएँ ऐसी हो सकती हैं, जिनके बारे में यह नियम बना दिया जावे कि वे केवल रेल द्वारा ही स्थानान्तरित की जा सकती हैं, तथा अन्य

वस्तुएँ केवल मोटर द्वारा ही ले जायी जा सकती है, इसी प्रकार [illegible] ऐसे नियम भी बनाये जा सकते है कि थोड़ी दूर के यात्री मोटरों से ही यात्रा कर सकेंगे। इन नियमों के बनाने में दो बातों को ध्यान में रखने की आवश्यकता पड़ेगी—(१) जनता को कोई विशेष कठिनाई न हो। (२) ये नियम यातायात व व्यापार में बाधक न हों। वर्तमान समय में यातायात के विभिन्न साधनों द्वारा समन्वय राज्य नियमों द्वारा ही लाया जा सकता है, फिर भी देख-भाल के लिए प्रत्येक क्षेत्र में एक यातायात समन्वयात्मक अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिए।

इस प्रकार के समन्वय से जनता की [illegible] कम हो जायगी, भाड़ा कम देना पड़ेगा, यातायात-सेवा नियमित रूप से [illegible] औद्योगिक तथा व्यापारिक विकास में सहायता मिलेगी।

Q. 66. Rail road competition has led to the improvement of rail services and if the road competition is removed, not only rural India will suffer but also there would be no incentive for improvement of rail services. Indicate the importance of this statement, and outline the present scheme of Road Operating Companies.

किसी ने कहा है कि युद्ध में जीवन है, शान्ति में मृत्यु। यह कथन ऊपर से असत्य-सा ज्ञात होता है, क्योंकि मृत्यु की सम्भावना युद्धकाल में ही अधिक हो जाती है, परन्तु जीवन में संघर्ष समाप्त हो जाय तो जीवन में निष्क्रियता आजाय और यही मृत्यु है। शरीर में जब तक हिम्मत है तभी तक मनुष्य जीता है, ज्यों ही साहस समाप्त हो जाय मृत्यु आ जाती है। यही बात आर्थिक क्षेत्र में है। आर्थिक क्षेत्र में भी जब तक युद्ध होता रहे, आर्थिक क्रियायें सजग रहती है और आर्थिक उन्नति बढ़ती जाती है। जहाँ यह युद्ध समाप्त हुआ, आर्थिक क्रियाएँ शिथिल पड़ जाती हैं और उन्नति रुक जाती है। आर्थिक क्षेत्र में युद्ध का तात्पर्य प्रतिस्पर्धा से होता है। आर्थिक क्षेत्र में जब तक प्रतिस्पर्धा हैं, तब तक आर्थिक तन्त्र अधिक क्रियाशील रहते है और समाज की उन्नति होती रहती है। प्रतिस्पर्धा समाप्त होने पर आर्थिक तत्वों की क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। उन्नति में अवरोध प्रारम्भ हो जाता है, इसके फलस्वरूप समाज की आर्थिक दशा गिर जाती है; उदाहरण के लिए एक स्थान पर दो खोमचे वाले हैं, तो जब तक वहाँ दोनों खोमचे वाले रहेंगे, प्रत्येक ग्राहक को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करेगा, वस्तु अच्छी बनायगा, ठीक तोलेगा, ग्राहकों को बैठने आदि की सुविधा देगा, और एक दूसरे की देखा देखी, सुविधाओं में वृद्धि ही होती जायगी। जब तक यह प्रतिस्पर्धा न्यायोचित रहेगी, दोनों को लाभ होगा। यदि दो खोमचे वाले के स्थान पर एक ही होता तो वह जैसे का तैसा ही रहता। किसी प्रकार की उन्नति न करता, क्योंकि इसकी उसे आवश्यकता ही प्रतीत न होती। वास्तव में आर्थिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा उन्नति की आधार-शिला है। यही बात रेल-सड़क प्रतिस्पर्धा के बारे में भी लागू होती है। यह कथन कि "रेल-सड़क प्रतिस्पर्धा रेल-सेवा की उन्नति का कारण बनी है और यदि, सड़कों की प्रतिस्पर्धा समाप्त कर दी जाय तो केवल भारतीय ग्रामीण क्षेत्र को ही हानि नहीं होगी वरन् रेल-सेवा को उन्नति करने का कोई प्रलोभन नहीं रह जायगा" सत्य है।

जब रेल-यातायात तथा सड़क-यातायात की आपस में प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो जाती है तो दोनों साधन यात्रियों तथा वस्तुओं को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। जब तक सड़क-यातायात का प्रारम्भ नहीं होता रेल का प्रायः

एकाधिकार रहता है और उस क्षेत्र में केवल एक वही साधन होने के कारण रेलवे अधिकारी यात्रियों एवं माल भेजने वालों के साथ मनमाना बर्ताव करते हैं—भाड़ा अधिक ले सकते हैं, समय का विशेष ध्यान न रक्खें, शीघ्र नष्ट होने वाले पदार्थों को देर से पहुँचावें, यदि हानि हो जावे तो उसकी चिन्ता न करें, जनता की शिकायतों की ओर ध्यान न दें। उन्हें कोई विशेष सुविधाएँ न दें। चूँकि एकाधिकारी होने के कारण अधिक भाड़ा लिया जा सकता है, इसलिए लागत-व्यय को कम करने का कोई विशेष प्रयत्न न किया जाय, जिससे रेलवे की क्षमता बढ़े और उनमें कुछ सुधार हो सके। इसके विपरीत यदि रेलवे लाइन से प्रतिस्पर्धा करने वाली सड़क पर मोटर-यातायात प्रारम्भ हो जाय और मोटर वाले किराया कम कर दें, तो रेलवे अधिकारियों को भी अपना किराया कम करना पड़ेगा, वरना उन्हें काम कम मिलेगा, हानि अधिक दिनों तक सही नहीं जा सकती, किराया कम होने के कारण आमदनी कम हो जायगी तो लागत व्यय कम करने के लिये प्रयत्न करना पड़ेगा, कार्य-प्रणाली में सुधार तथा मितव्ययिता करनी पड़ेगी तथा रेलों की कार्य-क्षमता अपने आप बढ़ जायगी। इसी प्रकार यदि मोटर सर्विस द्वारा शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुएँ आसानी से थोड़े समय में भेजी जा सकती हैं तो इस प्रकार की वस्तुएं मोटरों द्वारा ही भेजी जाने लगेंगी, रेलवे-लाइन को हानि होगी, अतः कम्पनी को इस बात का भी प्रयत्न करना पड़ेगा कि रेल-द्वारा भी वस्तुएं शीघ्रतापूर्वक भेजी जा सकें। इस प्रकार इस दिशा में भी प्रतिस्पर्धा के कारण ही रेलों को अपना सुधार करना पड़ेगा। मान लीजिये मोटर सर्विस यात्रियों को अधिक सुविधा देने लगें, माल को अधिक सावधानी से भेजने लगे, टूट-फूट का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने लगे तो रेल को भी यह सब करना पड़ेगा। इस प्रकार सड़क-यातायात की प्रतिस्पर्धा के कारण रेलों को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये उन्हें अपने में सुधार करना पड़ता है। रेल-निर्माण में इतनी अधिक पूँजी लग जाती है कि यह बेकार नहीं की जा सकती, इसलिये रेल-अधिकारियों के सामने केवल एक ही उपाय रह जाता है कि वह अपना लागत-व्यय कम करें, रेलों की कार्य-क्षमता बढ़ावें, और यात्रियों एवं व्यापारियों को अधिकाधिक सुविधायें प्रदान करें, जिससे उन्हें पूरा कार्य मिलता रहे, अतः यह सिद्ध है कि सड़क यातायात, रेलों में सुधार का कारण होता है।

इसी तरह से कथन का दूसरा भाग भी सत्य है। यदि सड़कों के प्रति स्पर्धा रोकदी जाय तो केवल ग्रामीण भारत को हीं हानि नहीं होगी, वरन् रेलों को सुधार के लिए कोई प्रलोभन नहीं रह जायगा। सड़कों को यदि विकसित न होने दिया जाय तो ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात का कोई आधुनिक साधन नहीं रह जाता। इसलिए इन क्षेत्रों का आर्थिक विकास भी भली भाँति नहीं हो सकता, अतः इन क्षेत्र-निवासियों का जीवन-स्तर सदैव नीचा ही रहेगा और इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र को हानि होगी, और साथ-ही-साथ एकाधिकार प्राप्त होने के कारण रेलवे कम्पनियाँ किसी प्रकार का सुधार करने में लापर्वाह हो जायँगीं, क्योंकि यहाँ यतायात का दूसरा साधन न होने के कारण traffic अपने हाथ से निकल जाने की कोई सम्भावना नहीं है, अतएव रेलवे-यातायात में किसी प्रकार की उन्नति या किसी प्रकार का सुधार न हो सकेगा।

युद्धोत्तरकाल में सरकार ने यह निश्चय कर लिया कि प्रतिस्पर्धा लाभदायक होते हुए भी, इस प्रतिस्पर्धा को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए, वरना रेलवें कंपनियों को बहुत हानि उठानी पड़ेगी, अतः सड़क-यातायात का राष्ट्रीयकरण करने का विचार किया गया तथा शन् १६४८ ई० में केन्द्रीय सरकार ने road transport cor-

poration Act. पास किया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य की सरकार को अपने-अपने राज्य में सड़क-यातायात के राष्ट्रीयकरण करने का अधिकार दिया गया। एक त्रिदली योजना बनाई गई, जिसके अनुसार भारतीय रेलें प्रान्तीय सरकारें तथा मोटरों के मालिक मिलकर सम्मिलित दायित्व में संयुक्त पूँजी वाली कम्पनी बनायें। तीनों संस्थाएँ एक निश्चित अनुपात में पूँजी लगावेंगी और उसी अनुपात में लाभ का वितरण होगा। मोटर-मालिकों ने इस योजना को नहीं माना, फलस्वरूप अन्त में राज्य की सरकारों को मोटर-यातायात अपने ही हाथ में लेना पड़ा। सब में प्रथम उत्तर प्रदेश ने राज्य मोटर-सेवा १९४७ ई० में प्रारम्भ की। इसके बाद और भी राज्य की सरकारों ने इस ओर कदम उठाया।

मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में संयुक्त पूँजी वाली कम्पनियाँ सरकारी मोटरों का संचालन करती है। दिल्ली, बम्बई तथा तिरुवाकुर राज्यों में उनका प्रबन्ध वैधानिक अधिकारियों और कच्छ में अवैधानिक अधिकारियों के हाथ में है। आसाम, बिहार, मद्रास, पंजाव, उत्तर प्रदेश, पं० बंगाल, हैदराबाद, मध्य भारत, मैसूर, राजस्थान, जम्मू व काश्मीर, सौराष्ट्र, ट्रावन्कोर व कोचीन, हिमाचल प्रदेश व मनीपुर में मोटरों का संचालन और प्रबन्ध एक सरकारी विभाग का उत्तरदायित्व है। योजना आयोग के आग्रह पर सभी राज्यों में सरकारी मोटरें स्वतन्त्रतापूर्वक चलाने के निमित्त निगमों (corporations) द्वारा प्रबन्ध करने का सिद्धान्त मान लिया गया है और Road Transport corporation Act, 1950 को धीरे-धीरे सभी राज्यों में लागू करने का प्रयत्न किया जारहा है। बम्बई, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और उड़ीसा राज्यों के सरकारी मोटर-व्यवसाय में रेलों ने भी कुछ पूँजी लगा रक्खी है।

Q. 76. Out line the advantages and disadvantages of the assumption of road powers by the railways and the provincial Governments.

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारतवर्ष में मोटर-यातायात का प्रारम्भ हुआ और कुछ ही दिनों बाद यह रेल-यातायात से प्रतिस्पर्धा करने लगा। इसके पहले रेल व सड़क-यातायात की प्रतिस्पर्धा का प्रश्न ही नहीं था। क्योंकि तब तक सड़क-यातायात का विकास अच्छी प्रकार न हो पाया था; परन्तु युद्ध के पश्चात् दशा विपरीत हो गई। तब तक सड़कें भी काफी बन चुकी थीं और युद्ध में काम करने वाली बहुत-सी मोटर गाड़ियाँ व ट्रकें जनता के उपयोग हेतु अधिकाधिक संख्या में प्राप्त थीं। इसलिये जहाँ-जहाँ मोटर-यातायात प्रारम्भ हुआ वहाँ रेलवे को इनकी कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। १९३० तक यही परिस्थिति बनी रही। बहुत सी सड़कें रेलवे-लाइन के समानान्तर एक दूसरे स्थान को मिलाती है। इसलिये किसी रेलवे लाइनों को अधिक प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। १९३० की आर्थिक मन्दी ने रेलों पर और भी बुरा प्रभाव डाला। ट्रैफिक का परिमाण बहुत कम हो गया। इसका प्रभाव सड़क-यातायात पर बहुत कम पड़ा। मोटर-सेवा प्रारम्भिक दशा में अधिक स्वतन्त्रता के साथ होती थी। उनका कोई समय नहीं था। यात्रियों की संख्या का भी विशेष नियन्त्रण न था और मोटरें उसी समय चलती थीं जबकि उन्हें अच्छे लाभ की आशा होती थी। परन्तु रेलों के सम्बन्ध में यह बात नहीं हो सकती थी। उनका संचालन तो निश्चित ही था, चाहे ट्रैफिक पूरा हो या कम। इस काल में मोटर-यातायात में शनैः शनैः एक प्रकार का संगठन हो गया था। इसके फलस्वरूप रेल व सड़क-यातायात में प्रतिस्पर्धात्मक भावनाएँ बहुत बढ़ गईं। इसी प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए तथा और भी समस्याओं के हल करने को सरकार द्वारा एक

कमेटी नियुक्त की गई। इस कमेटी ने निश्चित् रूप से यह सिफारिश की है कि रेलवे कम्पनियों को सड़क-यातायात भी अपने अधिकार में ले लेना चाहिये। यही नहीं वरन् रेलों को सड़क-यातायात के विकास करने में काफी पूँजी भी लगानी चाहिए और ठेकेदारी प्रथा पर सड़क-यातायात का संचालन भी रेलों द्वारा ही होना चाहिए। रेलवे-कम्पनियों को काफी ट्रैफिक प्राप्ति हेतु यह आवश्यक हैं कि वह स्वयं को शक्तिशाली बनावें और सड़क-यातायात के विकास करने को विशेष सुविधाएँ दें। कमेटी ने इस बात पर बहुत बल दिया कि रेलवे प्रबन्ध व सड़क-यातायात में अधिक घनिष्ठता होनी चाहिये।

विदेशों में रेलवे द्वारा सड़क-यातायात पर सफलतापूर्वक नियन्त्रण किया जा चुका है। दक्षिणी अफ्रीका में सरकारी रेलों को इसका पूर्ण अधिकार है कि वह सड़क-यातायात को स्वयं संचालित करे या व्यक्तिगत कम्पनी से समझौता करके उनमें भाग ले। यद्यपि इस समय तक सड़क और रेल-यातायात में काफी घनिष्टता हो गई है और दोनों में सहयोग भावना भी प्रबल पड़ती चली आ रही है, फिर भी इसके लिए यह आवश्यक है कि बृटिश रेलों की भाँति भारतीय रेलें भी सड़क यातायात को अपना ही समझें। यदि बृटिश रेलवे को सड़क-यातायात के साथ अपनी आवश्यकतानुसार सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार न होता तो इन दोनों में समन्वय इस प्रकार नहीं हो सकता जैसा कि हो गया है। विदेशों के अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि भारतीय रेलें भी मोटर-यातायात की सँभाल स्वयं करने लगें तो जनता की अनेक शिकायतें दूर हो जायँ। यदि किन्हीं क्षेत्रों में रेलें सड़क-यातायात अपने अधिकार में ले लें और उस पर सुगम शीघ्रगामी तथा सुविधाजनक मोटर-सेवा जनता को प्रदान करने लगें तो अन्य क्षेत्रों में व्यक्तिगत मोटर-मालिकों को अपनी मोटर-सेवा को सुधारने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त रेलों द्वारा मोटर-यातायात संचालन करने से रेलों की आय भी बढ़ जायगी। नये क्षेत्रों में लोगों को यातायात की सुविधा मिलने लगेगी और यात्रियों व व्यापारियों को दोनों प्रकार के यातायात में बहुत तरह से आराम मिलने लगेगा।

रेलवे द्वारा मोटर-यातायात के संचालन में केवल लाभ ही लाभ नहीं हैं। उससे कुछ हानियों की भी सँभावना है। सर्व प्रथम इस प्रकार से यातायात में व्यक्तिगत यातायात-सेवाओं का अभाव हो जायगा और यातायात-क्षेत्र में रेलों का ही एक छत्र राज्य हो जायगा। इसका अन्त में व्यापारियों और जनता के हितों पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। और यदि रेलों ने समानान्तर सड़कों पर जाने वाली मोटर-यातायात को अपने संचालन में लिया तो उन्हें स्वयं ही अपने हाथों प्रतिस्पर्धा सहनी पड़ेगी। रेलों को स्वयं अपने विकास हेतु बहुत-सी पूँजी की आवश्यता है, यदि सड़क-यातायात के विकास का भार भी रेलों पर आ जाय तो रेलों के विकास में कुछ बाधा पड़ सकती है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण यातायात-क्षेत्र में रेलवे कर्मचारियों का एकाधिकार हो जाने से रेलवे मैन्स फेडरेशन का संगठन काफी मजबूत होने पर अपनी उचित व अनुचित माँगों के लिये रेल अधिकारियों पर दबाव डाल सकता है। यातायात विभाग का विस्तृत क्षेत्र हो जाने से उसकी कार्य-क्षमता में भी कमी आ सकती है और व्यक्तिगत मोटर-यातायात के समाप्त हो जाने से मोटर मालिकों में रेलवे के प्रति असन्तोष हो सकता है।

वास्तव में वस्तुस्थिति के अनुसार रेलवे द्वारा सड़क-यातायात का सञ्चालन अब कोई महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं रह गया है। यातायात में राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति ने रेलों

को केन्द्रीय सरकार की सम्पत्ति बना दिया है और सड़क यातायात अधिकांश में राज्य-सरकारों द्वारा अपनाली गई है। अतः मोटर-यातायात के विकास का भार राज्य-सरकारों पर आगया है। राज्य-सरकारें अपनी आय में वृद्धि होने के कारण मोटर-यातायात को शीघ्र-से-शीघ्र और अधिक-से-अधिक विस्तृत क्षेत्र में विकसित करने का प्रयत्न कर रही हैं। और जहाँ-तहाँ व्यक्तिगत मोटर सञ्चालन के जो दोष होते हैं वे अपने आप समाप्त होते चले जा रहे हैं और जहाँ-जहाँ अब भी मोटरें व्यक्तिगतरूप से चलाई जाती हैं वहाँ-वहाँ उन लोगों को भी मोटर-सेवा का स्तर ऊँचा उठाने व जनता को अधिक सुविधाएँ देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कम-से-कम इसी डर से कि कहीं राज्य-द्वारा उस क्षेत्र में भी मोटर यातायात प्रारम्भ न हो जाये। अतः वर्तमान समय में ऐसी परिस्थिति हो गई है कि रेलें तो केन्द्रीय सरकार के अधीन होकर अपना विकास स्वयं करें और सड़क-यातायात का विकास राज्य सरकारों दारा यथेष्ट रूप से होता रहे और यदि आवश्यक समझा जाय तो ग्रामीण क्षेत्र में व्यक्तिगत संस्थाओं को मोटर-यातायात का विकास करने दिया जाय। सड़कें निर्माण करने का कार्य तो हर दशा में राज्य सरकारों का ही उत्तरदायित्व रहेगा। इस प्रकार यातायात की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि यातायात के विभिन्न साधनों में किसी प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा न होने पाये, और एक ही क्षेत्र में दोनों प्रकार की यातायात सुविधाओं का इस प्रकार विकास न हो कि दोनों को हानि पहुँचे। वास्तव में केन्द्रीय यातायात विभाग, राज्य-यातायात-विभाग, तथा व्यक्तिगत संस्थाओं के मध्य पूर्ण समन्वय स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रीय यातायात विकास समिति होनी चाहिए, जो सम्पूर्ण यातायात योजनाओं को ध्यान में रखते हुए यातायात का विकास करे। इस से प्रतिस्पर्द्धा बढ़ने का कोई अवसर नहीं रहेगा और न जनता की धनराशि का दुरुपयोग ही हो सकेगा।

Q. 67 Discuss how far is it desirable to have a monopoly in the matter of the development of road transport services.

१९२९ में जब सड़क-कोष का निर्माण हुआ तो उसके पूर्व प्रान्तीय सड़कों का व्यय प्रांत की साधारण आय से तथा स्थानीय संस्थाओं की सड़कों का व्यय उनकी साधारण आय से दिया जाता था। उपर्युक्त कोष की स्थापना का उद्देश्य था उनके कार्य में सहयोग देना, जिससे नवीन सड़कों का निर्माण हो सके। किन्तु दुर्भाग्यवश उसके पश्चात् के १० वर्ष व्यापारिक मंदी के थे, अस्तु प्रान्तों और स्थानीय संस्थाओं को धनाभाव का सामना करना पड़ा। इससे वे अपनी साधारण आय में से जितना व्यय पहले कर सकते थे अब उतना भी व्यय करने में असमर्थ रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्द्रीय सरकार की सहायता पाने पर भी वे अधिक सड़कों का निर्माण नहीं कर सके। १९२८–२९ में गवर्नरी प्रान्तों में ६४३८० हजार रुपया सड़कों पर व्यय हुआ, किन्तु १९३८–३९ में यह रकम घट कर ६०२१० हजार रुपया ही रह-गई। अस्तु, अब भारत सरकार को यह स्वीकार करना पड़ा कि सड़क-कोष में से राज्य को मिलने वाले रुपये का २५ प्रतिशत सहायक सड़कों (Feeder roads) पर खर्च किया जा सकता है, किन्तु जो सड़क रेलों के मुकाबले में प्रतिस्पर्द्धा करती हैं उन पर भी अपने हिस्से के २५% से अधिक रुपया राज्य की सरकारें खर्च नहीं कर सकतीं। धनाभाव के कारण सड़कों का पूर्ण विकास नहीं हो सका। हमारे देश में सड़कों का विकास कितना धीमा हुआ है इसका अनुमान इसी से लग जाता है कि १९००–४५ तक ४५ वर्षों में हमने जितनी मील लम्बी सड़कें बनाई

उतनी मील सड़कें संयुक्त राज्य अमेरिका ने केवल १३ वर्ष में ही बना ली थीं। १६०० में अंगरेजी भारत में १,७६,००० मील लम्बी सड़कें थीं। १६४५ में यह लम्बाई बढ़ कर २ ३६,५३५ मील हो गई—अर्थात् ४५ वर्षों में भारत में केवल ६०,५३५ मील लम्बी सड़कें ही बनाई गईं। यदि हम केवल पक्की सड़कों को ही लें तो सन् १६०० में सब सड़कों की लम्बाई ४७,००० मील थी, वह १६४५ में ७८,६६० मील हो गई अर्थात् ४५ वर्षों में केवल ३१,६६० मील लम्बी ही पक्की सड़कें भारत में बन सकीं। सड़कों पर जो खर्च होता रहा है उससे भी इस धीमें विकास का पता लगता है। सड़क कोष बनने के बाद सड़कों पर होने वाला कुछ खर्च द्वितीय महायुद्ध तक बढ़ने की अपेक्षा उल्टा कम ही हुआ, क्योंकि प्रान्तों और राज्यों ने अपनी आय में से सड़कों पर कम खर्च किया, यद्यपि इन वर्षों में मोटर-यातायात पर लगने वाले करों में बहुत अधिक वृद्धि हुई।

संक्षेप में १६३६ तक सड़क-कोष द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से सड़कों के निर्माण में इस प्रकार प्रगति हुई—केन्द्रीय शासित और प्रान्तीय क्षेत्रों में २५३ लाख रुपयों की लागत से ३८२ नए पुलों का निर्माण किया गया और ४२ लाख रुपये विद्यमान पुलों की मरम्मत तथा विकास में व्यय हुआ। १२३० मील लम्बी कंक्रीट की सड़कें और १५०० मील लम्बी सभी मौसम में व्यवहृत की जाने योग्य सड़कें बनीं।

इस कमेटी ने १६२८ में अपनी विस्तृत रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की। कमेटी ने इस बात पर अधिक जोर दिया कि देश की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए सड़कों के विकास की परमावश्यकता है। इस आवश्यकता के तीन मूलभूत कारण बताये गए—(१) गाँवों की कृषि पैदावार के शहरों या मण्डियों तक लाने (२) ग्रामीण जनता की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति तथा (३) रेल-मार्गों की उन्नति में सहायता देने के लिए सड़कों में विस्तार होना आवश्यक समझा गया। कमेटी ने यह प्रस्ताव रखा कि देश की सर्वाङ्गीण उन्नति को ध्यान में रखते हुए सड़कें बनाने की जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार की ही होनी चाहिए, क्योंकि सड़कों पर चलने वाली मोटरों तथा अन्य सवारियों द्वारा जो कर वसूल किया जाता है वह सब केन्द्रीय सरकार के सामान्य वित्तविभाग में जमा हो जाता है अस्तु केन्द्रीय सरकार प्रमुख सड़कों का बनाना अपने हाथ में ले और स्थानीय तथा प्रांतीय सरकारों को इस आर्थिक बोझ से मुक्त करें। कमेटी का यह भी सुझाव था कि रेलें भी सड़कों के निर्माण-कार्य में आर्थिक सहायता दें, क्योंकि उनकी आय का एक बहुत बड़ा भाग सड़कों द्वारा ढोये गए सामान के जरिये ही होता है, किन्तु कमीशन ने इस बात का विरोध किया कि सड़कों के निर्माण के लिए ऋण न लिया जाय, क्योंकि इससे अन्य आवश्यक योजनाओं के धनाभाव के कारण पूरा होने में बाधा पड़ सकती है। सड़कों के निर्माण कार्य में सहायता देने के लिए कमेटी ने पैट्रोल कर में २ आने (४ आ० से ६ आ०) प्रति गैलन वृद्धि करने की सिफारिश की।

समिति के सुझावों पर विचार करके केन्द्रीय सरकार ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रस्ताव पास किए, जिसके अनुसार मोटर स्प्रिट पर मार्च १६२६ से कर लगाया गया और इस प्रकार बढ़ी हुई आय को सड़कों के निर्माण पर व्यय करने के लिए एक पृथक कोष केन्द्रीय सड़क विकास कोष (Central Road Development Fund) में जमा करने का निश्चय हुआ। इस कोष में से भिन्न-भिन्न प्रान्तों को सड़क-निर्माण के लिए उसी अनुपात में धन प्राप्त होता है जिस अनुपात में उनमें पैट्रोल का

उपभोग होना है। इस कोष में से केवल १५% धन एक केन्द्रीय संरक्षित कोष (Central Reserve Fund) में इस उद्देश्य से इकट्ठा किया जाता है कि उससे विकास कोष के शासन तथा टैकनीकल अनुसन्धान सम्बन्धी कार्यों का खर्च चल सके। इस फण्ड में ३१ मार्च, १९४७ तक ३७·०३ करोड़ रुपया एकत्रित हो चुका था (प्रति वर्ष १½ करोड़ रुपया इस कोष में जमा किया जाता रहा है) इसमें से ५·०९ करोड़ रुपया तो संरक्षित कोष में रखा गया और शेष ३१·९४ करोड़ रुपया राज्यों में बांटने के लिए उपलब्ध हुआ। इस धन में से १८·५ करोड़ रुपया ३१ मार्च १९४७ तक वास्तव में बांटा जा चुका था।

सड़क-विकास के लिए अधिक धन राशि प्राप्त करने के सुझाव :—

(१) राजमार्गों के आस पास की भूमि तथा वहाँ के भवनों का मूल्य बढ़ जाता है, अतः इन पर अतिरिक्त कर लगाया जाना चाहिए।

(२) ऋण लेना चाहिए और ऐसे ऋण के भुगतान के लिए सड़क-विकास-चुङ्गी लगाई जा सकती है।

(३) स्थानी स्वराज्य संस्थाएं तथा ग्राम पञ्चायतों को अपनी सीमाओं के अन्तर्गत सड़क-विकास के लिए सक्रिय प्रयत्न करना चाहिए।

(४) भूमिदान, श्रमदान, तथा सम्पत्तिदान आदि आन्दोलनों का उपयोग सड़क-निर्माण तथा मरम्मत के लिए किया जाना चाहिए।

(५) सड़क-विकास के लिये दिया गया धन यदि निश्चित अवधि तक खर्च न हो सके तो वह आगामी वर्ष के लिए नियत कर दिया जाना चाहिए।

(६) राष्ट्रीयकृत सड़क यातायात से प्राप्त आय सड़कों के विकास पर ही व्यय होनी चाहिए।

CHAPTER X

Water Transport.

Water transport includes (1) inland waterways and (2) marine transport. Though India is not favoured by nature in the same way as, say, England with rivers which serve the purpose of natural waterways, yet inland navigation was largely resorted to in the old days and there was a considerable volume of river traffic at the time of the Mauryan and the Moghal empires Since the advent of railways, however, inland navigation has received a set-back. At one time specially when the railways were a loosing concern, there was a good deal of agitation in favour of navigable canals, and inspite of the physical limitations imposed upon inland navigation in our country, there is still much scope for the extension of inland navigation. The Central Waterways, Irrigation and Navigation commission has already carried out an exhaustive investigation into the possibilities of extending inland navigation by means of new construction or resuscitation of old waterways.

In the north-eastern regions of the country, however, water transport continues to play a significant part. It is estimated that about 5000 miles of river routes in India are navigable by modern power craft. At present, 1557 miles of rivers are navigable by mechanically propelled vessels and 3587 miles of river stretches are navigable by large country boats and have the possibility of power development. Under the first five year plan, three projects had been taken up to extend the mileage of inland navigation, and during the second plan period, it is proposed to execute development works in the Ganga-Brahmputra region.

As regards external water transport, although India does not possess the advantages of England with her indented coastline and natural harbours, she occupies a maritime position of considerable importance. In the Moghal period, the great bulk of the commerce in the Indian seas was carried in ships built in India, she had also great passenger ships much larger than any in contemporary Europe. The Introduction of iron-built ships, and mechanised sea transport, the jealousy of the British shipping interests and the operation of the British Navigation Acts, are some of the important causes responsible for the decay of Indian shipping. The Indian ship building industry also, is in no better position than Indian shipping. However, there is a great need for an Indian mercantile marine. It has an economic, political and military importance. The Government thought of improving it, and it appointed in 1923,

the mercantile marine committee to consider and report necessary measures for the promotion of Indian shipping and ship-building industries. The committee made some valuable recommendations for the training and future employment of the Indian officers, for the reservation of coastal trade, for granting navigation countries and for promoting ship-building industry As a result of these recommendation the 'Dufferin' training ship was established. Efforts were made to introduce bills for reserving coastal traffic for Indian shipping and for the abolition of the deferred rebates system in 1928 and 1929 respectively, but without any results. Then Reconstruction Policy Sub-committee on Shipping submitted its report in 1947 advocating a vigorous national policy of shipping. The committee also proposed the establishment of a Shipping Board. During the World War Second a ship-building yard at Vizagapatam has been established, and the work of constructing ship-building berths has been started by the Scindia Steam Navigation Co., Ltd.

In the second plan, the total tonnage is expected to reach about 9,00,000 G. R. T. At the end of the second plan, the proportion of the overseas trade to be carried by Indian tonnage will rise to about 15 per cent. The Hindustan Shipyard is to be expanded so as to increase the rate of construction to four ships per annum of the modern type. A dry dock is to be constructed at Visakhapattam.

Q 68. What in your opinion should be the fundamental basis of a national shipping policy for our country and in view of international shipping interests, what must be done by the Union Government of India to establish a merchant Navy? (A. U. 1949).

Q. 69. 'The turning point in the fortune of the shipping industry came with the advent of India's political freedom'. Discuss this and outline briefly the Government of India's shipping policy now. (A. U. 1954).

Q. 70. Examine critically the statement that the attitude of the Government of India towards national shipping until the outbreak of the Second World War (1939-45) was one of the neglected opportunities, patronage to British shipping and acquiescence in its ruthless competition. (A. U. 1949)

Q. 71' Estimate and examine the programme of development of coastal and overseas shipping as envisaged in the first development plan of India.

SHIP BUILDING INDUSTRY.

इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि प्राचीन भारत में जहाज बनाने की कला ने अच्छी उन्नति कर ली थी। 'मुक्त कल्पतरु' नामक ग्रन्थ में (जो ग्यारहवीं शती में लिखा गया था) २७ भिन्न प्रकार के जहाजों के बनाने का वर्णन है। इनमें महासागर में यात्रा के योग्य बड़े-से-बड़े जहाज की लम्बाई २७६ फुट, चौड़ाई ३६ फुट, और ऊँचाई २७ फुट बतलाई गई है। आजकल की शब्दावली में उसे २,३०० हंडरवेट टन का जहाज कहेंगे। अर्थात् वह आजकल के उन जहाजों के बराबर होगा जिनमें माल, कोयला, पानी इत्यादि सब मिलाकर २,३०० टन का बोझ ले जाया जा सकता

है। तेरहवीं शती में इटली के प्रसिद्ध यात्री मार्कोपोलो ने ऐसे बड़े-बड़े जहाज देखे थे, जिनके पार्श्व में १० नावें लटकी हुई थीं और उन्हें पानी पर उतारने और फिर जहाज पर ऊपर खींच लेने के लिये रस्सियों आदि का पूरा प्रबन्ध था। उनमें मुख्य डैक (जहाज की पायेतर) के नीचे ६० कैबिन (रहने की कोठरियाँ) होती थीं। उनमें ४ मस्तूल होते थे, और एक-एक जहाज में नीचे एक दूसरे से अलग १४ ऐसे खन या विभाग बनाये गये थे जिनमें पानी नहीं घुस सकता था। उस युग में इस प्रकार के जहाज बना लेने से केवल यही प्रमाणित नहीं होता कि तत्कालीन भारत में जहाज बनाने की विद्या ने चरम उन्नति कर ली थी, प्रत्युत इससे यह भी मालूम होता है कि भारत के कारीगर और जहाज बनाने वाले अपनी कला में अत्यन्त निपुण थे। अँग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी भारत के बने हुए जहाजों की उच्चश्रेणी की कारीगरी और मजबूती देखकर, यहाँ जहाज बनाने के कई कारखाने खोले, जो १८४० तक काम करते रहे, किन्तु जब जहाज को भापकी शक्ति से चलाया जाने लगा, और लकड़ी की जगह लोहे के जहाज बनने लगे, तब जहाज बनाने की कला में एक नई क्रान्ति हुई। भारत के जहाजी कारीगर उस क्रान्ति के सामने ठहर न सके। पाल से चलने वाले लकड़ी के जहाजों का युग समाप्त हो गया, और उसके साथ ही भारत का जहाज बनाने का उद्योग भी नष्ट हो गया।

यद्यपि भारत में बहुत दिनों से कुछ ऐसे कारखाने चल रहे हैं, जो जहाजों की मरम्मत करते हैं और बड़ी नावें भी बना लेते हैं, तथापि आधुनिक जहाज बनाने के उद्योग का श्रीगणेश विजगापट्टम के जहाजी कारखाने की स्थापना के साथ हुआ। इसकी योजना एक भारतीय जहाजी कम्पनी ने, जिसका नाम सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी है, तैयार की थी। इस कारखाने की नींव १९४१ में पड़ी, १९४६ में इसने जहाज बनाने का काम आरम्भ किया और १४ मार्च १९४८ को प्रधान मंत्री ने इसके बनाये पहले जहाज को समुद्र में उतारा। इस जहाज का नाम जल-उषा था और यह ८,००० टन का था। किन्तु सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी के पास इतना धन नहीं था कि वह इस कारखाने को ठीक ढंग से चला सके। देश के हित की दृष्टि से जहाज बनाने का उद्योग अत्यन्त महत्व का है। इसलिये भारत सरकार ने इस कम्पनी के अधिकांश हिस्से खरीद कर उसको अपने नियन्त्रण में ले लिया और एक नई कम्पनी बना दी। इस नई कम्पनी का नाम हिन्दुस्थान शिप यार्ड लिमिटेड है. और इसने पहली मार्च १९५५ से कारखाने का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है।

इस कारखाने में अभी तीन गोदियाँ (बर्थ्स) हैं, और ये अधिक-से-अधिक १५,००० हंडरवेट टन के आकार तक के जहाज बना सकती हैं। कारखाने के विकास की योजना बन गई है और पिछले दो वर्षों से एक नई बड़ी और एक छोटी गोदी बन चुकी हैं। जहाजों की तरणी (हल) बनाने वाले विभाग, मशीन-विभाग तथा अन्य भागों का विस्तार किया जा रहा है, जिससे अधिक काम किया जा सके। इतने बड़े कारखाने में एक जगह से दूसरी जगह सामान पहुँचाने और उसे उतारने तथा चढ़ाने के लिये भी अधिकाधिक उत्तम प्रबन्ध किया जा रहा है। एक पूर्व निर्माण विभाग भी बनाया जा रहा है, जिसमें कि कारखाने के भीतर पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस टन के टुकड़े बना-बना कर गोदियों पर भेजे जा सकेंगे, और जहाज की तरणी जल्दी तैयार हो सकेगी। इस प्रकार के इतने बड़े कारखाने को ठीक तरह से चलाने के लिये, उच्च प्रशिक्षण प्राप्त इंजीनियरों और शिल्पियों की आवश्यकता होती है। उन्नीस व्यक्तियों को इंग्लैंड भेजकर उन्हें जहाज बनाने की विद्या के भिन्न-भिन्न अंगों का प्रशिक्षण दिलाया जा चुका है। फ्रांस की जहाज बनाने वाली एक प्रसिद्ध और

पुरानी कम्पनी (एटालिये शान्तिये दिलान्टो आर) को टेकनिकल निर्देशन का काम सौंपा गया है। इसी कम्पनी ने इस कारखाने के भावी विकास की योजना बनाई है। इस कम्पनी के भेजे हुये विशेषज्ञों को छोड़ कर इस कारखाने में काम करने वाले सभी अफसर और कर्मचारी भारतीय ही हैं। कारखाने की ओर से नौ इन्जीनियरों को उच्च प्रशिक्षण के लिये फ्रांस भेजा गया है। इस कारखाने में अब तक १२ जहाज बन चुके हैं। १२ जहाजों में प्रत्येक का आकार ८,००० हंडरवेट टन था, और एक का आकार ७,००० हंडरवेट टन था। यह पिछला जहाज आधुनिक ढंग का है और डीजल इन्जनों द्वारा चलाया जाता है। इस समय दस जहाज और बन रहे हैं। कारखाने के बनाये जहाजों के काम की सभी जानकारों ने प्रशंसा की है। इस कारखाने में जो जहाज बनाये जाते हैं वे लायड के निरीक्षण में उसके सर्वोच्च श्रेणी के अनुसार तैयार किए जाते हैं। विकास की योजना के सम्पूर्ण हो जाने पर यह कारखाना ५०,००० हंडरवेट टन के लगभग जहाज बनाने के योग्य हो जायगा। वास्तव में इस उद्योग में जगह-जगह से बनी बनाई चीजों को एकत्र करके और उन्हें यथा स्थान बिठाकर जहाज तैयार करना पड़ता है। प्रत्येक जहाज में इस्पात, चलाने के लिए इन्जिन और उसके सहायक अंग, बिजली का सामान, बेतार का तार, माल लादने का सामान, कमरों का सामान तथा जहाज के नित्यप्रति काम की असंख्य चीजों को जमा करना पड़ता है। प्रत्येक जहाज की आवश्यकता के अनुसार उसके लिए विशेष आकार की इस्पात की चद्दरें, गर्डर आदि बनवाने पड़ते हैं। उन देशों में जिनमें प्रत्येक वर्ष बहुत से जहाज बनते हैं, जहाज बनवाने के कारखाने अपने यहाँ केवल जहाज की तरणी (हल) बनाते हैं और उसे सुसज्जित करने तथा उसमें इन्जिन आदि लगाने का काम ठेके पर दूसरे उन लोगों या कारखानों को दे देते हैं जो अपने अपने काम में विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। काम बढ़िया होता है और खर्च कम।

इङ्गलैण्ड में पिछले पाँच वर्षों में इस प्रकार जहाज बनाये गये:—

१९५०	१२,६०,५००	जी० आर० टी०
१९५१	१२,५५,०००	,, ,, ,,
१९५२	१३,२१,३१०	,, ,, ,,
१९५३	११,५७,६६४	,, ,, ,,
१९५४	११,३७,५२३	,, ,, ,,
औसत प्रति वर्ष	१२,२७,८१९	

मोटे रूप में यह १६ लाख हंडरवेट टन का काम हुआ। आधुनिक ढंग के जहाज बनाने का उद्योग भारत के लिए नया है। जब हम पूरे वर्ष में ५० हजार टन के जहाज बनाने लगेंगे तब भी हमारे यहाँ एक वर्ष में उतना ही काम होगा, जितना इग्लैण्ड में दस दिन में होता है। जिन सहायक उद्योगों के सामान से जहाज बनता है वे उद्योग अभी हमारे देश में विकसित नहीं हुए, और इसलिये हमें उनके लिये विदेशों का मुँह ताकना पड़ता है। भारत में इस्पात का केवल एक ऐसा कारखाना है, जो जहाजों के लिए लोहे की चद्दरें बना सकता है, किन्तु वह भी न तो हमारी आवश्यकता ही पूरी कर सकता है और न उस आकार की चद्दरें ही बना सकता है जिस आकार की चद्दरों के इस्तैमाल से खर्च कम हो, इसलिये हमें विदेश से इस्पात मँगाना पड़ता है। यही कारण है कि जितने कम व्यय से जहाज तैयार हो जाना चाहिये उतने से वह नहीं हो पाता। इन सब बातों का परिणाम यह है कि विजगापट्टम के बने हुए जहाज की लागत अन्तर्राष्ट्रीय बाजार की अपेक्षा अधिक बैठती है। यदि

भारतीय जहाजी कम्पनियों को विजगापट्टम से जहाज खरीदने में अन्य स्थानों से अधिक मूल्य देना पड़े तो उन्हें घाटा होगा। इसलिए भारत सरकार ने यह निश्चय किया है कि यहाँ के बने जहाज का वही मूल्य उनसे लिया जायगा, जो उन्हें इंग्लैण्ड से जहाज खरीदने पर देना पड़ता है। दोनों मूल्यों में जो अन्तर होता है वह भारत सरकार सहायता के रूप में अपने पास से दे देती है, जहाजी व्यापार करने वाली कम्पनियों को भारत सरकार ने और भी सुविधायें दे रखी हैं। जहाज खरीदने के लिए वह उन्हें लम्बे अर्से के लिए ऋण देती है। यदि जहाज अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए लिया जाय तो ऋण पर २।। प्रतिशत और यदि भारतीय तट के बन्दरगाहों के व्यापार के लिये लिया जाये तो ४।। प्रतिशत ब्याज लिया जाता है। भारतीय तट के बन्दरगाहों में व्यापारी सामान ले जाने का अधिकार १५ अगस्त १९५१ से भारतीय जहाजी कम्पनियों के लिये सुरक्षित कर दिया गया है। नये या पुराने जहाज खरीदने पर कम्पनियों को इनकम टैक्स की भी कुछ सुविधायें दी जाती हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भारत में जहाजी इंजन तथा उनके सहायक सामान बनाने का कारखाना खोलने का भी प्रबन्ध किया गया है। इस योजना की शिल्प सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन किया जा रहा है। स्पष्ट ही यह आवश्यक है कि हम अपने जहाज निर्माण उद्योग को यथासम्भव अधिक-से-अधिक आत्म निर्भर और स्वतन्त्र बना दें। यह भी स्पष्ट है कि यदि हम भारत में नये जहाज पर्याप्त संख्या में नहीं बनावेंगे तो भारत में जहाजी इंजनों तथा उसके सहायक सामान की लागत अत्यधिक बैठेगी और हमारे जहाजों का मूल्य इतना बढ़ जायगा कि उनकी खपत करना कठिन हो जायगा।

भारतीय जहाजों की संख्या बहुत कम है। संसार में जितने जहाज हैं उनमें भारतीय जहाजों का प्रतिशत एक का आधा अर्थात् पाँच प्रतिशत है। या यों कहा जाय कि संसार के २०० टन के जहाजों में भारतीय जहाज केवल एक टन है, यही नहीं भारतीय बन्दरगाहों में जो जहाज माल या यात्री लेकर आते हैं उनमें १०० टन में केवल पाँच टन भारतीय जहाज होते हैं। जैसा कि पंचवर्षीय योजना में बतलाया गया है भारत के तटीय व्यापार के लिये जहाजों की वर्तमान संख्या अपर्याप्त है। इसके लिये और जहाज चाहियें। बहुत से वर्तमान जहाज पुराने हो गये हैं और उन्हें बदलकर उनकी जगह नये जहाज देने होंगे। अतएव यह स्पष्ट है कि भारत में जहाजों की संख्या बढ़ने की बहुत गुंजाइश है। प्रथम पंचवर्षीय योजना का ध्येय है कि १९५५, ५६ के अन्त तक ६,००,००० ग्रोस टन के जहाज भारत में बढ़ें। इनमें ३,१५,००० ग्रोस टन तटीय व्यापार के लिये और २,८५,००० ग्रोस टन विदेशी व्यापार के लिए हों। योजना के प्रथम चार वर्षों में भारतीय जहाजों में इस प्रकार वृद्धि हुई है।

१ जुलाई	१९५१	के अन्त तक	३,७५,४७४	जी० आर० टी०
,,	१९५२	,,	४,०४,५७०	,,
,,	१९५३	,,	४,२२,४५२	,,
१ अप्रैल	१९५४	,,	४,३७,०९१	,,
,,	१९५५	,,	४,८८,७३९	,,

यह आशा की जाती है कि ६ लाख ग्रोस टन का जो लक्ष्य योजना के लिए रखा गया है वह पूरा हो जायगा। यह सम्भव है कि कुछ नये जहाज जो आजकल बन रहे हैं निश्चित अवधि तक भारत में न आ सकें और उनकी रजिस्ट्री में कुछ विलम्ब हो जाय।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ४.४५,००० ग्रोस टन (जी०आर०टी०) परिमाण के जहाजों की वृद्धि विचाराधीन है। इन जहाजों को बनाने का व्यय ८० करोड़ रुपया होगा। आशा की जाती है कि इसमें से १० करोड़ रुपया निजी कम्पनियाँ लगायेंगी। अभी भी जहाज खरीदने वाली कम्पनियों को ऋण बड़ी उदार शर्तों पर दिया जाता है, किन्तु हाल ही में यातायात मन्त्री (श्री लालबहादुर शास्त्री) ने संकेत किया है कि वे इन शर्तों को और अधिक आकर्षक करने का विचार कर रहे हैं, जिससे हमारे लक्ष्य के पूरे होने में कोई सन्देह न रह जाय।

हमारे देश में जहाज-निर्माण उद्योग शैशवावस्था में है। अपने पैरों पर खड़े होने के लिये उसकी कुछ-न-कुछ सहायता करना शासन के लिये अनिवार्य है। किन्तु उसकी वास्तविक आवश्यकता यह है कि उसे कार्य करने के लिये पर्याप्त क्षेत्र मिले और उसके बनाये जहाजों की माँग बढ़े। बहुधा लोग यह कहते सुने जाते हैं कि सरकार ऐसे उद्योगों की सहायता क्यों करे जो न मालूम कितने दिनों अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता। इस प्रश्न का उत्तर देते समय समस्या के दो पहलुओं पर विचार करना चाहिए। यह सच है कि भारत के बने जहाजों पर अभी सरकार को मूल्य का प्रायः २० प्रतिशत सहायता के रूप में देना पड़ता है, किन्तु भारतीय जहाजों से जो परोक्ष लाभ होते हैं वे देश के आर्थिक संगठन के लिये बड़े महत्व के हैं। यदि भारतीय कम्पनियाँ सभी जहाज विदेशों से खरीदने लगें तो इस उद्योग में लगे हुए बहुत से भारतीय बेकार हो जायेंगे। भारतीय जहाज बनाने में २० से लेकर ३० प्रतिशत कच्चा माल और सामान भारतीय होता है। यदि मजदूरी का व्यय भी सम्मिलित कर लिया जाय तो भारत के बने प्रत्येक जहाज का ५० से लेकर ६० प्रतिशत मूल्य भारत में ही रह जाता है और हम विनिमय में इतनी मुद्रा बचा लेते हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि इस उद्योग के कारण हमारे इंजीनियर मिस्त्री और कारीगर आधुनिक जहाज बनाने की अत्यन्त कठिन कला को सीख कर उसमें निपुण हो रहे हैं। संकट के समय उनका यह प्रशिक्षण और ज्ञान देश के बड़े काम आ सकता है। इस उद्योग के सैनिक महत्व की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सच बात तो यह है कि पश्चिम के उन्नत देशों में भी जहाज-निर्माण उद्योग को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बराबर सहायता दी जाती है। अतएव इस उद्योग को साधारण नफे-नुकसान की दृष्टि से देखना बड़ी भारी भूल होगा।

हमें जोर इस बात पर देना चाहिए कि हम उन मशीनों, कल-पुर्जों आदि का भी बनाना भारत में आरम्भ कर दें जो अभी तक हमें विदेशों से मँगाने पड़ते हैं। यदि हम इस प्रकार धीरे-धीरे जहाज-निर्माण के सामान में आत्मनिर्भर हो जायें तो इस बात की सम्भावना है कि हम इस उद्योग में एक बार फिर संसार से प्रतिद्वन्द्विता कर सकेंगे।

प्रधानमन्त्री ने एक बार कहा था कि मैं यह देखने को अधीर हूँ कि कब भारतीय तिरंगे को लहराते हुये भारतीय जहाज विशाल समुद्रों को पार कर दूर-दूर के देशों में पहुँचते हैं। यह आशा इस अंश में तो पूरी हो गई है कि अब भारतीय पोत दूर-दूर के देशों में पहुँचने लगे हैं। यदि हम सावधानी, आग्रह और उत्साहपूर्वक अपने जहाज-निर्माण उद्योग को प्रोत्साहन देते और उसका पोषण करते रहें तो वह दिन दूर नहीं है जब शत प्रतिशत भारत के सामान और भारतीय श्रम से बने हुये भारतीय कम्पनियों के जहाज राष्ट्रीय ध्वज को लहराते हुये उसी प्रकार संसार के प्रत्येक भाग में पहुँचा करेंगे, जिस प्रकार प्राचीन युग में हमारे पूर्वज भारतीय पोतों को लेकर संसार के सुदूरवर्ती देशों में पहुँचा करते थे।

Q. 72. That day is coming when a strong united and well co-ordinated Indian shipping will be able to dictate to foreign shipping and wrest from it the economic sphere rightly belonging to our shipping. Discuss this statement and point out the step the union Govt. has taken for the development of Indian shipping.

भारतवर्ष में जहाजरानी का उद्योग प्राचीन समय में बहुत उन्नति कर चुका था। देश की प्राकृतिक दशा व स्थिति जहाजरानी के अनुकूल है। देश की स्थिति प्रायः और देशों के बीच में है। इसका समुद्री किनारा करीब ४ हजार मील लम्बा है। बहुत से प्राकृतिक खनिज पदार्थ यहाँ पाये जाते हैं। इसलिए प्राचीन समय में भारतीय व्यापार व जहाजरानी दोनों अधिक-से-अधिक उन्नति कर सके। परन्तु अँग्रेजों के राजकाल में भारतीय जहाज को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और इसी समय में इस उद्योग की अवनति हुई। विदेशी सरकार ने भारतीय जहाजरानी को सौतेली दृष्टि से देखा और समय-समय पर भारतीय जहाजी कम्पनियों के विरुद्ध अँग्रेजी जहाजी कम्पनियों को प्रोत्साहन दिया। उस समय बृटिश गवर्नमेंट की यह नीति थी कि सरकारी माल और डाक आदि का अन्य देशों को ले जाने और वहाँ से लाने के कार्य पर एकाधिकार था। इसी प्रकार सरकारी कर्मचारी, तथा सरकारी काम से जाने वाले यात्रियों को अंग्रेजी जहाजों में ही यात्रा करनी पड़ती थी। बृटिश जहाजी कम्पनियों का राजनैतिक प्रभाव भी देश के अहित ही में रहा। बन्दरगाह के कर्मचारी भी भारतीय जहाजी कम्पनियों के विरुद्ध ही आचरण करते थे। भाड़ा प्रतिद्वन्द्विता और दर में रियायत करने के द्वारा भारतीय कम्पनियों को जल-मार्गीय क्षेत्र से हटा देने के प्रबल प्रयत्न किये गये। इन सब कारणों के फलस्वरूप भारतीय जहाजरानी का गौरव समाप्त हो गया।

द्वितीय महायुद्ध के पहले समुद्री व्यापार में भी भारतीय जहाजों का साधारण भाग रहा। युद्धोत्तर काल में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जनता जहाजी कम्पनियों तथा सरकार तीनों का ध्यान भारतीय जहाजरानी की उन्नति की ओर गया। इस समय भारतीय जहाजरानी में विशेष कर दो कमियाँ थीं। जहाजों की कमी और अनुभवी प्रशिक्षित श्रम की कमी। इन कमियों को दूर करने को भारतीय सरकार कटिबद्ध हो गई। विजगापट्टम का जहाज बनाने का कारखाना, जो कि युद्धकाल में केवल मरम्मत का कार्य करता था, जहाजों का भी निर्माण करने लगा है। तब से इस कारखाने के द्वारा बनाये जाने वाले जहाज यातायात का कार्य करने लगे। भारतीय सरकार ने इसी समय सर सी० पी० रमा स्वामी अय्यर की अध्यक्षता में जहाजरानी के उद्योग को सँगठित एवं उन्नत करने के लिए सुझाव देने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति ने पहली सरकार की नीति की आलोचना करते हुए भविष्य में जहाजरानी की उन्नति हेतु अनेक उपायों की सिफारिश की। उसकी सारी सिफारिशें सरकार द्वारा मान ली गई। कमेटी ने ७ साल में जहाजों की वहन-शक्ति बढ़ाने के लिए दो मिलियन टन का उद्देश्य रक्खा है। यह भी सिफारिश की गई कि देश का सम्पूर्ण समुद्रतटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रक्खा जाय और इसी प्रकार बर्मा और सीलोन के व्यापार का ७५% दूर देशों के व्यापार का ५०% और सुदूर पूर्व देशों के व्यापार का ३०% भारतीय जहाजों के लिए ही सुरक्षित रखा जाय। विदेशी जहाजी कम्पनियाँ अब प्रत्यक्ष रूप से भारतीय जहाजरानी को हानि न दे सकें, इससे भारतीय जहाजरानी की परिभाषा इस प्रकार से की गई है कि 'जहाजी कम्पनी जो भारतीय के द्वारा चलाई जाय, भारतीय ही उसका

प्रबन्ध करे व स्वामी हो, और किसी भी जहाजी कम्पनी को भारतीय कम्पनी बनने के लिए निम्न ४ शर्तों की पूर्ति करना अनिवार्य कर दिया गया।

(१) कम्पनी के सारे स्टीमर भारतीय बन्दरगाह पर रजिस्टर्ड होने चाहिए।

(२) कम से कम ७५% शेयर्स और डिबेंचर्स भारतीयों के ही होने चाहिए।

(३) कम्पनी के डाइरेक्टर्स भी भारतीय होने चाहिये और मैनेजिंग एजेंट्स भी भारत के नागरिक होने चाहिए।

कमेटी ने यह भी सिफारिश की, कि जितना ट्रैफिक जहाजों के लिए हो वह भारतीय कम्पनियों में समानता के आधार पर बाँट दिया जाना चाहिए, और पोर्ट ट्रस्ट का प्रबन्ध यातायात मंत्रालय से हटाकर व्यापार मंत्रालय के सुपुर्द कर देना चाहिए। एक शिपिंग बोर्ड स्थापित करने की भी सिफारिश की गई है, जिसका चेयरमैन स्वतन्त्र हो। इस बोर्ड के निम्न कार्य होने चाहिए।

(१) भारतीय जहाजरानी को पूँजी सम्बन्धी तथा अन्य आवश्यक मदद देने की अर्जियों पर विचार करना।

(२) राज्य के नियन्त्रण के बारे में नीति निर्धारित करना।

(३) एकाधिकारी कमियों, उदाहरणार्थ—भाड़ा प्रतिद्वन्द्विता, अथवा भाड़े में रियायत आदि के फलस्वरूप जो गलाघोंट प्रतिस्पर्धा हो रही है उसे दूर करना।

(४) भारतीय कम्पनियों को लाइसेन्स देकर समुद्रतटीय यातायात को नियन्त्रित करना।

इन सिफारिशों को ध्यान में रखकर सरकार ने भारतीय जहाजरानी की उन्नति हेतु अनेक कदम उठाये और अभी तक के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्र में भारतीय जहाजरानी का उद्योग निकट भविष्य में इतना दृढ़, संगठित और सुसमन्वित हो जायगा कि जो विदेशी जहाजी कम्पनियों के ऊपर एक प्रकार का शासन करने और उन्हें अपने आर्थिक क्षेत्र से दूर करने में समर्थ हो सकेगा। नवम्बर सन् १९४७ ई० में भारतीय सरकार ने राज्य तथा व्यक्तिगत मिश्रित स्वामित्व के आधार पर ३ कारपोरेशनों का स्थापित करना निश्चित किया। हर कारपोरेशन की अधिकृत पूँजी २० करोड़ रु० होगी, और प्रथम सरकारी शिपिंग कारपोरेशन की रजिस्ट्री मार्च सन् १९५० ई० में हुई, जिसकी ७५% पूँजी गवर्नमेंट ने दी और शेष सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी ने दी। कम्पनी ने १४,४०० ग्रोस टन भार के दो जहाज खरीद लिए हैं, जो भारत-आस्ट्रेलिया मार्ग पर चलते हैं। अब भारतीय जहाज दूर-दूर देशों को सामान ले जाते हैं। समुद्रतटीय व्यापार भारतीय जहाजों को सुरक्षित रखने को सरकार ने लाइसेन्स प्रथा प्रारम्भ की। इस प्रथा के अन्तर्गत समुद्रतटीय व्यापार में सम्मिलित होने की उतने ही विदेशी जहाजों को आज्ञा दी जाती है जितने आवश्यक समझे जाते हैं। इस व्यापार में भारतीय जहाजों का हिस्सा उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। पहले सन् १९४८ में यह ५३% था और वही अब बढ़कर ८२% हो गया है। सरकार अधिक जहाजों की प्राप्ति का भी बराबर प्रयत्न करती रहती है। इंगलैण्ड, अमेरिका से अनेकों जहाज खरीदे गए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय जहाजी समस्याओं के लिए भारत Inter Governmental maritime consultative organisation का सदस्य बन गया है। यह संस्था विभिन्न देशों की जहाजी कम्पनियों के मध्य उचित सहयोग स्थापित करने में मदद करती है। इसी प्रकार सरकार ने प्रशिक्षण दिलाने के लिए बम्बई व कलकत्ता में दो इंजीनियरिंग कालेज खोले हैं।

'डफरिंग ट्रेनिंग शिप' स्कीम के अन्दर प्रशिक्षण प्राप्त करने की सुविधा भी बढ़ा दी गई। और अफसरों को उच्च प्रशिक्षण देने के लिए एक उच्च स्तरीय कालेज भी खोला गया है। सरकार द्वारा किये गये इन सब कार्यों को दृष्टि में रखते हुए भारतीय जहाजरानी के उज्वल भविष्य में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

Q. 73. Analyse causes which have prevented Indian shipping from being recognised by the Govt. of India as a national responsibility during the last 50 years or so. (A.U.1956)

Q. 74. 'Every country looks upon its shipping as a great national asset and a second line of national defence'. Discuss and point out the causes of the slow growth of this industry in India.

Q. 75. The tragedy of India has been that our rulers seldom realized the importance of sea power or realized it too late. Analyse this statement and suggest measures to develop a strong navy. (A.U.1952)

निस्सन्देह प्रत्येक देश को अपनी जहाजरानी को राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा राष्ट्रीय रक्षा की दूसरी पंक्ति समझना चाहिए। वास्तव में जहाजरानी सदैव से एक अच्छा उद्योग और यातायात का एक सस्ता एवं सुगम साधन रहा है। सड़क-यातायात के साथ ही साथ जल-यातायात प्राचीन काल से चला आ रहा है। जब सड़कों पर मोटरों का नाम नहीं था, स्टीमरों तथा आजकल के जल-वाहनों को लोग जानते भी न थे उस समय झीलों, नदियों तथा समुद्रों में लोग नावों व पाल के जहाजों द्वारा जलयात्रा किया करते थे। व्यापार में जल-यातायात का बड़ा महत्व रहा है। प्राचीन समय में भी यह अधिकांश व्यापार जल-मार्ग द्वारा ही हुआ करता था। इतिहास भी साक्षी है कि मध्यकाल में भी वही देश शक्तिशाली तथा समृद्धिवान थे, जिनके पास मजबूत जहाजी बेड़ा रहा करता था। इंगलैण्ड जहाजरानी में सबसे बढ़ा हुआ था। इस कारण से उसे पूर्वी देशों में साम्राज्य स्थापित करने में अन्य देशों की अपेक्षा काफी सहायता मिली। भारत में भी देशी व्यापार नदियों द्वारा अधिक हुआ करता था, विदेशी व्यापार में यह अपने समुद्री जहाजी बेड़े के लिए मशहूर था, उस समय देश सम्पन्न भी था।

आजकल भी यद्यपि यातायात के आधुनिक साधनों में पर्याप्त उन्नति करली है, थल-मार्ग तथा वायु-मार्ग द्वारा अति शीघ्रगामी वाहनों का प्रयोग होने लगा है; परन्तु इससे जल-मार्ग की महत्ता कम नहीं हुई है। यातायात के सस्ते साधन के रूप में, यह व्यापारिक क्षेत्र को बढ़ा कर राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढ़ाता ही है, साथ-ही-साथ हजारों व्यक्तियों को रोजगार भी प्रदान करता है। काफी संख्या में श्रमिक, नावों तथा जहाज-निर्माण में व उनकी मरम्मत में लगे रहते हैं, इससे भी अधिक यात्रियों तथा सामान को ढोने में रोजी कमाते हैं, इस प्रकार राष्ट्र के लिए समुद्री बेड़ा एक राष्ट्रीय पूंजी के समान है, जिसके द्वारा राष्ट्र अधिक धनोत्पादन में सफल होता है। साथ-ही-साथ युद्धकाल में देश का समुद्री बेड़ा देश की काफी सेवा करता है। यदि समुद्री बेड़ा शक्तिशाली है तो शत्रु देश की नाकाबन्दी नहीं कर सकते, और आवश्यक वस्तुओं का आयात-निर्यात बिना बाधा के चलता रह सकता है, जिससे देश को सब प्रकार की जीवनोपयोगी तथा युद्धोपयोगी वस्तुएं सरलता से मिलती रहेंगी और शक्तिशाली जहाजी बेड़ा शत्रु से देश की रक्षा भी करता रहेगा। इन कारणों से यदि प्रत्येक

देश अपने समुद्री बेड़े को एक राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा रक्षा की दूसरी पंक्ति समझता है तो वह ठीक ही करता है।

जल-यातायात की विशेषता यह है कि दूसरे साधनों की भाँति इसके लिए मार्ग बनाने की आवश्यकता नहीं होती। यदि जल-यातायात नदी, झील अथवा समुद्र के द्वारा होता है, तब तो मार्ग निर्माण में कुछ भी व्यय नहीं करना पड़ता, यदि यह यातायात नहरों के द्वारा होता है तो नहरों का निर्माण करना पड़ता है, पर ये नहरें मुख्यतः सिंचाई के लिये बनाई जाती हैं और उन्हीं का मार्ग के समान प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार से जल-यातायात में पूँजी की बहुत कम आवश्यकता होती है। यदि यह जल-यातायात देश के अन्दर नदियों या नहरों द्वारा होता है तो इसके लिये नाव, स्टीमर आदि बनवाने में भी अधिक व्यय नहीं करना पड़ता, परन्तु यदि जल-यातायात विभिन्न देशों के मध्य में होता है। तो इसके लिए बड़े जहाजों की आवश्यकता होती है।

यदि विभिन्न प्रकार के जल-वाहन विशाल समुद्रों के विस्तृत वक्षस्थल पर लम्बी यात्रा करने में सफल न होते तो एशिया-निवासी अमेरिकन तेल द्वारा प्रकाशित दीपकों के प्रकाश में न बैठ पाते, अमेरिका का गेहूँ दूर देशों के निवासियों को उपभोग के लिए न मिलता। योरोप के निवासियों को गहरी खेती करने का कोई अवसर न मिलता, अमेरिका का सारा आर्थिक उत्थान असम्भव था, इङ्गलैण्ड राजनैतिक तथा आर्थिक साम्राज्य स्थापित न कर सकता, वहाँ के निवासी न्यूजीलैण्ड तथा अर्जेनटायना का ताजा माँस प्राप्त न कर सकते।

इन सब कारणों से अनेक देश जहाजी शक्ति बढ़ाने में अपनी मान-वृद्धि और राष्ट्रीय गौरव समझते हैं। बीसवीं शताब्दी में राष्ट्रीय पोत-संचालन का राष्ट्र-रक्षा सम्बन्धी महत्व भी बहुत बढ़ गया है। "इस भाँति आजकल प्रत्येक सामुद्रिक देश अपने पोत-चालन उद्योग को एक महान राष्ट्रीय सम्पदा, अपनी राष्ट्रीय नीति का एक शक्तिशाली यन्त्र, अपने व्यापार-वृद्धि का आवश्यक अंग, तथा राष्ट्रीय संकट काल के लिए प्रतिरक्षा का द्वितीय बल समझता है।"

भारतीय पोत-चालन की मन्दगति उन्नति के कारण—

भारतीय सागरों में अनेक विदेशी कम्पनियाँ काम करती रहीं, उनकी प्रतिस्पर्धा में भारतीय कम्पनियाँ सुगमता से न ठहर सकीं। विशेषकर बृटिश इण्डिया नेवीगेशन कम्पनी के कारण अनेक भारतीय कम्पनियों को धीरे-धीरे पीछे हटना पड़ा। विदेशी सरकार ने विदेशी कम्पनियों का ही पक्ष लिया। उनको राजकीय डाक ले जाने में आर्थिक सहायता दी गई। सरकारी, रेल-विभाग तथा अन्य प्रकार के माल को ले जाने के लिये विशेष अधिकार दिये गये। इस प्रकार विदेशी कम्पनियों को आश्रय देकर उन्हें एकाधिकार प्राप्त करने में सहायता दी गई। भारतीय कम्पनियाँ भाड़े आदि के quotation भी नहीं दे सकतीं थीं। बृटिश इण्डिया नेवीगेशन कम्पनी को लगभग १५ लाख रुपये वार्षिक आर्थिक सहायता दी गई, जिससे वह डाक ले जा सके। सरकारी कर्मचारी अधिकतर विदेशी जहाजों द्वारा ही विदेश-यात्रा कर सकते थे। बन्दरगाह के अधिकारी भी विदेशियों के साथ मिलकर भारतीय कम्पनियों को हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया करते थे। विदेशी कम्पनियाँ प्राचीन होने के कारण भाड़ा घटा दिया करती थीं, जिससे किसी नवीन भारतीय कम्पनी के पनपने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था, बल्कि सुदृढ़ आर्थिक स्थिति वाली सुप्रतिष्ठित देशी कम्पनियों को भी उनसे मात खानी पड़ती थी।

इसके अतिरिक्त, भारतीय जहाजी बेड़े की उन्नति करने के लिए बहुत से अवसर आये, परन्तु उनमें से किसी का भी उपयोग न किया गया। प्रथम महायुद्ध काल में पनडुब्बी आतंक के कारण तथा विदेशी जहाजों की कमी के कारण भारतीय जहाजों की सेवा की इतनी अधिक माँग बढ़ गई कि उस समय इसकी काफी उन्नति हो सकती थी, परन्तु सरकार ने इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। इसके बाद प्रथम महायुद्धोत्तर काल में प्रत्येक देश अपने जहाजी बेड़े को उन्नतिशील बनाने में संलग्न था। युद्ध में सबको अनुभव हो गया था कि युद्ध में जहाजी बेड़े के बिना सफलता प्राप्त करना कठिन है, रक्षा तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी शक्तिशाली जहाजी बेड़े की आवश्यकता है। इससे प्रभावित होकर विदेशी सरकारों ने विभिन्न प्रकार की सहायता देकर अपने यहाँ के जहाजी बेड़े को शक्तिशाली बनाया। भारतीय जनता भी यह चाहती थी कि जहाज-निर्माण को प्रोत्साहन मिले, समुद्र तटीय व्यापार केवल भारतीयों के लिए छोड़ दिया जाय, उन्हें संरक्षण दिया जाय। असेम्बली में इसी प्रकार के प्रश्न हर वर्ष पूछे जाते थे, परन्तु भारतीय सरकार ने इस ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध काल में भी सब देशों ने अपनी समुद्री शक्ति बढ़ाई, किन्तु भारत सरकार ने इस अवसर से भी कोई लाभ नहीं उठाया, केवल जहाजों की मरम्मत करने के लिए कुछ सुविधाएँ प्रदान कीं।

इतना ही नहीं, भारतीय समुद्रों में काम करने वाली जहाजी कम्पनियों को ही विशेष सुविधायें दी गईं। ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी वैसे ही सबसे अधिक शक्तिशाली हो गई थी। उसे तरह-तरह से संरक्षण देकर प्रोत्साहन दिया गया। विदेशी कम्पनियाँ भाड़े घटाकर भारतीय कम्पनियों को समाप्त करने का सदैव प्रयत्न किया करती थीं। उदाहरण के लिए १९२० में रंगून-बम्बई मार्ग पर चावल ले जाने का भाड़ा १८ रु० टन था, जब सिंधिया कम्पनी के जहाजों ने इस मार्ग पर कार्य करना प्रारम्भ किया तो ब्रिटिश इण्डिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी ने भाड़ा घटाकर ६ रु० टन कर दिया। इसी प्रकार चीन को सूत भेजने के भाड़े में कमी करके टाटा के प्रयत्नों को असफल किया गया। बंगाल स्टीम नेवीगेशन कम्पनी को चिटगांव-रंगून मार्ग से पाँच साल के भाड़ा युद्ध के पश्चात् हटना पड़ा। भारतीय कम्पनियों को मात देने के लिए विदेशी कम्पनियों ने डिफ़र्ड रिबेट सिस्टम का प्रयोग किया।

इसके साथ-ही-साथ रेलों तथा सड़कों के निर्माण, मोटर-यातायात तथा सरकार की उपेक्षा के कारण आन्तरिक जलमार्गों का प्रयोग भी प्रायः कम हो गया। एक तो जल-मार्गों का प्रयोग बरसात में नहीं हो सकता, जब कि ट्रैफिक बरसात में भी काफी मात्रा में मिलता है, दूसरे भारत की नदियाँ वास्तव में आन्तरिक जल-यातायात के लिए बहुत उपयुक्त नहीं है।

Q. 76. Estimate the role coastal shipping in India will have to play. (A.U.1956.)

प्रत्येक देश का समुद्रतटीय व्यापार उस देश के जहाजों का जन्म सिद्ध अधिकार समझा जाता है और यथा सम्भव विदेशी जहाजों को इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। संसार के प्रायः सभी औद्योगिक एवं व्यापारिक देशों ने इस सम्बन्ध में कानून बना लिए हैं, और समुद्रतटीय व्यापार को पूर्णतः अपने जहाजों के लिए सुरक्षित कर लिया है। भारतीय जनता भी इस प्रकार की माँग सन् १९१८ से करने लगी। तटीय व्यापार को देशी जहाजों के लिए सुरक्षित करने के सिद्धान्त को केन्द्रीय विधान मण्डल ने स्वीकार किया, परन्तु इसका कोई विशेष

फल नहीं हुआ। सन् १९४८ में पोत-चालन पुनर्निर्माण उपसमिति ने इस माँग को तुरन्त स्वीकार करने को सरकार से आग्रह किया, परन्तु भारत सरकार ने इसे १९५० में स्वीकार किया। तब से अब तक इस दिशा में सन्तोषजनक प्रगति हुई है। सन् १९५३-५४ से भारतीय तटीय व्यापार प्रायः शत प्रतिशत भारतीय जहाजों के हाथ में रहा।

भविष्य में तटीय व्यापार उन्नति करेगा और इसके साथ तटीय जहाजरानी की भी प्रगति होगी। भारत की समुद्र तटीय रेखा ४००० मील के लगभग लम्बी है। समुद्रीय तट पर बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक तथा व्यापारिक नगर बसे हुए हैं। यहाँ का तटीय समुद्र जहाजों के आने-जाने के लिए उपयुक्त हैं। समुद्र-तट उपजाऊ तथा हरा-भरा है, विभिन्न प्रकार की वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं, जिनके अदल-बदल करने के लिए सस्ते तथा शीघ्रगामी यातायात के साधन की अत्यन्त आवश्यकता है। चूँकि भारत का व्यापारिक सम्बन्ध लंका, जावा, सुमात्रा आदि देशों से घनिष्ट होता जा रहा है, इसके फलस्वरूप भी समुद्र तटीय यातायात बढ़ेगा। भारत के प्रधान सामुद्रिक मार्ग जिन पाँच बन्दरगाहों से आरम्भ होते हैं (बम्बई, कोचीन, मद्रास, विजगापट्टम तथा कलकत्ता) वे भारतीय तट के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैले हुए हैं। यह तट हिन्दमहासागर, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी से घिरा हुआ है। हिन्दमहासागर में होकर पूर्व से पश्चिम का व्यापारिक मार्ग निकलते हैं, यहाँ से पूर्व और दक्षिण-पूर्व को सामुद्रिक मार्ग चीन, जापान, पूर्वी द्वीप-समूह और आस्ट्रेलिया को, दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम में संयुक्त राज्य अमेरिका यूरोप तथा अफ्रीका और दक्षिण में लंका को जाते हैं। इन देशों से व्यापार-वृद्धि के साथ-ही-साथ तटीय यातायात भी बढ़ेगा, अतः भारतीय समुद्र तटीय जहाजरानी का भविष्य उज्ज्वल ही प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त यदि तटीय यातायात में काफी उन्नति हो जाय और समुद्र-तट पर स्थित बड़े-बड़े बन्दरगाह, शहर तथा कस्बे तटीय जल-मार्ग द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित हो जावें तो उनके लिये रेल अथवा सड़क द्वारा यातायात का प्रबन्ध करने का कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा और इस प्रकार जो धनराशि बचेगी वह दूसरे क्षेत्रों में यातायात की सुविधाएं प्रदान करने में व्यय की जा सकती है। इससे देश की आर्थिक उन्नति थोड़े समय में ही हो जायगी तथा उपलब्ध साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकेगा।

जल-यातायात अन्य यातायात से कुछ विशेषताएं रखता है। जल-यातायात का समुद्र-पथ प्राकृतिक होता है, रेल-पथ अथवा सड़क की भाँति इस पर अधिक धनराशि व्यय नहीं करनी पड़ती, इससे जल-यातायात का लागत व्यय यातायात के और साधनों के व्यय से कम होता है, अतः आर्थिक दृष्टि से भी समुद्र तटीय प्रदेश की उन्नति के लिए तटीय मार्ग का विकास आवश्यक है।

Q. 77 Describe the possibilities of developing traffic on water ways and stretches of water ways in India, and state the opinion of experts in this connection.

सम्पूर्ण भारत में जल-मार्गों की लम्बाई ४१,००० मील है जिनमें से २६,००० मील लम्बी नाव्य नदियां और १५,००० मील लम्बी नहरें हैं।

बंगाल का पश्चिमी भाग तो नहरों की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। भारत के विभिन्न भागों से निर्यात के लिये जो माल कलकत्ता को आता है उसका लगभग २५% जल-मार्गों द्वारा ही लाया जाता है। इसका भी ६३% तो अकेले आसाम से ही नदियों और नहरों द्वारा आता है। कलकत्ता के जल-मार्गों द्वारा किये जाने वाला व्यापार

प्रतिवर्ष लगभग ४५ लाख टन का होता है, जिसमें ३४% स्टीमरों द्वारा और ६६% देशी नावों द्वारा ढोया जाता है। यात्री भी नावों द्वारा अधिक आते जाते हैं। हिजली, सरक्यूलर, पूर्वी नहर, मिदनापुर और उड़ीसा नहर द्वारा पश्चिमी जिलों की पैदावारें कलकत्ता तथा अन्य व्यापारिक मण्डियों को पहुँचाई जाती हैं।

दक्षिणी भारत में बकिंघम नहर कोरोमंडल तट पर दक्षिण की ओर २७६ मील तक जाती है और मद्रास को कृष्णा के डेल्टा से जोड़ती है।

गोदावरी नहर में दोलेशवरम तक तथा कृष्णा नहर में ४०० मील तक नावें चलती हैं।

कर्नूल-कड़ापा नहर भी १६० मील तक नावें चलाने योग्य है। दक्षिणी भारत में नदियों के डेल्टों की कपास, चावल आदि इन्हीं नहरों द्वारा ढोये जाते हैं।

भारत में साल भर जारी रह सकने वाले जलमार्गों पर स्टीमर्स और देशी बड़ी-बड़ी नावें चलती हैं। उत्तरी भारत में नदियों में २०,००० मील तक जहाज चलते हैं। जलमार्गों की दृष्टि से बंगाल, आसाम, मद्रास तथा बिहार महत्वपूर्ण हैं।

दक्षिणी भारत में गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा तथा ताप्ती नदियों के निचले भागों में ही नावें चल सकती हैं। इनका शेष भाग पठारी है। गंगा नदी में मुहाने से ५०० मील ऊपर तक—(जहाँ लगातार रूप से नदी ३० फीट गहरी है)—कानपुर तक नावें चला करती हैं। यमुना नदी में प्रयाग से राजापुर तक साल भर नावें चलती हैं। ब्रह्मपुत्र नदी में मुहाने से डिब्रूगढ़ तक ८०० मील नावें चलती हैं, किन्तु इस नदी में नावें चलाने में कुछ असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। नदी के मार्ग में प्रायः नये-नये द्वीप बनते रहते हैं, जिसमें नावों को खेने में बड़ी अड़चन पड़ती है तथा वर्षा ऋतु में पानी की तेजी के कारण नावों के उलट जाने का डर रहता है। हुगली नदी में भी नादिया तक जहाज पहुँच सकते हैं। छोटी-छोटी नहरें बड़ी-बड़ी नदियों को जोड़ती हैं, इसलिये कलकत्ते से आसाम तक स्टीमर चलते हैं।

यद्यपि भारत में नदियाँ बहुत हैं, किन्तु फिर भी आन्तरिक आवागमन के लिये उनका पूर्ण उपयोग नहीं होता। इसका मुख्य कारण भूमि की रचना तथा अब तक विदेशी सरकार का ध्यान केवल रेल-मार्गों को उन्नत करना ही रहा है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारण मुख्य हैं :—

(१) भारत की अधिकांश नदियों में वर्षा के दिनों में बाढ़ आ जाती है। इस समय नदी की धारा तेज होती है, अतः उसमें नाव खेना बड़ा कठिन होता है।

(२) गर्मी के दिनों में अधिकांश नदियाँ सूखी रहती हैं।

(३) दक्षिण की नदियाँ तो पठारी भूमि पर बहने के कारण नावें चलाने के योग्य हैं ही नहीं।

(४) कभी-कभी नदियाँ अपने मार्ग भी बदला करती हैं। इस कारण भी उनका उपयोग नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर पतली धारा के रूप में बहने लगती हैं।

(५) प्रायः सभी नदियाँ छिछले तथा बालूमय डेल्टाओं में गिरती है, अतः समुद्री किनारे से देश के भीतरी भागों में जहाज नहीं जा सकते।

भारत में नदी-यातायात को विकसित करने की बड़ी आवश्यकता है। पिछले महायुद्ध के समय इसका महत्व विशेष रूप से सामने आया। अभी तक जल-यातायात

प्रान्तीय सरकारों का विषय रहा है इस कारण से भी इसके देश-व्यापी विकास की कोई योजना नहीं बन सकी। देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जो विधान बना है उसमें अन्तर्राज्य की नदियों और जल-मार्गों का यातायात भारत सरकार का विषय कर दिया गया है और केन्द्रीय जल शक्ति, सिंचाई और नौका संचालन आयोग (Central Waterways, Irrigation and Navigation Commission) के जिम्मे देश के नदी-यातायात की एक योजना के आधार पर विकसित करने का काम सौंपा गया है। इसने भारत के विभिन्न भागों में जल-मार्गों की उन्नति करने की जो योजना बनाई है वह यह है :—

(१) बंगाल में दामोदर घाटी योजना (Damodar valley project) के फल-स्वरूप रानीगंज की निचली कोयले की खानों को हुगली नदी से एक जल-यातायात की नहर के द्वारा मिलाया जायगा तथा गंगा बैरेज प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भी एक नहर बनाने की योजना है, जो भागीरथी से झाँमीपुर के पास मिलेगी। गंगा नदी और भागीरथी के बीच के जल-मार्ग, तीस्ता-नदी योजना के अन्तर्गत उत्तरी बंगाल के जल-मार्ग तथा पूर्वी बंगाल और कलकत्ते के बीच के जल-मार्गों का पुनर्निर्माण किया जायगा।

(२) आसाम की दीहींग, डिब्रू, धनसीरी, कलांग नदियों का पुनरुत्थान करना।

(३) बिहार में गंडक और कोशी नदियों तथा उनकी सहायक नदियों का पुनर्निर्माण करना तथा सोन घाटी योजना के अंतर्गत सोन नदी को १५० मील तक यातायात के योग्य बनाना।

(४) बेतवा और चम्बल नदियों की बाढ़ के पानी को रोक कर ऐसी व्यवस्था करना, जिसके फलस्वरूप शीत ऋतु में भी यमुना नदी में यातायात के लिये पर्याप्त पानी की मात्रा उपलब्ध हो सके।

(५) महानदी योजना के अन्तर्गत हीराकुण्ड बाँध के पूरा हो जाने पर महानदी का ३०० मील का टुकड़ा जल-यातायात के योग्य हो सकेगा।

(६) उड़ीसा की तटीय नहरों को बढ़ाकर मद्रास की नहरों से जोड़ दिया जाय, जिससे आसाम से मद्रास तक जल-यातायात का सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सके।

(७) मध्य प्रदेश में नर्मदा और ताप्ती नदियों को भी यातायात के योग्य बनाने का प्रश्न विचाराधीन है।

Q. 78. Write notes on—

(a) Cost of service in water transport.
(b) The development of water transport in India.
(c) Shipping conferences.
(d) Deferred Rebate system.

पोत-चालन-व्यय

यातायात के और साधनों के अनुसार पोत-चालन-व्यय भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) पूँजीगत व्यय।
(२) संचालन व्यय।

पूँजीगत व्यय में अधिक व्यय नहीं करना पड़ता। क्योंकि रेल की तरह मार्ग-निर्माण के लिए पोत कम्पनी को कोई पूँजी नहीं लगानी पड़ती। समुद्र ही पोतों के मार्ग हैं जो प्रकृति-प्रदत्त हैं। रेल की अपेक्षा पोत-चालन के लिए कम पूँजी की आवश्यकता होती है। विशेषज्ञों ने अनुमान किया हैं कि रेलों में लगी हुई पूँजी उनकी वार्षिक आय का लगभग दस गुना होती है, परन्तु जहाजों में लगी हुई पूँजी उनकी वार्षिक आय से कम ही होती है। संचालन व्यय वह वास्तविक व्यय होता है जो कम्पनी को जहाज चलाने में खर्च करना पड़ता है।

संचालन-व्यय को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(अ) स्थायी व्यय

(१) देख-रेख जहाजों की रक्षा, मरम्मत आदि।
(२) प्रबन्ध अधिकारियों का व्यय, लेखन, विज्ञापन, मेहनताना आदि।
(३) बीमा, सामुद्रिक जोखिम से बचने के लिए।

उपर्युक्त प्रकार के व्यय का यातायात से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं होता। ये यातायात के घटने-बढ़ने के साथ प्रायः घटते-बढ़ते नहीं हैं।

(ब) अस्थायी व्यय

(१) शक्ति-उत्पादन, कोयला अथवा तेल का व्यय।
(२) बन्दरगाही व्यय, रोशनी आदि।
(३) लदान व्यय, माल लादने व उतारने का व्यय।
(४) क्षति-पूर्ति व्यय, नष्ट-भ्रष्ट होने का compensation।

व्यय की दृष्टि से बड़ा जहाज मितव्ययी होता है। इसके स्थायी व्यय कम तथा अस्थायी व्यय अधिक होते हैं, परन्तु अधिक tonnage होने के कारण व्यय का भार कम पड़ता है। छोटे जहाजों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। परन्तु छोटी यात्राओं के लिए, थोड़े सामान के लिए व्यावहारिक दृष्टि से छोटे जहाज अच्छे होते हैं।

जल-यातायात, यातायात का अति प्राचीन साधन है। आधुनिक वाहनों के पहले ही नहीं, वरन सड़कों पर चलने वाली देहाती बैलगाड़ियों से भी बहुत पहले जल-यातायात प्रारम्भ होगया था। सबसे पहले छोटी नावें बनाई गईं, फिर बड़े-बड़े जहाज। जलयातायात सुगम, सरल, सस्ता तथा प्राचीनतम साधन हैं, जिसके द्वारा मानव तथा माल स्थानान्तरित होते चले आरहे हैं। परन्तु यह यातायात बहुधा प्राकृतिक जलमार्ग पर निर्भर रहता है, अतः ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी बहने वाली नदियाँ जल-यातायात के लिए उपयुक्त नहीं होतीं। नदियों में भँवर तथा समुद्र में तूफानों आदि का डर रहता है। जलमार्ग तीन प्रकार के हो सकते है—(१) नदी-मार्ग, (२) नहर-मार्ग और (३) समुद्रीय मार्ग। भारत के आन्तरिक क्षेत्र में नदी-मार्ग प्रधान रहा है, नहरें उससे कम। समुद्रीय मार्ग में भारत प्राचीन समय में तो काफी अगुआ था, पर बीच में इसका स्थान बहुत गिर गया और अभी वह अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर पाया।

भारत में गंगा व ब्रह्मपुत्र नदियों ने ही जलमार्ग का विशेष रूप से कार्य किया है। ये नदियाँ अति प्राचीन काल से जल-यातायात के काम में लाई जा रही हैं। नदी-मार्ग की उन्नति के लिए एक River Research Institute पूना में खोला गया है। सन् १९४९ ई० से गङ्गा, घाघरा, सोन तथा गंडक आदि नदियों को जल-यातायात के लिए अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। सन् १९४५ ई०

में स्थापित किये गये The central water ways Irrigation and Navigation commission ने जल-मार्ग की उन्नति के लिए काफी प्रयत्न किये हैं तथा बहुत से सुझाव दिये है। इन सुझाओं के अनुसार ऊपरी आसाम म और सोन, गंगा, घाघरा, यमुना, गंडक, गोदावरी तथा बानगंगा आदि नदियों द्वारा काफी जल-यातायात होने लगेगा। कुछ विदेशी विशेषज्ञों ने भारत में नदी यातायात की उन्नति के लिए निम्न लिखित सुझाव दिये हैं :—

(१) देशी नावों के मालिकों की सहकारी समितियां स्थापित की जावें (२) देशी नावों की चाल बढ़ाई जावे, (३) सिंचाई के लिए नदियों मे पानी किसी योजना के अन्तर्गत लिया जाये, जिससे नावें चलाने के लिये नदियों में पानी की कमी न हो सके। विभिन्न नदियों पर वहु उद्देशीय योजनायें वनाते समय इस बात का भी ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि जल-यातायात के लिए देश में अधिक-से-अधिक नदियां काम में लाई जा सकें।

यातायात के लिए भारत में नहरों का प्रयोग भी बहुत दिनों से किया जा रहा है। सन् १८७२ ई० में नहरों के सम्बन्ध में निम्नलिखित योजना बनाई गई थी :—गंगा तथा सिन्ध नदी को नहर के द्वारा मिला दिया जावे, जिससे कलकत्ता से लेकर करांची तक आन्तरिक जल-मार्ग बन सके। इसी प्रकार गोदावरी व ताप्ती को नहर द्वारा मिलाकर कोकोनाडा से सूरत तक एक जल-मार्ग बनाया जाय। इस प्रकार १९ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग से ही इस देश में नहरों के विकास की योजनाएँ बनाई जा रही हैं। आधुनिक समय में आसाम तथा मद्रास की नहरों को मिलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। दामोदर घाटी व गंगा नदी योजनाओं के अन्तर्गत भी लम्बी-लम्बी नहरें बनाई जारहीं हैं। इसी प्रकार कोसी तथा महानदी योजनाओं के अन्तर्गत भी नाव चलाने योग्य नहरों के निर्माण करने का कार्य प्रारम्भ किया जायगा। आज-कल देश में १५,००० मील लम्बी नहरें हैं, जो जल-मार्ग का कार्य करती हैं। इनमें से मिदनापुर नहर, हुगली नहर, उड़ीसा तटीय नहर, पूर्वी कलकत्ता नहर बंगाल में, गोदावरी नहर, कृष्णा नहर, बकिन्घम नहर, तथा तटीय नहर मद्रास में, गंगा नहर उत्तर प्रदेश में मुख्य हैं।

समुद्रीय यातायात भी भारत के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। इतिहास साक्षी है कि सिकन्दर महान ने अपनी सेना को वापिस ले जाने के लिए २००० भारतीय जहाज़ों का प्रयोग किया था। अकबर के समय में बंगाल, काश्मीर तथा लाहौर आदि स्थानों में बड़ी-बड़ी नावें व जहाज बनाये जाते थे। अकबर के समकालीन भारतीय जहाज १५०० टन माल ढोने की क्षमता रखते थे। अँग्रेजों के समय में भारतीय जहाजरानी को बहुत बड़ा धक्का लगा। अँग्रेजी जहाजरानी की उन्नति के लिए भारतीय जहाजरानी का बलिदान किया गया। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय जहाज रानी में काफी अवनति हो गई और वह क्रम प्रथम विश्वयुद्ध तक इसी प्रकार चलता रहा। प्रथम युद्ध में सामरिक प्रबन्धन के कारण बृटिश सरकार को इस ओर ध्यान देना पड़ा और लकड़ी के जहाजों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया गया। इस समय तक भारतीय जनता भी काफी जागरूक हो गई थी, तथा कुछ उद्योगपतियों की सहायता से जहाजरानी तथा जहाज-निर्माण-उद्योग उन्नति की ओर अग्रसर होने लगे। द्वितीय महायुद्ध काल में भारतीय जहाजी बेड़े ने संतोषजनक प्रगति कर ली थी।

भारतीय सरकार ने इस उद्योग की उन्नति के लिये सुझाव देने को १९४८ ई० में

एक समिति का निर्माण किया (सी० पी० रमास्वामी आयंगर समिति)। इसने अपनी रिपोर्ट सन् १९४७ ई० में दी। समिति की मुख्य सिफारिशें निम्न हैं :—

(१) आगामी सात वर्षों में भारतीय जहाजों की २ मिलियन टन वहन-क्षमता होनी चाहिए।

(२) जहाजी कम्पनियों के ७५ प्रतिशत शेयर्स भारतीयों के होने चाहिये।

(३) इनके प्रबन्धक तथा प्रतिनिधि भारतीय होने चाहिए।

(४) तटीय व्यापार शत प्रतिशत भारतीयों के हाथ में होना चाहिए।

(५) इन तथा अन्य सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए एक शिपिंग बोर्ड स्थापित करने का सुझाव भी रक्खा गया। सरकार ने तीन शिपिग कोरपोरेशन बनाना स्वीकार भी कर लिया। प्रत्येक कोरपोरेशन में १० करोड़ रुपयों की पूँजी लगाने का निश्चय किया गया। सन् १९५१ ई० में विजगापट्टम में जहाजों का कारखाना स्थापित किया गया। केन्द्रीय सरकार भारतीय बन्दरगाहों की उन्नति करने के लिए भी काफी प्रयत्नशील है। इस पर लगभग ४० करोड़ रुपया व्यय किया जायगा। मुख्य तथा छोटे-छोटे दोनों प्रकार के बन्दरगाहों का विकास किया जायगा।

भारत में इस समय निम्नलिखित भारतीय मुख्य जहाजी कम्पनियाँ काम कर रही हैं :—

(१) दी कलकत्ता बर्मा स्टीम नेवीगेशन कम्पनी (१८५४)
(२) दी टाटा लाइन (१८९३)
(३) दी सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी (१९२०)

इन कम्पनियों को विदेशी कम्पनियों से भाड़े दर में काफ़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ा। विदेशी कम्पनियों ने राजनैतिक शक्ति का प्रयोग इन कम्पनियों को दबाने के लिए किया, परन्तु किसी-न-किसी प्रकार ये कम्पनियाँ मुकाबला करती रहीं और राजनैतिक स्वतन्त्रता के पश्चात् अब इन कम्पनियों को सरकार द्वारा काफी प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

जहाजी कर्मचारी तथा अफसरों को उचित प्रशिक्षण के लिए भी सरकार ने प्रयत्न किया है। एक प्रशिक्षण संस्था बम्बई में सन् १९४८ में खोली गई। विशाखापट्टम तथा कोचीन में इसी प्रकार की संस्थाएं खोलने का विचार किया जा रहा है। बम्बई तथा कलकत्ता में दो Marine Engineering Colleges इन्जीनियर्स को शिक्षा देने के लिए खोले गये हैं। गत २५ वर्षों में Dufferin ने भी इस प्रकार की प्रशिक्षण में काफी सहयोग दिया है। सन् १९२७ ई० में Dufferin training ship की स्थापना भारतवासियों को जहाजी प्रशिक्षण देने के लि

युद्धोत्तर काल में स्थान विस्तार (expansion of tonnage) का भी पर्याप्त प्रयत्न किया गया। भारत में जहाज निर्माण द्वारा, बड़े जाहजों को तटीय व्यापार से सामुद्रिक व्यापार में परिवर्तन द्वारा, पाल-पोतों के उपयोग द्वारा, विदेशों से जहाज प्राप्त करके तथा पुराने जाहजों को मोल लेकर देश में जहाजी स्थान, विस्तार काफी मात्रा में किया जा चुका है। यदि हम सन् १९४६ तथा १९५४ के आंकड़ों की तुलना करें तो स्पष्ट हो जाता है कि देश ने इस दिशा में कितनी प्रगति की है। सन् १९४६ में देश में १५० टन और अधिक के जहाज १२७०८३ टन की क्षमता वाले ४९ जहाज थे पर १९५४ ई०, में जहाजों की संख्या बढ़ कर १२४ हो गई तथा जहाजों की कुल क्षमता ४३५३०० टन हो गई। टनेज की वृद्धि के साथ ही साथ रेटिंग के

के प्रशिक्षण में भी काफी उन्नति हो रही है। सन् १९५३-५४ में कलकत्ता में स्थित प्रशिक्षण पोत "भद्र" तथा विशाखापट्टनम में स्थित "मेखला" द्वारा लगभग १०४५ विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर निकले।

यद्यपि भारतीय जहाजरानी की गत वर्षों में काफी उन्नति हुई है, फिर भी इस उद्योग को अभी कुछ जटिल समस्याओं का सुलझाना शेष रह गया है। हमारे समुद्रों में विदेशी जहाज अधिक क्रियाशील हो रहे हैं, जिससे हमारे जहाजों को काम कम मिलता है। हमारे देशों में तड़ाग पोत तथा यात्री पोतों का भी अभाव है, जबकि इनकी माँग आजकल बराबर बढ़ रही है। इसके अतिरिक्त देश में प्रशिक्षण केन्द्रों की कमी है। हमारे जहाजों का लागत व्यय अधिक है, श्रम-संस्थाएँ हड़तालों द्वारा लागत व्यय और भी ज्यादा बढ़ाती हैं। इस उद्योग की उन्नति के लिए सरकारी सहायता भी अभी अपर्याप्त है।

जहाँ तक सरकारी अथवा राजकीय सहायता का प्रश्न है, राजकीय सहायता पोत-संचालन उद्योग को दो रूप से दी जाती है :—

(१) प्रत्यक्ष
(२) अप्रत्यक्ष

प्रत्यक्ष सहायता के अन्तर्गत निम्नांकित सहायता सम्मिलित की जाती है :—

(१) पोत-निर्माण-सहायता—जहाजों के निर्माण करने में सरकार सहायता में निर्माण का कुछ भाग देती है।

(२) ऋण देना—बिना ब्याज अथवा कम ब्याज पर जहाज बनाने अथवा मोल लेने के लिए सरकार द्वारा धन-राशि दी जाती है।

(३) संचालन-व्यय-सहायता—जिन क्षेत्रों अथवा मार्गों पर देशी कम्पनियां विदेशी प्रतियोगिता अथवा और किसी कारण से जहाज चलाने में असमर्थ होती हैं तो वहाँ की सरकार व्यय का कुछ प्रतिशत कम्पनियों को क्षतिपूर्ति के रूप में दे दिया करती है।

अप्रत्यक्ष सहायता के अन्तर्गत तटीय व्यापार को देशी जहाजों के लिए सुरक्षित रखना, राष्ट्रीय पोत-चालन व्यवसाय को आश्रय देना, विभिन्न प्रकार के करों से मुक्त करना, आयकर में छूट देना आदि आते हैं।

उपर्युक्त दोनों प्रकार की सहायता भारत सरकार द्वारा यथाशक्ति भारतीय कम्पनियों को दी जाती है। भारत सरकार ने सन् १९५१ से लेकर सन् १९५४ तक करीब १.५० लाख रुपया विशाखापट्टनम पोत-निर्माण शाला में निर्मित जहाज मोल लेने वाली भारतीय कंम्पनियों को सहायता के रूप में दिया है। ऋण देने के लिए भी भारत सरकार ने १९५५-५६ में ८३२ लाख रुपयों का प्रबन्ध किया है। केन्द्रीय सरकार विदेशों से जहाज मोल लेकर देशी कम्पनी को बेच देती है। भारत सरकार ने तीन अर्ध सरकारी निगम बनाने का भी संकल्प कर लिया है। तटीय व्यापार भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित कर दिया गया है। आशा की जाती है कि भविष्य में सरकार अपनी सहायता का क्षेत्र बढ़ाती ही जायगी।

पोत-समितियाँ

राजनैतिक दृष्टि से तो यह काल स्वतन्त्रता का युग कहा जा सकता है, परन्तु आर्थिक दृष्टि से परतन्त्रता का ही है, क्योंकि उद्योगों पर विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण

तथा उनका राष्ट्रीयकरण करने की प्रवृत्ति दिन ब दिन बढ़ती चली जाती है। इस युग में भी पोत-चालन एक ऐसा उद्योग है, जो अन्य उद्योगों की अपेक्षा स्वतंत्र है। पोत-चालक कम्पनियाँ कभी-कभी इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने लगती हैं। वे पारस्परिक प्रतियोगिता में एक दूसरे का गला घोंटने को प्रस्तुत हो जाती हैं। इस गलाघोंट प्रतियोगिता के फलस्वरूप भाड़ा-युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्येक कम्पनी और कम्पनियों की अपेक्षा सस्ते भाड़े पर माल ढोने का प्रयत्न करने लगती है, इससे कम्पनियों को आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है, साथ-ही-साथ व्यापारियों को भाड़े की अस्थिरता के कारण हानि सहनी पड़ती है।

भाड़ा-युद्ध जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो जहाजी कम्पनियाँ इस युद्ध को अधिक चलाने में असमर्थ हो जाती हैं, प्रतियोगिता को बन्द करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है, सहयोग की भावना बढ़ती है और एक प्रकार का संगठन स्थापित किया जाता है। सब कम्पनियाँ मिलकर भाड़े आदि के बारे में व्यावहारिक नियम बना लेती हैं, जिनका पालन सब कम्पनियों द्वारा किया जाता है। इन्हीं सम्मिलित प्रयत्नों को पोत-सम्मेलन (shipping conference) अथवा पोतगुट्ट (shipping rings) कहते हैं।

इन सम्मेलनों के फलस्वरूप भाड़ा-युद्ध समाप्त हो जाता है, आपस का द्वेष भाव भी दूर हो जाता है, व्यापारियों को नियमित सेवा (regular sailings) प्राप्त होने लगती है। भाड़े की दरों में स्थिरता तथा समता आ जाती है, तथा उच्चकोटि के जहाज काम में लाये जा सकते हैं।

परन्तु इन सम्मेलनों से हानियाँ भी होने लगती हैं। सम्मेलनों के द्वारा कभी-कभी पोत-कम्पनियाँ इस व्यवसाय में एकाधिकार प्राप्त कर लेती हैं। अतः एकाधिकारिता के सारे दुर्गुण इस व्यवसाय में घुस आते हैं। भाड़ों की दरें और अधिक हो जाती हैं। असदस्य कम्पनियों के प्रति प्रतियोगिता बढ़ जाती है और ऐसी कम्पनियों का ठहरना प्रायः कठिन हो जाता है।

फिरौती सिद्धान्त (deferred rebate) के द्वारा सदस्यों में भी एक प्रकार की प्रतियोगिता बनी ही रहती है, व्यापारियों की स्वतन्त्रता कम हो जाती है तथा नई कम्पनियों को कार्य प्रारम्भ करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

Deferred Rebate system के अनुसार सदस्य कम्पनियों द्वारा ग्राहकों को एक प्रकार का प्रलोभन दिया जाता है, जिससे वे किसी विशेष कम्पनी के ग्राहक बने रहें। सदस्य कम्पनियों द्वारा अपने-अपने ग्राहकों के पास एक प्रकार की सूचना भेजी जाती है कि यदि वे चार अथवा छह माह तक अपना सारा माल केवल सदस्य कम्पनियों के जहाजों द्वारा ही भेजते रहें तो उस अवधि में दिये गये भाड़े का कुछ भाग प्रायः १/१० उसके हिसाब में जमा कर लिया जायगा और यदि आगामी उतने ही समय तक उन्हीं जहाजों का प्रयोग करते रहे तो पिछला जमा किया हुआ धन लौटा दिया जायगा और उसी प्रकार दूसरी अवधि में दिये गये भाड़े का कुछ भाग जमा कर लिया जायगा, परन्तु यदि दूसरी अवधि में वह अन्य जहाजों का प्रयोग करने लगे तो पहली अवधि में जमा किया हुआ धन उसे नहीं मिलेगा।

सदस्य कम्पनियाँ संस्था का रूप अपने आप निश्चित करती हैं और यह उद्देश्य के ऊपर निर्भर होता है। भाड़े की दर निर्धारण करने, मार्ग, क्षेत्र निश्चित करने अथवा सम्पूर्ण सदस्य कम्पनियों की आयको एकत्रित करके फिर आपस में बाँट लेने

के लिए पोत-संस्थाएं स्थापित की जाती हैं। इस प्रकार की समितियों अथवा संस्थाओं के नियम, दफ्तर, कर्मचारी आदि अलग से होते हैं। सदस्य कम्पनियों के लिए इसे एक प्रकार की केन्द्रीय संस्था समझा जाना चाहिए। कभी-कभी पत्र-व्यवहार के द्वारा ही ये उद्देश्य पूरे कर लिये जाते हैं।

इस समय भारत ब्रूटेन व योरुप, तथा भारत व अमेरिका के बीच करीब २० समझौते हैं। ये समझौते विभिन्न मार्गों अथवा बन्दरगाहों से सम्बन्धित हैं। बम्बई की सिन्धिया कम्पनी, कलकत्ता की भारत स्टीमशिप कम्पनी, तथा पूर्वी पोत-चालन निगम इन समझौतों में मुख्य रूप से भाग लिए हुए हैं।

CHAPTER XI

Air Transport

Since the War of 1914-18 civil aviation has made rapid progress in western countries. In India, interest in civil aviation was aroused by the inauguration of a postal air mail service between Karachi and Bombay. In due cour e of time India became a party to the International Air Convention and the Government of India appointed a Director and Deputy-Director of Civil Aviation.

The Second World War greatly increased the urgency for developing aviation in India. The Indian Air force was started on a small scale in 1932 after the first batch of Indian Cadets had been trained at Cranwell. The recent war also increased the importance of developing the production of aircraft in India itself. The Hindusthan Aircraft Company Ltd. was set up at Bangalore. The company was purchased by the Government of India in 1942.

Air transport in India was nationalised in 1953. All parts of the country are linked by services operated by the Indian Airlines Corporation whose air routes account for a total mileage of 15209. The services provided by the Air India International reach out of 15 countries and cover a total route mileage of 16673. Both corporations have sizable programmes for purchase of Additional aircraft and for improving their operational facilities.

A large number of civil aviation works were undertaken during the first plan. These included the construction of 9 new aerodromes and considerable improvements at a number of existing aerodromes. During the second plan, 8 new aerodromes are to be constructed and tele-communication and other equipment are to be provided at several aerodromes. Special programmes for aeronautical training form part of the plan.

Q. 78. 'Air transport, its research, development and manufacture are in their infancy in India. Vested interests are being created'. Explain the above statement and give an outline of the policy of union Govt. for developing Air Transport.

(A.U. 1950)

हवाई-यातायात भारत के लिए द्वितीय महायुद्ध की देन है। महायुद्ध के प्रारम्भ होने के समय भारतीय वायु-यातायात अपनी शैशवावस्था में था। ऐसा ज्ञात होता है कि भारतीय सरकार इस ओर किसी प्रकार का ध्यान ही नहीं दे रही थी, जबकि अन्य देशों में वायु-यातायात ने काफी उन्नति कर ली है। द्वितीय महायुद्ध ने भारत की इस कमजोरी को स्पष्ट कर दिया। भारतीय वायु-यातायात की हीनावस्था के कारण ही मित्रराष्ट्रों को बर्मा, जापान तथा पूर्वीय देशों में हार खानी पड़ी। वायु-

यातायात के कारण ही जापान ने अचानक प्रारम्भ में विजय पाई। भारतवर्ष अपनी स्थिति के कारण तो वायु-यातायात-विकास के लिए एक आदर्श देश है। देश का क्षेत्र काफी विस्तृत है। इसका सम्बन्ध प्राय: सम्पूर्ण देशों से है। पृथ्वी पर केन्द्रीय स्थान में स्थित है। इतना होते हुए भी यहाँ पर यातायात की सुविधाओं की कमी होना देश के लिए लज्जास्पद है। हवाई जहाजों की संख्या तो कम है ही, हवाई-मार्ग भी थोड़े ही हैं। वायु-मार्ग का प्रयोग करने वाली जनसंख्या भी बहुत कम है। हवाई अड्डों की भी संख्या कम है और उस पर भी वे आधुनिक यन्त्रों से सुसज्जित नहीं हैं। अनेक हवाई अड्डे तो ऐसे हैं कि उन पर रात्रि में यात्रा प्रारम्भ करने के लिये आवश्यक साधन नहीं हैं। यायु-यातायात के लिए meterological और wireless department का होना अत्यावश्यक है, परन्तु इस देश में अभी तक ये दोनों विभाग पूर्ण-रूपेण विकसित नहीं हुए। यदि भारत को वायु-यातायात का विकास करना है तो अन्य देशों के समान उसे भी वे सारी सुविधायें जुटानी पड़ेंगी, जिससे धीरे-धीरे देश में हवाई-जहाजों का निर्माण होने लगे। जबकि दूसरे देश विभिन्न प्रकार के हवाई जहाजों तथा सर्वत्रगामी इंजनों का निर्माण अच्छी प्रकार करने लगे हों, उस समय यह देश केवल दूसरे देशों से जहाजों के हिस्से मँगा कर उनको फिट करने में ही अपना गौरव समझता है। वास्तव में भारत ऐसे प्रगतिशील देश के लिए यह अवस्था शोचनीय है। यद्यपि वायु-यातायात सम्बन्धी भारत की यह दयनीय दशा कुछ व्यक्तिगत कम्पनियों के कारण ही हुई है। फिर भी सरकार इस दोष से मुक्त नहीं हो सकती। जब तक सरकार स्वयं इधर कोई ठोस उपाय न करेगी तब तक उचित उन्नति होने की आशा नहीं। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद भारत में जनता तथा हवाई जहाज चालकों द्वारा हवाई यातायात में उन्नति की प्रबल माँग होने लगी। भारतीय सरकार ने १९४९ ई० में Air transport enquiry committee नियुक्त की, जिसका कार्य वायु-यातायात की कार्य-प्रणाली पर रिपोर्ट देना था। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट १९५० में दी। इसमें वायु-यातायात उद्योग को अत्यन्त सुदृढ़ बनाने की सिफरिश की गई। कमेटी को यह विश्वास हो गया कि भारतीय वायु-यातायात उद्योग की आर्थिक दशा असन्तोषजनक है। इसका कारण यही है कि देश में वायु-सेवा की माँग कम है, परन्तु वायु-सेवा की पूर्ति करने वाली कम्पनियाँ अधिक हैं। इस दोष को मिटाने को इस कमेटी ने भारतीय वायु-यातायात का राष्ट्रीयकरण करने के लिए एक विस्तृत योजना बनाई। सरकार ने इस कमेटी के प्राय: सारे सुझाव स्वीकृत कर लिए हैं। देश में बहुत से flying clubs स्थापित किये गये हैं, जहाँ सामान्य नागरिक सस्ते व्यय पर उड़ना सीख सकते हैं, और ये सब क्लब अब flying training Scheme के अन्तर्गत कर दिये गये हैं। इसकी शिक्षा इलाहाबाद व आगरा में दी जाती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भी वायु-यातायात के लिये पर्याप्त ध्यान रक्खा गया है। सन् १९५१ ई० के अन्त तक वायु-यातायात के विकास में १० करोड़ की पूँजी व्यय की जा चुकी है। यह व्यय हवाई-अड्डों को सुव्यवस्थित करने, समाचार भेजने तथा निरीक्षण इत्यादि करने के सम्बन्ध में किया गया है। अब भारतीय वायु-यातायात का राष्ट्रीयकरण हो गया है और उसका संचालन तथा प्रबन्ध एक statutory corporation के हाथ में सौंपा गया है। यह statutory corporation व्यावसायिक प्रणाली पर कार्य करेगा और यह विभागीय नियन्त्रण से बिलकुल स्वतन्त्र रहेगा, केवल यह अपना सारा कार्य भारत सरकार के द्वारा निर्धारित नीति के अन्तर्गत करेगा। सरकार की नीति यही है कि यथासम्भव देश के बड़े-बड़े शहर वायु-मार्ग से सम्बन्धित कर दिये जायँ और डा

वायु-मार्ग द्वारा ही ले जाई जाने लगे। हाल ही में कुछ विदेशों के साथ वायु-यातायात सम्बन्धी समझौते कर लिये गये हैं, और उन देशों के मध्य वायु-यातायात का विकास भी कर लिया गया है। कुछ ही समय हुआ कि देहली का सम्बन्ध काबुल से वायु-यातायात के द्वारा कर दिया गया है।

देश में विभिन्न प्रकार के हवाई जहाज बनाने को भी प्रयत्न किये जा रहे हैं। पैराशूट की ट्रेनिंग भी दी जाने लगी है। इस प्रकार आशा की जाती है कि निकट भविष्य में इस देश में भी वायु-सेवा का प्रयोग साधारण जनता के लिए सुगम हो जायगा।

Q. 80. 'Air transport has got a vast future before it. The Government should nationalise it before vested interests are created.' Discuss and examine the steps taken by the Government towards the setting up of a factory for the manufacture of aeroplanes, the construction of commercial aerodromes, and the starting of internal and external air services in India.

'आकाश मार्ग का भविष्य उज्ज्वल हैं, अतः व्यक्तिगत स्वार्थों के अस्तित्व से प्रथम ही सरकार को इसका राष्ट्रीयकरण कर लेना चाहिए।' उपर्युक्त कथन की विवेचना कीजिये तथा सरकार द्वारा हवाई जहाजों के निर्माण के लिए कारखाने स्थापित करने, व्यापारिक हवाई अड्डों का निर्माण करने एवं भारतीय आंतरिक तथा बाह्य आकाश-यातायात प्रारम्भ करने के लिए किये गये प्रयत्नों की व्याख्या कीजिये।

इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान काल में आकाश-यातायात का भविष्य अत्यन्त सुन्दर है। मनुष्यों का सम्पर्क-क्षेत्र उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, राजनैतिक तथा आर्थिक समस्याओं में दूरस्थ देशों को भी पड़ोसियों के समान विचार-विनिमय तथा व्यवहार करना पड़ता है। ये सारे कार्य तभी हो सकते हैं जब दूरी समाप्त हो जाय और सारे देश 'प्राङ्गण-स्थिति' के समान हो जांय। यह आकाश-यातायात के द्वारा ही हो सकता है। विमान १००० मील प्रति घंटे की चाल से साधारण तौर पर जा सकते हैं, अर्थात् भारत ऐसे विशाल देश के किसी भी स्थान पर एक व्यक्ति विमान द्वारा २ अथवा ३ घंटे में पहुँच सकता है। यही नहीं विमानों का महत्व निरन्तर बढ़ता चला जाता है समय की बचत होती ही है, युद्ध में भी विमानों ने अपने रोमांचकारी नृशंस कृत्य दिखलाए हैं, पर इनका उपयोग शान्ति में भी मानव कल्याण के लिए किया जा सकता है। यह आन्तरिक शान्ति स्थापित करने में सहायक हो सकता है, व्यापार की उन्नति कर सकता है, रोग के कीटाणुओं को मार कर समाज को अधिक स्वस्थ बना सकता है, टिड्डियों से कृषि की रक्षा करने में सहायता दे सकता है, वन में लगी हुई आग को शीघ्र ही बुझा सकते हैं। इसके इन कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए विमान भारत के लिए तो एक ईश्वरीय देन ही समझी जा सकती है। इंगलैण्ड ऐसे छोटे देश के लिए विमानों का चाहे इतना उपयोग न हो सके, भारत ऐसे विशाल देश के लिए तो विमान बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है, देश की राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता को बनाये रखने में विमान बहुत ही उपयोगी है। देश में उद्योगों तथा व्यापार के लिए विस्तृत क्षेत्र हैं, इतने बड़े व्यापक क्षेत्र के आर्थिक कार्य विमानों द्वारा ही सफलतापूर्वक किये जा सकते हैं। देश के विस्तार और भौगोलिक स्थिति को देखते हुए भारत आकाश-यातायात की उन्नति के लिए विशेष उपयोगी क्षेत्र है। भारत की स्थिति पूर्व और पश्चिम को जाने वाले वायुमार्गों के बीच में होने के कारण बड़ी महत्वपूर्ण है। उपर्युक्त स्थिति के इस प्राकृतिक वरदान से पूरा-पूरा लाभ

तभी उठाया जा सकता है, जब आकाश-यातायात का राष्ट्रीयकरण हो जावे। चूँकि आकाश-यातायात, एक उद्योग के रूप में अत्यन्त लाभदायक है, इसलिए यदि इसका राष्ट्रीयकरण न किया गया तो पूँजीपति स्वयं इसका विस्तार करेंगे, अपनी पूंजीं लगावेंगे, फिर वे उसका संचालन अपने अधिकतम लाभ की दृष्टि से करेंगे न कि देश-हित की दृष्टि से। हो सकता है कि भविष्य में व्यक्तिगत स्वार्थ देश-हित के विरोधी हों तो ऐसी अवस्था में संस्कार को कुछ न कुछ नियंत्रण अपने आप लगाना पड़ेगा। इससे अच्छा यही है कि नियंत्रण लगाने की आवश्यकता ही न हो और यह तभी हो सकता है जब इसका राष्ट्रीयकरण हो जावे। अतः हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण ही उचित ज्ञात होता है।

भारतीय सरकार द्वारा हवाई जहाजों के निर्माण करने के कारखाना स्थापित करने के प्रयत्न :—

द्वितीय महायुद्ध के प्रथम भारत में हवाई जहाजों के बनाने का कोई कारखाना नहीं था। युद्ध काल में इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई। सन् १९४० ई० में बालचन्द हीराचन्द ने मैसूर सरकार की सहायता से ४ करोड़ रुपयों की अधिकृत पूंजी से बंगलौर में 'हिन्दुस्तान एयर कम्पनी' नामक एक कारखाना खोला। सन् १९४१ ई० में भारतीय सरकार ने इसके तिहाई अंश खरीद लिए। बाद में बालचन्द हीराचन्द ने इससे अपना हाथ खींच लिया और १९४२ से यह कम्पनी भारतीय तथा मैसूर सरकारों द्वारा चलाई जाने वाली एक सरकारी कम्पनी हो गई है अब अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी सारा काम भारत सरसार के ही हाथ में है। इस कम्पनी ने सन् १९४१ में पहला हवाई जहाज बना कर तैयार किया, अब उसकी प्रगति अच्छी हो रही है। इस कारखाने की देख-रेख के लिए उद्योग तथा पूर्ति मंत्री की अध्यक्षता में एक संचालक समिति नियुक्त की गई है। इस समिति का एक सदस्य भारतीय सरकार द्वारा तथा एक सदस्य मैसूर की सरकार के द्वारा मनोनीत किया जाता है। जब से भारतीय सरकार ने इस कारखाने को अपने हाथ में लिया है तब से इसने काफी उन्नति की है। बंगलौर की भारतीय वैज्ञानिक अनुसन्धानशाला तथा देहली के प्रशिक्षण केन्द्र में आकाश यातायात सम्बन्धी समस्याओं पर काफी अन्वेषण भी हो रहा है। सन् १९५२ ई० में भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक हवाई संस्था (International civil Aviation organisation) के साथ समझौता किया है, जिसके अनुसार यह संस्था विभिन्न दिशेषज्ञों द्वारा भारत को हवाई यातायात सम्बन्धी समस्याओं पर सलाह दिया करेगी।

अगस्त सन् १९५३ में भारतीय हवाई यातायात का राष्ट्रीयकरण हो गया है। इन्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन तथा एयर इन्डिया इन्टरनेशनल नामक दो संस्थाएं आन्तरिक तथा बाह्य आकाश यातायात चालू करने के लिए स्थापित कर दी गई हैं। राष्ट्रीयकरण की स्कीम को पूरा करने के लिए ९.५ करोड़ रुपयों का प्रबन्ध कर लिया गया है।

भारतीय सरकार द्वारा हवाई अड्डों का निर्माण :

इस समय भारतवर्ष में ७० हवाई अड्डे नागरिक हवाई यातायात-महासंचालक के अधीन हैं, जिनमें २३ अड्डे बहुत महत्वपूर्ण हैं। सान्ताक्रूज बम्बई, दमदम कलकत्ता तथा पालम नई देहली के हवाई अड्डे अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के हैं। विभाजन के पश्चात् भारतीय सरकार ने ४ करोड़ रुपया सान्ताक्रूज पर, ३ करोड़ रुपया दमदम पर तथा २.७५ करोड़ रुपया पालम पर व्यय करने की स्काम बनाई है, जिससे इन अड्डों का यथोचित विस्तार हो सकेगा। भारत के हवाई अड्डों पर ९ अड्डों को छोड़कर

अभी तक रात में विमानों के उतरने की पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं। यद्यपि भारतीय सरकार इधर भी प्रयत्नशील है। युद्धोत्तर काल में भारतीय सरकार ने ३ अन्तर्राष्ट्रीय, ४ वृहत्, १३ मध्यम तथा २२ लघु कोटि के हवाई अड्डों को विकसित करने की योजना बनाई है। प्रथम पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत ६७.८ लाख रुपया आकाश-मार्ग तथा हवाई अड्डों पर व्यय किया जायगा।

भारतीय सरकार द्वारा भारतीय आन्तरिक तथा बाह्य वायु-मार्ग के विकास के प्रयत्न :—

सन् १९४९ ई० में भारत सरकार ने हवाई यातायात के विकास और नियन्त्रण की एक योजना बनाई। इसके अन्तर्गत हवाई सर्विसों को तीन भागों में विभाजित किया गया :—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय हवाई यातायात
(२) ट्रन्क लाइन्स
(३) सहायक लाइन्स

(१) अन्तर्राष्ट्रीय हवाईयातायात के विकास के लिए सरकार ने १९४८ में एक एयर इण्डिया इन्टरनेशनल कम्पनी स्थापित कर इंग्लैण्ड तथा भारत के बीच हवाई सर्विस चालू की। इसके अतिरिक्त सुदूर पूर्व और पूर्वी अफ्रीका के देशों को भी वायुयान सर्विस चालू की गई।

(२) ट्रङ्क लाइन्स के विकास के लिए यह तय किया गया कि सम्पूर्ण देश में भारत सरकार १०,५०० मील लम्बे मार्ग की व्यवस्था करे। इसके लिए कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, तथा मद्रास के बीच रात को उड़ने की व्यवस्था की गई। इसी समय भारतीय सरकार ने डाक आदि ले जाने का ठेका इण्डियन ओवरसीज ऐयर लाइन्स को दिया, जिसकी सर्विस ३० जून १९४९ को बम्बई, नागपुर, कलकत्ता और मद्रास, नागपुर, दिल्ली मार्ग पर चालू हुई, किन्तु ५ माह में इसे आर्थिक हानि उठानी पड़ी, अतः डाक ले जाने का ठेका हिमालय एविएशन कम्पनी को दिया गया। इसके पश्चात् एक आल अप एयर मेल सर्विस चालू की गई, जिसके द्वारा अब देश के विभिन्न भागों में डाक आदि ले जाने का काम किया जाता है। इस प्रकार भारत सरकार ने कुछ ही सालों में हवाई जहाजों के रात के उड़ने की व्यवस्था में काफी सफलता प्राप्त की है।

(३) सहायक लाइन्स विकास करने का क्षेत्र सरकार ने व्यक्तिगत व्यवसाय के लिए छोड़ दिया। इसके लिये प्रत्येक कम्पनी को एयर ट्रान्सपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड से स्वीकृति-पत्र प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया। उड़ान सर्विस प्रारम्भ करने के पूर्व इस बोर्ड से आज्ञा-पत्र प्राप्त करना आवश्यक कर दिया गया। साथ-ही-साथ यह निश्चित कर दिया गया कि यदि कम्पनी के संचालकों की कोशिशों और उत्तमोत्तम टैक्निकल सुविधाओं के बावजूद भी कम्पनी को हानि उठानी पड़े तो सरकार अपनी इच्छानुसार उसे आर्थिक सहायता प्रदान कर सकती है।

Q. 81. Discuss the recommendations of the Air transport Inquiry Committee 1940. (A U. 1952)

Q. 82. 'We are not opposed to the idea of nationalisation of air transport but it is not possible to give effect to it on grounds of feasibility and practicability'. Examine this statement critically. (A.U. 1952)

Q. 83. Would you advocate state control, with or without subsidy or state operation of air services in India? Examine the present position of air services in India. (A.U. 1953)

Q. 84. Air services in India are a national need. Show clearly the importance of this statement and give briefly the merits and limitations of such services (A.U. 1954)

वायुयान-यातायात का आधुनिकतम साधन है। यद्यपि भारत के प्राचीन साहित्य में आकाश-मार्ग तथा वायुयान का कहीं-कहीं पर प्रसंग आया है, परन्तु ऐसे प्रसंगों को आधुनिक विद्वान, लेखकों की कल्पना की उड़ान ही समझा करते थे, परन्तु जब से पश्चिमी देशों में आधुनिक वायुयानों का आविष्कार हुआ, तब से लोगों का कुछ ध्यान इस ओर गया कि आकाश यातायात सम्भव है और प्राचीन में भारतीय लोगों को शायद इस विद्या का ज्ञान था। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उस समय वायु-यातायात की सुविधा इने-गिने श्रीमानों को प्राप्त हो सकती थी तथा इसका साधारण जनता पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता था। [illegible] यह बहुत अतीत की बात है। उस समय के आकाश-यातायात तथा आधुनिक आकाश-यातायात में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता।

आर्थिक दृष्टि से आकाश-यातायात का [illegible] पर प्रभाव प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ही पड़ना प्रारम्भ हुआ। इसके पहले एक तो वायुयानों की चाल भी बहुत धीमी थी और उनका प्रयोग भी बहुत सीमित रूप में होता था। भारत में भी सन् १९११ ई० में बम्बई-करांची के बीच वायु-[illegible] प्रारम्भ हुई। परन्तु इसका वास्तविक प्रारम्भ सन् १९२७ ई० में ही हुआ जब भारतीय सरकार द्वारा एक नागरिक उड्डयन विभाग की स्थापना की गई। इसी समय से हवाई अड्डों का निर्माण प्रारम्भ हुआ और प्रशिक्षण के लिए उड्डयन क्लब खोले जाने लगे। सन् १९२९ ई० में ब्रिटेन, फ्रांस, व हालैण्ड की साम्राज्य वायु-सेवा के विमान भारत में भी आने-जाने लगे तथा इम्पीरियल एयरवेज नामक बृटिश कम्पनी के जहाज करांची के बजाय दिल्ली तक आने-जाने लगे। परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली। सन् १९३३ में बृटिश सरकार द्वारा वायु-सेवा सिंगापुर तक बढ़ा दी गई और भारत सरकार ने इण्डियन ट्रान्स-कान्टीनेन्टल एयरवेज नामक कम्पनी की पूँजी में २४ प्रतिशत भाग लेकर इसी कम्पनी के द्वारा साझीदार बनने का समझौता किया। इधर सन् १९३२ ई० में करांची व मद्रास के बीच विमान-सेवा प्रारम्भ की।

सन् १९३६ ई० में एक भारतीय एयर बोर्ड की स्थापना की गई। इसने सरकार के समक्ष भविष्य में हवाई यातायात के विकास के लिये एक योजना रक्खी तथा विकास के लिये निम्नलिखित प्रस्ताव रक्खे।

(१) भारत में हवाई जहाजों के उतरने के स्थान सरकारी होने चाहिये। उनका सारा सामान जायदाद आदि सरकार की ही होनी चाहिये। सरकार को सम्पूर्ण सुविधायें देनी चाहिये।

(२) विदेशी हवाई यातायात के सम्बन्ध में सरकार की सलाह के बिना कोई कार्य नहीं होना चाहिये।

(३) देश के आन्तरिक हवाई यातायात के विकास के लिये सरकार को प्रारम्भ में धन की सहायता देनी चाहिये।

(४) भारत में एक हवाई विभाग की स्थापना होनी चाहिये।

भारत में देश के अन्दर आकाश-मार्ग से आवागमन के लिये वायुयानों के प्रयोग करने का श्रेय टाटा सन्स लिमिटेड ही को है। इस कम्पनी ने करांची से मद्रास तक आकाश-यात्रा का प्रबन्ध किया। सन् १९३३ ई० में इण्डियन नेशनल एयरवेज लिमिटेड कम्पनी की स्थापना की गई, जिसने सन् १९३४ ई० में करांची तथा लाहौर के मध्य वायुयान-संचालन का प्रबन्ध कर दिया। इसके पश्चात् सन् १९३८ ई० तक और भी शहर बम्बई, त्रिवेन्द्रम, गोआ, भूपाल, इन्दौर, ग्वालियर आदि आकाश-यात्रा का लाभ उठाने लगे।

सन् १९३८ ई० में एम्पायर एयर मेल स्कीम बनाई गई, जिसके अनुसार बृटिश साम्राज्य के अन्तर्गत देशों में हवाई-जहाज द्वारा डाक पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया। भारतीय सरकार ने इस कार्य के लिये तीन कम्पनियों से कन्ट्रेक्ट कर लिया। इस प्रकार इस समय तक भारत में ५११० मील लम्बे आकाश-मार्ग का प्रयोग होने लगा और करांची से कोलम्बो, करांची से लाहौर तथा बम्बई से काठिआवाड़ के बीच में हवाई यातायात की सुविधाएं प्राप्त हो गईं।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व देश में हवाई यातायात की स्थिति निम्न प्रकार थी :—

(अ) आन्तरिक हवाई यातायात के अन्तर्गत टाटा एयर सर्विस, आई०एन०ए० तथा एयर सर्विस ऑफ इण्डिया नाम की कम्पनियाँ कार्य करती थीं। इनमें से टाटा एयरवेज लिमिटेड, करांची, अहमदाबाद, बम्बई, हैदराबाद, मद्रास, त्रिचनापल्ली आकाश-मार्ग में एक बार प्रति सप्ताह के हिसाब से वायुयान के आवागमन का प्रबन्ध करती थी। आई० ए० कराँची, जैकोबाबाद, मुल्तान, लाहौर आकाश-मार्ग में पाँच बार प्रति सप्ताह तथा एअर सर्विस ऑफ इण्डिया बम्बई, भावनगर, राजकोट, जामनगर, पोरबन्दर आकाश-मार्ग में पाँच बार प्रति सप्ताह के हिसाब से वायुयानों के आवागमन का प्रबन्ध करती थी।

(ब) विदेशी हवाई यातातात के अन्तर्गत बी० ओ० ए० सी०, के० एल० एम० एअर फ्रांस तथा जर्मन एअर सर्विस का प्रबन्ध करती थी।

सन् १९३९ ई० में युद्ध के आरम्भ होते ही एम्पायर एअर मेल स्कीम स्थगित कर दी गई, क्योंकि एम्पायर एअर को युद्ध सम्बन्धी कार्यों में जुट जाना पड़ा। भारत में भी हवाई यातायात को युद्ध में संलग्न होना पड़ा। और इसी आधार पर इसकी व्यवस्था कर दी गई। युद्ध काल में हवाई यातायात निम्न मार्गों पर प्रारम्भ होगया:— कराँची—कोलम्बो, बम्बई—दिल्ली, बम्बई—कलकत्ता, बम्बई—कोयमबटूर, बम्बई—कराँची, बम्बई—कोलम्बो, दिल्ली—कराँची, कलकत्ता—दिनजान, कलकत्ता—जौरहट, कलकत्ता गया इलाहाबाद कानपुर, कानपुर—दिल्ली, लाहौर—मुल्तान, जैकोबाबाद—कराँची, लाहौर गुजरात, रावलपिंडी—पेशावर, लाहौर, जैकोबाबाद—क्वेटा, दिल्ली भोपाल, हैदराबाद, बंगलौर, त्रिचनापल्ली—कोलम्बो, दिल्ली, जोधपुर—कराँची और दिल्ली, अहमदाबाद, बम्बई। युद्ध काल में भारतीय वायुयान चालकों को भिन्न-भिन्न प्रकार के काम भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में करने पड़े। अतएव इनको हवाई यातायात के सम्बन्ध में बहुत कुछ अनुभव हो गया। इधर भारतीय सरकार इसी समय से हवाई यातायात के विकास के लिए युद्धोत्तर योजनाओं पर विचार करने लगी। सर फ्रेडिरिक टिमस डायरेक्टर ऑफ सिविल एवियेशन ने गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार कर भारत सरकार के समक्ष एक आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के हवाई यातायात के विकास के लिए महत्वपूर्ण योजना रक्खी। इस योजना पर दी रिकन्स्ट्रक्शन पौलिसी कमेटी फॉर पोर्ट्स एण्ड एविएशन ने विचार किया तथा १९४४

ई० में अपनी सम्मति इस योजना के पक्ष में दी। तदनुसार सरकार ने इसको स्वीकार कर लिया, तथा मई सन् १९४५ ई० में हवाई यातायात की विकास सम्बन्धी सरकारी नीति की निम्न प्रकार से घोषणा की। 'भारत सरकार की नीति कतिपय सुदृढ़ तथा विश्वसनीय एवं निजी पूँजी लगाने वाली और सामान्य व्यापारिक नियमानुसार लाभ प्राप्त करने तथा हानि सहने वाली व्यक्तिगत व्यापारिक संस्थाओं को भारत की आभ्यन्तर तथा बाह्य हवाई यातायात का संचालन तथा विकास हेतु आज्ञा प्रदान करने की है। सरकार-प्रदत्त अधिकार प्राप्त करने पर ही कोई संस्था हवाई यातायात का संचालन कर सकती है। राज्य द्वारा आर्थिक सहायता विशेष परिस्थितियों में ही दी जायगी, जब कि सहायता की इच्छुक संस्था सरकार द्वारा निर्धारित नियमों पर चलने की प्रतिज्ञा करे।

इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए ही इण्डियन एअर क्राफ्ट एक्ट में संशोधन करने की अवश्यकता हुई। अतएव इसमें आवश्यक संशोधन कर दिया गया। इसके अनुसार हवाई यातायात का लाइसेन्स देने के लिए एक एअर ट्रांसपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड की स्थापना कर दी, जिसने अक्टूबर सन् १९४६ ई० में अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया।

इस देश में चार कम्पनियां टाटा सन्स, इण्डियन नेशनल एअरवेज, एअर सर्विसेज ऑफ इण्डिया तथा डैकन एअरवेज इस क्षेत्र में कार्य कर रही थीं। तत्पश्चात् सन् १९४८ ई० तक एअर ट्रांसपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड ने निम्नलिखित ग्यारह कम्पनियों को लाइसेन्स प्रदान किए। एअर इण्डिया, इण्डियन नेशनल एअरवेज, भारत एअरवेज, एअर सर्विस ऑफ इण्डिया, डैकन एअरवेज, डालमिया जैन एअरवेज, मिस्त्री एअरवेज, ओरियन्ट एअरवेज, अम्बिका एअरवेज तथा जुपीटर एअरवेज। इसी बीच में सन् १९४७ ई० में देश का विभाजन हो गया, जिसके फलस्वरूप आकाश-मार्ग में कुछ परिवर्तन हुआ तथा भारतीय हवाई मार्गों को शरणार्थियों को निकालने, भारत में लाने, काश्मीर युद्ध में सक्रिय भाग लेने की आवश्यकता पड़ी। इससे हवाई कम्पनियों को कार्य मिला तथा उनकी आय बढ़ गई। कम्पनियों की स्थिति को अधिक दृढ़ बनाने के लिए उन्हें लाइसेन्स देने में विशेष सुविधाएँ दी गई तथा उनके आर्थिक संकट निवारण हेतु उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले पेट्रोल पर कर कम कर दिया।

इसके पश्चात् सन् १९४९ ई० के अन्त में बंगाल, आसाम तथा त्रिपुरा में वायु यानों को अत्यधिक कार्य करना पड़ा। फरवरी सन् १९४९ ई० में रात्रि में हवाई डाक भेजने का प्रबन्ध किया गया। यह प्रबन्ध विशेषकर कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली तथा मद्रास शहरों के लिए किया गया था। पर मानसून के कारण जून में इसे बन्द कर देना पड़ा। कुछ नई कम्पनियां भी खुलीं जिनका कार्य विदेशों के लिए आकाश-यात्रा का प्रबन्ध करना था। इस प्रकार इस देश में हवाई यातायात की आधुनिक व्यवस्था सुव्यवस्थित है।

इस समय भारतवर्ष में लगभग एक दर्जन हवाई यातायात कम्पनियां हैं। पचास आकाश-मार्गों द्वारा हवाई यातायात का प्रबन्ध है, जिनकी लम्बाई लगभग ३००० मील है। तथा लगभग ४००००० यात्री प्रतिवर्ष आकाश-यात्रा करते हैं। देश में लगभग ७० हवाई अड्डे हैं। पूना में उड़न कला सिखाने का प्रबन्ध है। इसे भारत सरकार से आर्थिक सहायता मिलती है। अनुसन्धान तथा विकास के लिए भी सरकारी प्रबन्ध है।

बंगलौर में एक एयर क्रेफ्ट फैक्टरी बहुत दिनों से कार्य कर रही है, जो भारत

सरकार के अधिकार में है। भविष्य में उसके द्वारा नये वायुयान बनाये जाने की आशा है। भारत सरकार का ध्यान भी इस ओर गया है। सरकार चाहती है कि इस फैक्टरी में वायुयान की सम्पूर्ण सामग्री का निर्माण होने लग जाय, जिससे देश पूर्ण स्वावलम्बी बन जाय। सरकार देश में एक अत्यन्त शक्तिशाली हवाई-जहाजी बेड़ा तथा साधारण प्रजा के लिए सन्तोषजनक हवाई यातायात के साधन चाहती है। इसी उद्देश्य से युद्धोत्तर विकास योजना के अन्तर्गत भारत सरकार ने हवाई यातायात के विकास तथा नियन्त्रण की एक विशाल योजना बनाई थी। इसके अनुसार हवाई-यातायात का क्षेत्र व्यक्तिगत व्यवसाय के लिए खुला छोड़ दिया गया। प्रत्येक हवाई यातायात की कम्पनी के लिए लाइसेन्स प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। बहुत से प्रतिबन्ध इसीलिए लगाए गए जिससे अच्छी कम्पनियाँ ही क्षेत्र में आ सकें। आवश्यकता पड़ने पर भारतीय सरकार ने हवाई यातायात की कम्पनियों को आर्थिक सहायता प्रदान करने का भी वचन दिया। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् यातायात की कम्पनियों में बाढ़-सी आ गई। बहुत-सी कम्पनियों की आर्थिक दशा सन्तोषजनक न थी। अतः सरकार ने अयोग्य कम्पनियों को क्षेत्र से निकालने तथा हवाई यातायात को यथेष्ट रूप से विकसित होने देने के लिए एक जाँच कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी ने हवाई यातायात व्यवस्था में निम्नलिखित दोष बतलाए।

(१) हवाई यातायात की कम्पनियाँ आवश्यकता से अधिक हैं।
(२) कम्पनियों द्वारा अनावश्यक तथा अधिक व्यय किया जाता है।
(३) कम्पनियों में पारस्परिक अनार्थिक तथा अनुचित प्रतियोगिता हैं। परिणाम-स्वरूप उनकी आय बराबर घट रही है।
(४) कम्पनियों के पास वायुयान तथा अन्य सामग्री आवश्यकता से अधिक है।
(५) साधारण जनता की आय की दृष्टि से वायुयानों का भाड़ा अधिक है।

इन दोषों को दूर करने के लिए कमेटी ने जो-जो प्रस्ताव रक्खे थे भारत सरकार ने उनमें से अधिकांश प्रस्तावों को पास कर दिया। सरकार का ध्येय सदैव हवाई यातायात को प्रोत्साहन देना है। पंचवर्षीय योजना में भी हवाई यातायात को महत्व-पूर्ण स्थान दिया गया है। इस योजना के अनुसार प्रथम दो वर्षों में १.८५ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से व्यय करने का निश्चय किया गया है। वर्तमान वायुयानों के स्थान पर आधुनिक ढंग के नवीन वायुयानों को क्रय करने का निश्चय किया गया है। इसके लिए भारत सरकार द्वारा आर्थिक सहायता देने का वचन दिया गया है। इस प्रकार सब प्रयत्नों से भारत सरकार हवाई यातायात को शीघ्र ही व्यापारिक आधार पर विकसित करना चाहती है।

भारत में आकाश यातायात का महत्व

आधुनिक काल में शीघ्रातिशीघ्र यातायात के जितने गुण वर्णन किये जायं कम ही हैं। भारत एक विशाल तथा विस्तृत देश है। क्षेत्रफल में प्रायः यह एक महाद्वीप के तुल्य है। राजनैतिक सुव्यवस्था तथा आर्थिक विकास के लिये शीघ्रगामी आधुनिक यातायात के अन्य साधन अभी प्रचलित नहीं हुए हैं। अतः हवाई यातायात का विकास भारत के लिये अत्यावश्यक है। आधुनिक स्पर्धा के युग में प्रत्येक देश को उन्नतिशील देशों का ध्यान रखना पड़ता है। अतः हमारा देश भी इस सम्बन्ध में पिछड़ा हुआ नहीं हैं। हवाई यातायात के विकास से सर्व प्रथम मनुष्यों की बेकारी दूर होगी। बहुत से वायुयान चालक, मिस्त्री, तथा अन्य कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ेगी। इसके अतिरिक्त वायुयान-निर्माण तथा सुधारक कारखाने खोले जाने पर

उनमें भी बहुत से मनुष्यों को काम मिलेगा। देश में वायुयान निर्माण के लिए जो आवश्यक कच्चा माल उत्पन्न होता है उसकी मांग बढ़ जायगी सम्बन्धी [illegible] श्रमिकों तथा कच्चा माल उत्पादकों आदि का भला होगा। देश के उत्पादन में वृद्धि होगी। भारतीयों के वायुयान-निर्माण-कला में कुशल होने पर विदेशों में भी इनकी तथा इनके भागों की मांग बढ़ सकती है। इससे हमारे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी उन्नति होगी। इसी प्रकार यदि हमारे वायुयान संचालक निपुण हुए तो इनकी सेवाओं की माँग भी विदेशों में हो सकती है, जिससे हमारे देश को विदेशी दुर्लभ मुद्रा की प्राप्ति सरल हो सकती है। देश के अन्दर व्यापार तथा आवागमन में भी पर्याप्त शीघ्रता तथा सुविधा हो जायगी जिससे अधिक व्यस्त व्यक्तियों का समय बच जायगा और वे अधिक देश-सेवा कर सकेंगे। इधर रेलों तथा मोटर बस सर्विस तथा सड़क-यातायात पर कम भार रह जायगा, जिसके परिणाम-स्वरूप साधारण यात्रियों तथा व्यापारियों को भी सुविधा तथा लाभ होगा। बहुत से दुर्लभ स्थानों पर पहुँचना सरल हो जायगा, जिससे उन स्थानों की उन्नति होगी और लोगों को लाभ होगा। आपदा-ग्रस्त स्थानों में सहायता पहुँचाने के लिए हवाई यातायात बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अत्यधिक वर्षा के कारण कभी-कभी किन्हीं स्थानों पर बहुत सी भूमि जलमग्न हो जाती है। अन्य यातायात के साधन वहाँ तक पहुँचने में असफल हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितियों में वायुयानों द्वारा शीघ्र सहायता पहुँच सकती है। महामारी, हैजा आदि गम्भीर बीमारियों में भी वायुयान द्वारा विशेष सहायता पहुँचाई जा सकती है। दुर्भिक्ष काल में शीघ्र अनाज वितरण करके मनुष्यों के प्राण बचाए जा सकते हैं। अन्ततोगत्वा आकाश-मार्ग थल-मार्ग के समान साधारण मनुष्यों के लिए सुलभ तथा सस्ता हो जाय तो थल-मार्ग द्वारा आवृत्त भूमि कृषि आदि अधिक उपयोगी कार्यों में लाई जा सकती है। इस प्रकार आकाश-मार्ग का प्रचलन हमारी भोजन-समस्या को किसी सीमा तक हल करने में समर्थ हो सकता है।

भारत के लिये वायुयानों की उपयोगिता अधिकतम हो सकती है, यदि देश के यातायात के विभिन्न साधनों में समुचित सामंजस्य स्थापित हो जाय। थल, जल तथा आकाश यातायात के सम्पूर्ण साधनों का आवश्यकतानुसार उचित स्थान होना चाहिये। एक ऐसी देशव्यापी योजना होनी चाहिये जिसमें कोई भी स्थान यातायात की सुविधा से रहित न हो सके। उदाहरण के लिये एक ग्रामीण व्यक्ति आवश्यकतानुसार अपनी बैलगाड़ी का सुन्दर सड़क पर प्रयोग करते हुये किसी मोटर अड्डे पर पहुँच जाय, वहाँ से पड़ोस के रेलवे स्टेशन पर, फिर रेल यात्रा द्वारा किसी हवाई अड्डे पर पर पहुँच जाय और मनोवांछित आकाश यात्रा कर सके। यह तभी सम्भव है जब यातायात के विकास की सम्पूर्ण योजनायें एक केन्द्रीय संस्था द्वारा जांची जायें ताकि उनका उचित समन्वय किया जा सके।

Q. 85. Discuss the question of the nationalisation of air transport in India.

भारतीय आकाश यातायात के विकास के साथ ही साथ उसके राष्ट्रीयकरण की मांग होने लगी, कुछ देशों ने आकाश-यातायात का राष्ट्रीयकरण कर भी लिया, अतः सन् १९४७ ई० में राष्ट्रीयकरण की समस्या पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया गया। राष्ट्रीयकरण के पक्ष में यह कहा गया कि इससे उद्योग का लाभ सरकार को प्राप्त होगा, हवाई अड्डे आदि बनाने में सरकार को काफी पूंजी व्यय करनी पड़ती है, इसलिए इस सेवा का पूर्ण उत्तरदायित्व सरकार को ही अपने हाथ में ले लेना चाहिए, तभी वायुयानों का अधिकतम उपयोग हो सकता है। इसके विरोध में यह

कहा गया कि यह एक नया उद्योग है। इसमें व्यक्तिगत प्रबन्ध, देखभाल व रुचि की अधिक आवश्यकता है, जिसमें सरकारी वैतनिक कर्मचारी प्रायः असफल ही रहते हैं, क्योंकि सरकारी संगठन की कार्य-कुशलता व्यक्तिगत प्रबन्ध की अपेक्षा निम्नकोटि की ही होती है। सरकार को वैसे ही अभी बहुत-सी जन-जीवनोपयोगी समस्यायें हल करनी हैं। आकाश-यातायात ऐसी विलासितापूर्ण समस्याओं में सरकार को अभी हाथ नहीं डालना चाहिए। इस प्रकार सम्मेलन में भाग लेने वाले सदस्यों में इस प्रश्न पर गम्भीर मतभेद रहा, अतः कोई निश्चित नीति निर्धारित नहीं की जा सकी। १९४८ ई० की सरकारी औद्योगिक नीति की घोषणा में भी आकाश-यातायात व्यक्तिगत साहस के लिए छोड़ दिया गया। हाँ, आधार-भूत उद्योग होने के नाते केन्द्रीय नियंत्रण रखना आवश्यक समझा गया। इसी नीति के आधार पर वायुयान बोर्ड द्वारा सन् १९४९ ई० में ६ कम्पनियों को दस वर्षीय लाइसेन्स दिये गये।

इसके पश्चात् सन् १९५० ई० में एक वायुयान जांच कमेटी नियुक्त की गई। इस समिति ने भी आकाश-यातायात के राष्ट्रीयकरण पर विचार किया। समिति में राष्ट्रीयकरण के पक्ष में निम्नांकित तर्क रक्खे गये :—

(१) देश की सम्पूर्ण विमान-सेवाओं का संगठन सरकार द्वारा ही इस प्रकार किया जा सकता है कि जिससे कार्य-केन्द्रों, साज-सज्जा, तथा अन्य कर्मचारी-वर्ग का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जा सके।

(२) आकाश-यातायात का सैनिक महत्व बढ़ता जाता है, अतः सैनिक दृष्टि से इसका संचालन सरकार के हाथ ही में होना चाहिए।

(३) राष्ट्रीय आकाश-यातायात ही जनता की सेवा अच्छी प्रकार से कर सकेगा।

(४) एक राष्ट्रीय इकाई देश के लिए दूरदर्शिता के साथ व्यापक योजनाएँ बना सकती है। भिन्न-भिन्न इकाइयां नहीं। साज-सज्जा तथा विमान-चालन सम्बधी नये-नये अविष्कारों का पूर्ण लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब आकाश-यातायात-सेवा का राष्ट्रीयकरण कर लिया जाय।

(५) एक-सूत्रीय प्रशासन तथा प्रबन्ध में मितव्ययिता के कारण व्यय कम हो जाता है, जिससे जनता को आकाश-यातायात-सेवा सस्ती मिल सकती है।

(६) भारत में बिना सरकारी सहायता के यह उद्योग सफल नहीं हो सकता। पूर्ण सफलता के लिए सरकार को सहायता करनी ही पड़ेगी। इसके लिए व्यक्तिगत पूंजी-पतियों को आर्थिक सहायता देनी पड़ेगी। जनता तथा उद्योग की भलाई इसी में है कि व्यक्तिगत पूंजीपतियों को धन देने की अपेक्षा सरकार कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण कर ले, सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेले और फिर सम्पूर्ण देश की आवश्यकतानुसार आकाश-यातायात-सेवा का संगठन तथा संचालन करे।

राष्ट्रीयकरण के विरुद्ध निम्नांकित तर्क दिये गये :—

(१) अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने होते हुए, उनको बिना हल किये भारत सरकार को इस विलासितापूर्ण सेवा की ओर विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए।

(२) आकाश यातायात ऐसे विशाल संगठन तथा विशेष उद्योग के लिए सरकार के पास पर्याप्त संख्या में योग्य प्रबन्धक नहीं होते, इससे प्रबन्ध में शिथिलता होने की सम्भावना रहती है।

(३) यह उद्योग नया ही है, नये-नये परिवर्तन तथा नवीन ढंग का विकास हर समय होता रहता है। इन विकास क्रियाओं व आविष्कारों से लाभ उठाने के लिए

ग्राहकों के साथ निकट सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक है, पर सरकारी प्रबन्ध इस कार्य को अच्छी प्रकार नहीं कर सकते, इसके लिए व्यक्तिगत साहस ही उपयुक्त है।

इस वादविवाद में यह समिति भी राष्ट्रीयकरण के बारे में निश्चयात्मक रूप से कुछ निर्णय न कर सकी। इसी बीच में सन् १९५१ ई० में वायुयान चालकों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन ने नवीनतम विमानों को खरीदने के लिए १० करोड़ व्यय में से करीब ७ करोड़ रुपया सरकार से ऋण के रूप में मांगा। इधर योजना आयोग ने आकाश-यातायात सेवा का राष्ट्रीयकरण करने का परामर्श दिया, जिसके अनुसार मार्च १९५३ ई० में विमान परिवहन निगम बिल (Air Transport corporation Bill) लोकसभा में रखा गया जो स्वीकृत कर लिया गया। इस कानून के अनुसार दो निगम स्थापित किये गये। एक देश के अन्तर्गत तथा दूसरा विदेशों में वायुयान-सेवा प्रदान करने के लिए। इनमें से पहली Indian Air liner corporation ने देश के अन्दर सेवा प्रदान करने के लिए आठ कम्पनियों का कार्य अपने हाथ में ले लिया ये कम्पनियां निम्न हैं :—

(1) Airways India.
(2) Air India.
(3) Air services of India.
(4) Bharat Airways.
(5) Daccan Airways.
(6) Himalayan Aviation.
(7) Indian National airways.
(8) Kalinga airways.

ये सारी कम्पनियां धीरे-धीरे एक इकाई में परिणत हो गईं। इनका केन्द्रालय दिल्ली में स्थापित हो गया। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली तीन केन्द्रों से इस निगम की सेवा का संचालन किया जाता है। दूसरे Air India International corporation ने अन्तर्राष्ट्रीय आकाश-यातायात सेवा का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। अगस्त सन् १९५३ से इन दोनों निगमों ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है। इस समय Indian Air lines corporation के ९ तथा Air India International corporation के ८ सदस्य हैं। भारत सरकार प्रत्येक निगम के लिए एक सामान्य प्रबन्धकर्त्ता तथा एक सभापति नियुक्त करती है। केन्द्रीय सरकार इनके कार्यों की देख-रेख रखती है। नई सेवाएं चालू करने तथा कुछ परिवर्तन करने के लिए निगम-अधिकारियों को सरकार की अनुमति लेनी पड़ती है। वर्ष के अन्त में दोनों निगम अपने कार्य का विवरण भारत सरकार के समक्ष रखते हैं।

दोनों निगमों के बीच सामंजस्य स्थापित करने लिए अप्रैल सन् १९५५ ई० में एक Air Transport council की स्थापना हो गई है। यह एक सरकार के लिए परामर्शदात्री समिति है। प्रत्येक निगम की भी एक अपनी परामर्शदात्री समिति व एक श्रम सम्बन्धी समिति भी है।

इस समय Air India International corporation १६ अन्तर्राष्ट्रीय मार्गों पर सेवा का कार्य करती है और Indian Air lines corporation ४१ राष्ट्रीय मार्गों पर कार्य करती है। दोनों मिलाकर लगभग २८००० मील लम्बे मार्ग पर वायु-यातायात-सेवा प्रदान करती है।

Q. 86. Write short notes on—

1. Importance of aeroplanes.

2. The Future of civil aviation.
3. Tho construction of aeroplanes in India.

वायुयानों का महत्व

वायुयानों ने मानव की सभ्यता, आर्थिक संगठन तथा उनकी विचारधारा को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है। यदि रेलें राष्ट्रीयता के विकास में सहायक हुई हैं तो वायुयान ने अन्तर्राष्ट्रीय भावना, सम्बन्ध व समस्याओं को जन्म दिया है। वायुयानों की तेज चाल सबसे बड़ी विशेषता है, तेजी में यातायात का कोई भी अन्य साधन वायुयानों से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। यायुयानों ने सारे संसार को प्राय: एक देश के समान ही कर दिया है, जिस प्रकार एक देश के विभिन्न राज्यों के लोग अपनी समस्याओं को मिलकर सुलझाते हैं उसी प्रकार वायुयानों की सहायता से विभिन्न देशों के प्रतिनिधि एक स्थान पर मिलकर अपनी समस्याओं का हल निकालते हैं। वायुयान अति शीघ्रगामी होने के कारण मनुष्यों का समय बचाते हैं और सारे संसार को एक छोटे से आँगन के रूप में रख देते हैं, अर्थात् वायुयानों की सहायता से सारे संसार की परिक्रमा एक दिन में ही की जा सकती है।

वायुयानों को यातायात सम्बन्धी भौगोलिक बाधाएँ नहीं सताती। बहुत से यान केवल जल में ही चल सकते हैं तथा बहुत से केवल थल ही पर चल सकते हैं। वायुयानों के लिए जल-थल समान है। उन्हें तो आकाश-मार्ग चाहिए जहाँ सड़कों, पटरियों, पुलों, सुरंगों आदि की कोई आवश्यकता नहीं। वायुयान सब जगह जा सकता है। बहुत परिमाण में पूँजी तथा बहुमूल्य धातुओं आदि का स्थानान्तर वायुयानों द्वारा थोड़े ही समय में हो जाने के कारण अधिक जोखिम उठाने की आवश्यकता नहीं रहती। आधुनिक युद्धों में भी वायुयान बहुत महत्वपूर्ण होता चला जा रहा है, जिस देश का हवाई बेड़ा जितना अधिक शक्तिशाली होता है उतनी ही अधिक उस देश के विजयी होने की सम्भावना रहती है। युद्ध क्षेत्र में संकटापन्न स्थिति होने पर गोला-बारूद, अस्त्र-शस्त्र तथा सैनिकों की शीघ्र सहायता विमानों के द्वारा ही पहुँचाई जा सकती है। घायल सैनिकों की सहायता शीघ्रतापूर्वक विमानों के द्वारा हीं हो सकती है। इसी प्रकार अकाल के समय, बाढ़ के समय बाढ़-ग्रस्त क्षेत्रों को खाद्यान्न आदि की सहायता वायुयानों द्वारा ही अति शीघ्रता-पूर्वक पहुँचाई जा सकती है। किसी देश के अन्तर्गत गृह-युद्ध छिड़ने, साम्प्रदायिक अशान्ति होने तथा अन्य किन्हीं कारणों से अराजकता फैलने पर वायुयानों द्वारा शीघ्र-से-शीघ्र सेना आदि भेजकर शान्ति स्थापित की जा सकती है। वायुयानों द्वारा तेल अथवा तरल औषधि जमीन पर छिड़क कर मच्छरों आदि को मार कर मलेरिया ऐसे भयंकर रोगों से लोगों को बचाया जा सकता है। यदि वायुयान-सेवा और सस्ती तथा सुगम हो जावे तो कारखानों में काम करने वाले व्यक्ति कारखानों के पास जमघट न करके दूर-दूर तक स्वस्थ वातावरण में बसाए जा सकेंगे, जिससे लोगों को स्वास्थ्य-लाभ भी होगा और साथ-ही-साथ लोगों का स्वास्थ्य भी बहुत कुछ सुधर जायगा। उद्योगों का विकेन्द्रीकरण विमानों के द्वारा सरलता से हो सकता है। वायुयानों के द्वारा व्यवसाय व व्यापार का भी काफी विकास हुआ है, शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं का बाजार विमानों की कृपा से ही अन्तर्राष्ट्रीय हुआ है। पहले भारत में आमों का बाजार प्राय: स्थानीय हुआ करता था, परन्तु अब यह अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है। वायुयान कृषि तथा वनों की भी रक्षा करते हैं। विमानों द्वारा वनों की आग बुझाई जा सकती है। इसी प्रकार विमान द्वारा एक प्रकार का विषैला चूर्ण खेतों में छिड़क

कर टिड्डियों को नष्ट किया जाता है. इस प्रकार विमान कृषि-रक्षा करने में भी सहायक होते हैं।

इस प्रकार विमानों से बहुत ही आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक लाभ हैं, फिर भी वायु-यातायात कुछ दोषों से बिल्कुल मुक्त नहीं है। इसका भाड़ा अधिक होता है, जो अमीर आदमी ही दे सकते है। साधारण जनता इतना अधिक भाड़ा नहीं दे सकती. अत: वर्तमान समय में साधारण जनता वायु-यातायात का उपयोग भली-भाँति नहीं कर सकती। इसी प्रकार बहुमूल्य वस्तुएं ही विमान द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी जा सकती है। अत: विमान का कार्य-क्षेत्र अत्यन्त सीमित है। प्रतिकूल ऋतु में वायुयान कार्य नहीं कर सकते. अधिक वर्षा, तेज आँधी, कुहरा, बर्फ गिरना, तथा घने बादल छा जाने से वायुयान अच्छी प्रकार से कार्य नही कर पाते। विश्व के कानून भी वायु-यातायात के विकास में बाधक सिद्ध हो रहे हैं। एक देश के विमान को दूसरे देश के ऊपर होकर उड़ने के लिये उस देश की सरकार की आज्ञा लेनी पड़ती हैं। इन विमानों में दुर्घटनाएं भी अधिक तथा भयानक होती हैं।

इन सब दोषों के होते हुए भी विमानों का भविष्य उज्ज्वल है। शान्ति-सद्भावना-स्थापन, भूमिमापन, डाक-वितरण, शिक्षा-प्रसार आदि में विमान बहुत सहायक होंगे।

CIVIL AVIATION

सिविल एवियेशन डिपार्टमेन्ट के नियंत्रण में इस समय ६९ एरोड्रोम है। इनमें से दिल्ली, बम्बई, कलकत्ते के अन्तर्राष्ट्रीय एरोड्रोम है। कुछ बड़े एरोड्रोम है, कुछ बीच के दर्जे के और कुछ छोटे है। कुछ एरोड्रोम पर लगभग ३१ पर को उड़ने की व्यवस्था है।

ऐरोनोटिकल कम्यूनिकेशन के इस समय ५१ अच्छे स्टेशन है। ट्रेनिङ्ग की सुविधा करने के लिए भी पिछले वर्षों में प्रयत्न हुए हैं। इलाहाबाद में सिविल एविएशन ट्रेनिंग सेंटर है, जिसमें चार विभागों की शिक्षा दी जाती है, उड़ना, एरोड्रोम इंजीनियरिंग, और कम्यूनिकेशन आदि। सहारनपुर में भी सिविल एवियेशन ट्रेनिंग सैंटर है, जहाँ रेडियो टेकनीशियन्स को तैयार किया जाता है।

पूना में इंडियन ग्लाइडिंग एसोसिएशन है। इसे भारत सरकार से आर्थिक सहायता मिलती है। इसका काम ग्लाइडिंग को प्रोत्साहन देना है। इंडिया एरोनोटिकल सोसाइटी की भी दिसम्बर १९४८ में स्थापना हो चुकी है। इसका उद्देश्य एरोनोटिकल साइंस और इंजीनिरिंग में सहायता और उन्नति करना है।

अनुसंधान और विकास के लिए भी सफदरजंग एरोड्रोम नई दिल्ली में कुछ व्यवस्था की गई है। बंगलौर इण्डियन इंस्टीट्यूट आव साइन्स में एरोनोटिकल इंजीनियरिंग की पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षा भी दी जाती है।

बंगलौर में एयर क्राफ्ट फैक्टरी कई वर्षों से काम कर रही है। यह भारत सरकार के अधिकार में है। उसका उद्देश्य इसे कारखाने का रूप देना है।

वर्तमान वायुयान स्वतन्त्र भारत के लिये नितांत अपर्याप्त हैं। हमारे अनेक औद्योगिक नगर वायुयान द्वारा सम्बन्धित नहीं हैं। अब भारतीय उद्योग और व्यापार के विस्तार का भविष्य बड़ा उज्ज्वल है, और इसके लिये अत्यन्त शीघ्रगामी यातायात की आवश्यकता है। डाक और हवाई यातायात की पुनर्निर्माण समिति ने १० वर्ष में १५॥ करोड़ रुपया लगाकर १११ हवाई अड्डे और जहाज उतारने के स्थान बनाने की

स्वीकृति दी है। ऐयर ट्रांसपोर्ट लाइसेंसिंग बोर्ड लाइसेन्सों के प्रार्थना-पत्रों की जांच करने के लिये स्थापित किया गया है। हवाई यातायात-नियंत्रण विभाग अत्यन्त उत्तम संगठन बनता जा रहा है, और उसमें अति उत्तम सामान तथा काम सीखे हुए कर्मचारी हैं। अनेक अफसर और वायुयान-संचालक युद्ध-कार्य से मुक्त हो गये हैं। वे भारतवर्ष में युद्ध के पश्चात् हवाई कार्य में सराहनीय भाग देंगे। फेडरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर ऑफ कौमर्स ने भी सरकार पर जोर दिया है कि भारतवर्ष वायुयान सर्विस की बहुत आवश्यकता है। इन वायुयानों के स्वामी भारतीय हों और भारतीय ही उनका नियंत्रण और प्रबन्ध करें, सरकार उनको आर्थिक सहायता और लाइसेन्स दे। भारतवर्ष में वायुयान बनाने का काम आरंभ हो चुका है, अतः यह पूर्ण आशा की जाती है कि भारतवर्ष नागरिक हवाई यातायात में शीघ्र ही उन्नति करेगा।

भारतवर्ष में वायुयान बनाने का काम

युद्ध काल में वायुयानों की बड़ी माँग थी और उस माँग ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतवर्ष में वायुयान बनाना बहुत सम्भव है। श्रीयुत बालचन्द हीराचन्द के उद्योग से मैसूर सरकार के संरक्षण में बहुत बड़ी पूँजी लगाकर हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट कम्पनी स्थापित की गई। अमेरिकन यन्त्र कला-विशारदों की देख-रेख में यह कारखाना बंगलौर में स्थापित किया गया है। बंगलौर को स्पष्टतया सस्ती बिजली और पड़ौस ही में भद्रावती लोहे और फौलाद के कारखाने के लिए चुना गया है। इस मुख्य कारखाने को भारत सरकार ने भी बहुत बड़ी आर्थिक सहायता दी है। कारखाने में आधुनिक अमेरिकन मशीनें लगी हुई हैं, और उसमें हजारों कुशल कर्मचारी और यन्त्र कला-विशारद काम करते हैं। युद्ध काल में भारत सरकार ने इस कारखाने को सैनिक कार्य के लिए ले लिया था, और वह सरकारी कारखाना बना रहा। उसके सब कार्य गुप्त रखे गये। पहला भारतीय वायुयान जुलाई १९४१ में परीक्षार्थ उड़ाया गया। उसमें आधुनिक युद्ध वायुयानों और बमवारों के सर्व गुण विद्यमान थे। हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट लिमिटेड रेल के चौपइये आदि दूसरी चीजें भी बनाता है और रेलवे बोर्ड कारखानों को अगले ५ वर्ष तक चौपइयों का आर्डर देने के लिए सहमत हो गया है, बशर्ते कि दाम उचित हों।

मार्च सन् १९४० में युनाइटेड किंगडम एयर क्राफ्ट मिशन भारतवर्ष आया और उसने भारत सरकार से एक राष्ट्रीय वायुयान उद्योगशाला स्थापित करने की सिफारिश की, जो २० वर्ष में वायुयान बनाने के लिए स्वतः पूरी तौर से सम्पन्न हो जाय, जिनकी कि भारतीय हवाई सेना और नागरिक हवाई यातायात को आवश्यकता है। मिशन ने इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स, बंगलौर के यन्त्र-कला-शिक्षण और मजदूरों की शिक्षा के विषय में सम्मति दी है। उन तीनों स्थानों के निरीक्षण करने पर, जहाँ युद्ध काल में वायुयानों की मरम्मत होती थी और वे रखे जाते थे, मिशन ने बंगलौर की सुविधाओं पर विचार किया और उनके विस्तार तथा एकीकरण के लिए उपायों की सिफारिश की। मिशन ने यह सिफारिश की कि यद्यपि इस उद्योग को सरकार आर्थिक सहायता दे, तथापि बोर्ड के कुछ गैर सरकारी डइरेक्टर भी होने चाहिए, क्योंकि प्राइवेट उद्योगपतियों के होने से राष्ट्र की अधिक सेवा हो सकेगी। भारत सरकार के सप्लाई विभाग के कहने पर सन् १९४२ में पैराशूट बनाने का मुख्य कारखाना स्थापित किया गया। भविष्य में रेशम और खेमे बनाने का कारखाना भी बनाने का विचार है।

Q. 87. In planned economy the development of different forms of transport like the railways, roadways, navigation and airways can not be considered in isolation.' (K. P. Bhatnagar)

In the light of the above, outline a precise scheme of transport co-ordination in India.

उपर्युक्त कथन बिल्कुल सत्य है। वास्तव में नियोजित आर्थिक संगठन के अन्तर्गत यातायात के विभिन्न साधनों में समन्वय आवश्यक है। रेलों, सड़कों, जल-मार्गों तथा आकाश-मार्गों से आने-जाने वाले साधनों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा नाम मात्र को नहीं होनी चाहिए, और न ऐसी दशा में विभिन्न साधनों के विकास आदि का कार्य अलग-अलग हो सकता है। इन सब साधनों के विकास की योजनाएँ इस प्रकार से बनाई जानी चाहिएँ जिससे एक योजना किसी दूसरी योजना के विरुद्ध न पड़े।

भारत में प्रथम पंचवर्षीय योजना सफलतापूर्वक चलाई जा चुकी है तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकास की विभिन्न योजनाएँ प्रारम्भ की जाने वाली हैं। इन योजनाओं में यातायात के विकास की योजनाएँ भी सम्मिलित हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत रेल-सड़कें, बन्दरगाह, आन्तरिक तथा बाह्य जल-मार्ग, जहाज तथा हवाई यातायात आदि विभिन्न साधनों का यथोचित विकास होगा। अभी तक इन साधनों के विकास में व्यापार तथा प्रगामन की सुविधाओं का ही ध्यान रक्खा जाता था। द्वितीय महायुद्ध में यातायात का विकास कुछ औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं के अनुसार हुआ। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी इसी बात का ध्यान रक्खा जायगा। अब देश का आर्थिक तथा औद्योगिक विकास द्रुतगति से होगा और इसी के अनुसार यातायात के विभिन्न साधनों का विकास होना चाहिए। यदि यातायात के साधनों का विकास ठीक प्रकार से न हो पाये तो औद्योगिक विकास में बाधा पड़ जाती है। यद्यपि पंचवर्षीय योजना के लिए उचित धनराशि की कमी है फिर भी यातायात के विकास के लिये काफी धनराशि निर्धारित कर दी गई है। योजना पर किये जाने वाले कुल व्यय का २९ प्रतिशत अर्थात् १३८४ करोड़ रुपया यातायात के विकास पर इस योजना में खर्च किया जायगा। इसमें से ९०० करोड़ रुपया रेलों पर, २६८ करोड़ रुपया सड़कों तथा सड़क-यातायात पर, ९७ करोड़ रुपया जहाजों बन्दरगाहों तथा आन्तरिक जल-मार्गों पर, ४८ करोड़ रुपया हवाई यातायात पर तथा ७५ करोड़ रुपया संवाद-वाहन तथा आकाशवाणी की सुविधाओं पर व्यय किया जायगा।

उपर्युक्त व्यय की समाज को पूर्ण सार्थकता तभी हो सकती है, जब इन विभिन्न साधनों में तारतम्य हो, प्रत्येक साधन एक दूसरे के पूरक हों, कोई किसी का प्रतिद्वन्द्वी न बने। इसके लिए एक समन्वयात्मक नीति की आवश्यकता है। इस प्रकार की नीति-निर्माण में निम्नांकित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :—

(१) देश के प्रत्येक भाग में वहाँ की आवश्यकतानुसार कोई न कोई साधन सुलभ होना चाहिये।

(२) कोई क्षेत्र ऐसा न होना चाहिए जहाँ अनावश्यक रूप से दो या अधिक प्रकार के साधन उपस्थित हों और उनका पूर्ण उपयोग न किया जा सके।

(३) प्रत्येक क्षेत्रीय यातायात विकास की नीति इस प्रकार की होनी चाहिए कि भविष्य में आवश्यकतानुसार यातायात के साधनों में और विकास होता जाय और सरकार का व्यय कम-से-कम हो।

(४) किसी क्षेत्र की उपेक्षा न हो ।

(५) विभिन्न साधनों का कार्य-क्षेत्र निश्चित हो, जिससे आपस में हानिकारक प्रतिस्पर्धा न हो सके ।

उपर्युक्त सम्पूर्ण बातें तभी ध्यान में रक्खी जा सकती हैं जब यातायात के सम्पूर्ण साधनों के विकास के लिए एक केन्द्रीय विकास समिति हो । प्रत्येक राज्य में एक राज्य यातायात विकास समिति हो तथा राज्य के प्रत्येक जिले में भी एक यातायात-विकास-समिति हो ।

केन्द्रीय यातायात-विकास-समिति में यातायात के विभिन्न साधनों के प्रधानाध्यक्ष होने चाहिएँ, जो अपने-अपने विभागों द्वारा बनाई गई योजनाओं पर मिलकर विचार करें और सम्पूर्ण देश के लिये उचित नीति निर्धारित करें । वायु-यातायात रेलवे तथा केन्द्रीय राज-मार्ग व जल-मार्ग की उन्नति में इस समिति का विशेष हाथ होना चाहिए ।

प्रत्येक राज्य में इसी प्रकार एक राज्य यातायात-विकास-समिति होनी चाहिए, जिसके सदस्य यातायात के विभिन्न विभागों के प्रधानाध्यक्ष होने चाहिएँ तथा सलाह के लिए केन्द्रीय यातायात-समिति के प्रतिनिधि होने चाहिए । इस समिति के अन्तर्गत राज्य सड़कें, तथा राज्य जल-मार्ग का प्रबन्ध होना चाहिए । ये समितियाँ अपने अपने क्षेत्रों के अन्तर्गत आवश्यकतानुसार यातायात का विकास करने का प्रयत्न करेंगी ।

इसी प्रकार जिला समितियाँ अपने जिलों के अन्दर यातायात का विकास करेंगी ।

यातायात के विभिन्न साधनों का विकास करते समय कुछ और बातों के ध्यान में रखने की आवश्यकता है । वायु-मार्ग का विकास औद्योगिक केन्द्रों के बीच में धनी वर्गों के प्रयोग के लिए होना चाहिए । रेलों का विकास देश में जालवत होना चाहिए, जिससे कोई भी मुख्य नगर रेल से २० मील से अधिक दूर न रह जाय । सड़कों का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वे रेलों के समानान्तर न रहें । रेलें व सड़कें एक दूसरे की पूरक होनी चाहिएँ । जहाँ जल-मार्ग आसानी से प्रयोग में लाये जा सकें वहाँ इन्हीं मार्गों को विकसित किया जाना चाहिए ।

यातायात के विभिन्न साधनों का संगठन इस प्रकार से होना चाहिए कि ग्रामीण सड़कें अथवा स्थानीय जल-मार्ग, राज्य सड़कों को अधिक ट्रैफिक दे, राज्य सड़कें केन्द्रीय सड़कों तथा रेलों को, केन्द्रीय सड़कें रेलों तथा वायुयानों को और रेलें वायुयानों को अधिक ट्रैफिक दे सकें । कोई भी साधन दूसरे साधनों से ट्रैफिक छुड़ा न सके, वरन् यातायात का प्रत्येक साधन अपना ट्रैफिक इतना बढ़ावे कि दूसरे साधनों का ट्रैफिक अपने आप बढ़ जाय, तभी साधनों में सच्चा समन्वय हो सकेगा ।

(1951)

1. Justify the statement that the railways are an increasing returns industry. (Q. 7).

2. 'The principle of joint costs on the railways is applicable both to rates and fares and underlies the practice of charging what the traffic will bear.' Explain. (Q. 20).

3. What are the peculiar difficulties associated with analyzing railway transport's 'costs of production' with a view to determining the price of its service ? (Q. 16).

4. Do you agree with the view that the Indian railways are unpopular. If so, what must be done to improve public relations and the handling of merchandise ? (Q. 44).

5. Examine the desirability of transferring to a Statutory Railway Authority the control and management of the Union railway to provide for a better system of transport. (Q. 40).

6. Comment : 'The Motor Vehicles Act is not a measure intended to create either a State monopoly or nationalization of the motor vehicular business on the highways of the country'. (Q. 59)

7. Discuss : Should the organization responsible for the management of nationalised road-transport in the State be under the direct control of the Government or an independent transport corporation ? (Q. 63)

8. Analyze the causes which have prevented Indian shipping from being recognized by the Government of India as a national asset and a national responsibility during the last 50 years or so. (Q. 72).

10. In view of the rapid growth of large urban areas, suggest, with adequate reasons, two alternative forms of inland transport best suited to cope with suburban and rush-hour traffic. (Q. 55)

(1952)

1, 'Observations of the various expenses of a railway show that many of these do not increase in direct proportion to an increase in traffic.' Examine the different expenses of railway undertakings, with a view to verifying this fact. (Q. 4)

2. Discuss the chief recommendations of the Air Transport Inquiry Committee. (Q. 81)

3. 'The making of a freight classification is a public function.' Discuss, and point out the various factors determining the classification of goods in India. (Q 31)

4. Explain the 'cost of service' and the 'value of service' principles. Which of the two, in your opinion, is the more equitable and practicable in fixing railway rates ? (Q. 14)

5. 'Road transport possesses the great advantage of flexibility as the road leads everywhere.' Consider this statement, and give the advantages and limitations of road transport. (Q. 48)

6. 'We are not opposed to the idea of nationalization of air transport but it is not possible to give effect to it on grounds of feasibility and practicability.' Examine this statement critically. (Q 82).

7. 'The tragedy of India has been that our rulers seldom realized the importance of sea power or realized it too late.' Analyze this statement, and suggest measures to develop a strong navy. (Q. 76)

8. Explain and criticize the constitution and functions of the Railway Rates Advisory Committee in India. (Q 41).

9. Describe the possibilities of developing traffic on waterways and stretches of waterways in India; and state the opinion of expert in this connection. (Q. 77 A).

(1953)

1. Comment on either 'Railway freight charges are based upon both tariff and contract' or 'Tariff prices are inherently difficult to reconcile with perfect competition.' Draw your illustrations from the operation of railway service in India. (Q. 28).

2. What are the peculiar difficulties in the way of analyzing transport's 'cost of production' of joint supply of transport units? Discuss. (Q. 17).

3. 'In planned economy the development of different forms of transport like the railways, roadways, navigation and airways cannot be considered in isolation. (*K. P. Bhatnagar*)

In the light of the above, outline a precise scheme of transport co-ordination in India. (Q. 87).

4. Examine critically the extent to which the Railway Rates Tribunal has improved upon the Railway Rates Advisory Committee in the matter of its composition, functions and jurisdiction. (Q. 39 and 41),

5. Examine critically the financial condition of Indian Railways after the separation of railway finance from general finance. (Q. 43)

6. Discuss how far it is desirable to have a monopoly in the matter of the development of road transport services. (Q. 68 a).

7. Indicate the present position in respect of the maintenance and development of roads In India. (Q. 64).

8. 'Urban and sub-urban traffic present peculiar problems.' What are these problems and how would you solve them? (Q. 56).

9. State the problem of the reservation of the coastal trade of India for Indian shipping enterprise. What is the position in this respect to-day? (Q. 77).

10. Would you advocate State control, with or without subsidy? or State operation of air services in India. Examine the present position of air services in India. (Q. 83).

(1954)

1. 'Proper classification of goods is very important for determining of a reasonable and equitable charge.' Discuss this statement

and point out briefly the factors that are taken into consideration in making this classification. (Q. 32).

2. Railways in India are annually suffering a very heavy loss on account of ticketless travels. Discuss the economic significance of this loss to the railways, and the tax-payers and suggest ways to check this evil.

3. Discuss why 'cost of carriage', 'equal mileage', 'postal principle' and 'zone system' have been advocated and yet discarded as methods of charging railway rates and fares. (Q. 27).

4. 'The turning point in the fortune of the shipping industry came with the advent of India's political freedom.' Discuss this and outline briefly the Government of India's shipping policy now. (Q. 71).

5. 'Shipping conferences or the Rings were the result of very close competition in shipping lines.' Examine this statement critically and assess fully the anti-social character of the conferences. (Q. 78).

6. 'Air services in India are a national need.' Show clearly the importance of this statement and give briefly the merits and limitations of such services. (Q. 84)

7. Examine very briefly the economic justification of human and animal transport in India. (Q. 51).

8. 'Adequate, cheap, well-organized and efficient transport facilities are of first importance in the economic and social life of our cities and towns. The problem of how these are to be provided is of a pressing nature though not one easy of solution.' Discuss. (Q.1).

9. (a) Explain the comparative advantages of water carriage as a means of inland transport over other forms of transport.

(b) Outline the causes of the decline of inland navigation in this country. (Q. 76).

(1955)

1. Cost and value of service principles are equally important in checking one another in rate-making. Discuss. (Q. 15).

2. Railway expenses are in a considerable degree constant as contrasted with variables. Examine this statement and bring out the significance of the relationship between the two. (Q. 4.)

3. What do you understand by 'Personal Discrimination' in rates ? Examine critically the objects, methods and merits or otherwise of such discrimination (Q. 21).

4. Discuss the following :—
   (a Railroad usually is a partial monopoly. (Q. 13)
   (b) The law of increasing returns is due to financial rather than operating factors on the railways. (Q. 5)

5. Indicate the present position of Indian railways and the extent of rehabilitation and development necessary to meet the growing needs of the country. (Q. 45)